दयानन्द छल कपट दर्पण.

प्रथम भाग.

जिसको—

श्रीमान् सभाशृङ्गार पूज्यवर चौधरी श्री माणिकचन्द्र जी
तत्पुत्र परमप्रतापी चौधरी सुमेरचन्द्र जी तदात्मज
जगद्विख्यात परम विद्वान् सुप्रविज्ञ ज्योतिषरत्न
दिवाकर श्रीमान् चौधरी मुन्शी पण्डित जैनी
जीयालाल जी मैनेजर दफ्तर जैन प्रकाश
और म्युनिसिपल कमिश्नर फर्रुखनगर
जिला गुड़गाव ने लिखा।

प्रकाशक—

पण्डित कामताप्रसाद दीक्षित
मु० पो० अमरौधा जिला कानपुर।

मुद्रक—

चौ० छोटेलाल शर्मा
"श्री कृष्ण प्रेस" अमरौधा (कानपुर)।

द्वितीय वृत्ति २००० } सम्वत् १९८६ { मूल्य ३) रुपया

* सविनय निवेदन *



इस पुस्तक के छपजाने पश्चात हमारे अनेक निर्पक्ष समाजी भाइयों ने देखा और आद्योपांत पढ़ कर यही सम्मति प्रकट की कि आपने यह पुस्तक रौचिक भयानक दोनों से बचा केवल यथार्थ ही लेखों से भरी है इसमें जहाँ जैसा चाहिये था वहाँ वैसा ही लिखा गया है परन्तु पुस्तक के नाम में जो शब्द 'छल कपट' सम्मिलित देख हम लोगों को भ्रम उत्पन्न होता है कि शायद इस पुस्तक में स्वामी दयानन्दकी अथवा हमारी निंदा भरी हो इस का कुछ परिवर्तन हो सके तो कर दो यद्यापि जो कुछ नाम पुस्तक का प्रथम ही लिखा गया वह बदला नहीं जासकता परन्तु हमको इस पुस्तक द्वारा सत्यासत्य का निर्णय कराना है व्यर्थ किसी का दिल दुखाना अभीष्ठ नहीं इसलिये आर्य्य भाइयों के मनो-रंजनार्थ इसपुस्तक का नाम आदि पृष्ठ पर 'दयानन्द चरित दर्पण' लिखा गया है ॥

(जीया लाल)



श्रीभूमिहार-ब्राह्मणवंश-भूषण, धर्मप्राण

श्री १०५ रामनन्दनप्रसादनारायणसिंहजी

सेहड़ा-नरेश।



मरचेंट प्रेस, कानपुर।

धन्यवाद ।

जिन महाशयो ने इस पुस्तक के संग्रह करते समय विषय लेखादिक के पढाने या शोधनादि कार्यों मे सहायता की उनके नाम धन्यवाद सहित नीचे प्रकाशित करते हैं ।

(१) श्रीमान् परम गुणज्ञ जगद्विख्यात विद्यासागर न्यायरत्न श्री मुनि शान्ति विजयजी ।

(२) श्रीमहामान्य मित्रवर पण्डित सत्यानन्द जी अग्निहोत्री देव धर्म्म प्रवर्तक लाहौर ।

(३) श्रीयुत प्रियवर चिरजीव लाला चन्द्रभानुभाई बद्रीदास जी के पुत्र स्थान मेरठ ।

(४) श्रीमान वैद्यराज पण्डित गौरीशंकर शर्म्मा सम्पादक पीयूषवर्षिणी धर्म्म सभा फर्रुखाबाद ।

(५) श्रीमान् पण्डित रामचन्द्र जी शर्म्मा सम्पादक अद्वैतामृत धर्मवर्द्धिनी धर्म्म सभा देहली ।

(६) श्रीमान् मित्रमित्र लाला धनीराम जी सत्य हितैषी स्थान फर्रुखनगर ।

फर्रुखनगर
२४-५-१९९५

भवदीय—
धन्यवाद कर्त्ता जीयालाल

सूचना

इस पुस्तक मे जो लेख संग्रह कर्त्ता ने अपनी तरफ से लिखा है, उसके शुद्धाशुद्ध का उत्तरदाता तो संग्रहकर्त्ता ही है परन्तु जो जो अशुद्धियां अन्य महाशयों के लेखों में थीं जैसी की तैसी लिख दी गई हैं, उनका जिम्मेवार उस लेख का लिखने वाला ही है ।



भूमिका

॥ दोहा ॥

दयानन्द छल कपट अरु जीवन चरित अनीत ॥
यथा शक्ति अति खोज कर दिखलाऊं धर प्रीत ॥ १ ॥

प्रस्तावना ॥

आज कल बहुधा मनुष्यों को यह कहते हुये देखा और सुना है कि नवीन मत मतान्तरों का प्रचार थोडे ही दिनों से है" परन्तु यह समझ उनकी थार्थ नहीं है इतिहास विद्या के ज्ञाता जानते हैं कि कालचक्रकी सदा सर्वदा से ही चाल है जो एक धर्म्म की प्रबलता और दूसरे की न्यूनता होती रही है, जैन धर्म्म के ग्रन्थों में लिखा है कि पहिले इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर जैन धर्म्म ही था * जिस के कठिन नियमों को देख शिथिलाचारियों ने प्रतिकूलता ग्रहण कर समय २ पर स्वकपोल कल्पित नवीन मत प्रचलित कर दिये और इसको तो सम्पूर्ण हिन्दू गण मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं कि वैदिक मत सबसे पुराना है परन्तु यह कथा कहानी तो बाल वृद्ध सब ही के याद है कि क्षत्रियों से विमुख हो परशुराम ने अनेक बार उनका वध किया वैदिक लोगों ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक बौद्धों को नष्ट किया अग्नि पूजक [आतिशपरस्त] और यहूदी ईसाईयों में घोर संग्राम और प्रजा का नाश हुआ, मुहम्मदी तुर्कों ने भी इस भारत वर्ष को अटक से कटक तक लूटा, कन्या कुमारी से हिमालय पर्वत उजाड किया सोम नाथ से विश्वनाथ के मन्दिर तक को तोड़ डाला दुग्धपायी बालक से लेकर गर्भिणी अबला तक को वध [कतलआम] किया भारतवर्ष से गजनी तक गुलामों को घर मारा, रामानुज व बल्लभाचार्य के समय वैष्णव कुल की वृद्धि नानक साहिब के समय उनपर हिंदू मुसलमान दोनों का विश्वास और गुरु गोविन्दसिंह के समय बादशाही फौज से शिष्यों का बिगाड, इत्यादिक प्रथम ही से क्या २ न हुआ जो अब हम किसी बात को नवीन समझें, हा ! यह अवश्य मान लिया जायगा कि जैसे छोटा बालक श्वान वाराह गर्दभादिक सब ही का

---

* इस विषय में मेरा छपा हुआ वह व्याख्यान देखो जो मैंने सुनिपत के मेले में दिया था।

अच्छा और प्यारा मालूम होता है नवीन आधुनिक धर्म्म की एक बारतो विशेष उन्नति हो जाती है परन्तु "सभी घास जल जायगी दूब रहेगी खूब" इस वाक्या नुसार सदा सर्वदा से जो सनातनधर्म्म चला आया है, उस पर कितने ही उपद्रव क्यों न हों नाना प्रकार के विघ्न सह कर भी सदा प्रकाशमान रहेगा, आज कल जैसी ब्रह्मसमाजी आर्य्यसमाजी ईसाई लोगों की अधिकता और प्रबल चर्चा है, थोड़े दिन पहिले कबीर गोरख गरीब दादू आदिक पन्थियों की थी [जो अब दिनो दिन घटतो पर ही है,] और नानक की घसीटा, सत्यनामी आदिक अनेक नवीन पन्थ अब वर्तमान काल में भी प्रचलित हैं, और सब से अधिक आर्य्यसमा जियों की धूम है इसलिये हमको यह प्रकट करने की परमावश्यकता है कि "आ र्य्यसमाज क्या वस्तु है ? इस का प्रचारक स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन था ? इस की जाति कुल गोत्र तथा जन्म के नगर का नाम क्या था ? जन्म दिन से लेकर अंत समय तक चलन व्यवहार कैसा रहा ? किस धर्म्म पर यह चलता और दृढ विश्वास रखता था ?" यद्यपि इस विषय में अनेक समाचार पत्र तथा पुस्तकों में प्रकाशित लेख विद्यमान हैं, और दन्त कथा में जितने मुख उतनी ही जाति स्वामीजी की सुनते हैं परन्तु यह सर्वथा ही दन्त कथा द्वेष भाव से भरी और प्रमाण योग्य नहीं हैं, जो जिसके मन में आता है अट्ट सट्ट बक देता है, और जितने लेख इस विषय में विद्यमान हैं उन सब के लिखने वाले भी बहुधा ऐसे ही मनुष्य हैं, जिन्होंने पक्षपात रूपी धूल से निर्मल जल गदला (मलीन) कर दिया है कि जिससे वह विद्वान पुरुषों में सराहनीय नहीं रहा ।

इस विषय में हमने जो कुछ लिखने का साहस किया है उस का एक एक अक्षर नाना प्रकार के प्रमाण सहित बड़े परिश्रम से एकत्रित और अनेक साक्षी द्वारा सिद्ध किया तब लिखा है, और इतना ही नहीं किंतु इसके लिये हमको बम्बई, गुजरात, काठियावाड़, मालवा आदिक देशों में भी घूमना पड़ा है, और इस ग्रन्थ से पहिले यह विषय भारत के अनेक हिन्दी, उर्दू अंग्रेजी समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है, परन्तु हमने तो इसका विशेष भाग स्वामी दया नन्द सरस्वती के स्वहस्तलिखित जीवन चरित्र से लिया है और यह चरित्र नवीन रचना वा कल्पना नहीं है, जो कुछ इसमें लिखा गया है वह स्वामी

दयानन्द सरस्वती के समय ही मे प्रकाशमान है और अनेक आर्य्यसमाजियों का देखा भाला तथा सुना हुआ है, यद्यपि यह जीवन चरित्र [1] कुछ बड़ा पुस्तक अथवा कोई धर्म ग्रन्थ तो नहीं है, परन्तु हमको इसके संग्रह करने मे स्वामी दयानन्द सरस्वती रचित ३८ पुस्तक और एक सौ से अधिक अन्य महाशयों के रचे पुस्तक व समाचार पत्रों से सहायता लेनी पड़ी जिनके नाम इस पुस्तक के अन्त मे दिये गये हैं और इस हमारे लेख का विशेष भाग तो समय समय पर आर्य्य पत्रिका मे भी प्रकाशित होता रहा है, परन्तु पक्षपात का भयकर उक्त सम्पादक जी की लेखनी यथार्थ न लिख सकी इसलिये यथार्थ लिखने का परिश्रम हमको ही उठाना पड़ा। यहां कोई यह तर्क करे कि जब आप दयानन्द के मत में ही नहीं फिर आपको उनके जीवन चरित्र लिखने का क्या अधिकार है? उसका उत्तर यह है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने "सत्यार्थ प्रकाश" के द्वादश समुल्लास में जैनी लोगों पर झूठा दोषारोपण कर अपनी योग्यता दिखलाई तो हमको ऐसा करने की अत्यन्तावश्यकता हुई कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का यथार्थ हाल लिखकर भारत मे प्रकाशित कर सत्यासत्य का न्याय विद्वान

---

[1] स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रथम बार जब लाहौर में आये और डाक्टर रहीमखां साहिब की कोठी में उतरे थे तो अपना जीवन चरित्र व्याख्यान की रीति पर वर्णन किया था और उनके शिष्यजनों ने उसको पुस्तकाकार लिखा था और जब करनल अलकाट (Colonel Alcott) और (H P Madam Blavatsky) योग विद्या के खोजने को भारत वर्ष में आये और उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती को संस्कृत का अच्छा पंडित और योगी समझ कर अपना गुरु मान लिया था तब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने योगी होने की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये निज जीवन चरित्र लिखवाकर माडम ब्लवटस्की सम्पादक रिसाला थियासोफिस्ट (Editor of theosophical) को पठाया और वह रिसाला मास नवम्बर दिसम्बर, सन् १८७९ व रिसाला मास नवम्बर सन् १८८० में छपा था जिस में स्पष्ट रूप से यह प्रकाश किया गया था कि यह जीवन चरित्र स्वामीजी का स्वहस्त लिखित है, तथा उक्त रिसाला संख्या ५ मास अप्रेल सन् १८८० ई० में स्वामीजी का यह लेख छपा है, "यद्यपि मुझको अत्यन्त हर्ष और उमङ्ग है कि मेरा स्वहस्त लिखित जीवन चरित्र जिसको आप छापकर प्रकाशित कर रहे हैं शीघ्र समाप्त हो

मनुष्यों पर छोड़ दें, और निज बुद्धिविशालुसार अपना मन्तव्य भी लिख दें, ।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर जो जो कोलाहल मचैगा उसको हम खूब समझे हुए हैं, परन्तु यह पुस्तक हमारे हज़ारों भोले भाले भाईयों को अज्ञान कूप में पड़ने से बचावेगी, इसलिये देशोपकार करते हमको कोई बुरा भी कहे, या किसी प्रकार की हानि पहुँचावे तो उसका हमको कुछ भय नहीं है ।

और यह भी हम भली प्रकार जानते हैं कि असत्य की जड़ नहीं होती जब असत्य वादी मनुष्य को सत्यवक्ता रूपी भास्कर का सामना होता है तो अमावस्या के चन्द्रमा की समान अदृश्य होना पड़ता है, और सत्य की जय असत्य का क्षय यह जगत्प्रसिद्ध कहनावत है, फिर हमारे साच को भी आँच न होगी ।

अतः म हम यह लिखना भी परमावश्यक समझते हैं कि यदि हमारे इस संग्रह का कोई भाग किसी समाजी भाई को असम्भव दीख पड़े और वे प्रमाण सहित इस के प्रतिकूल कुछ लिखने का बल रखते हों तो हमारे पास पत्रद्वारा लिख भेजें, हम धन्यवाद सहित स्वीकार कर दूसरी बार छपने के समय इसका संशोधन करेंगे, क्योंकि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान कह मुकरने वाले नहीं * जैसा कि उन्होंने कई स्थानों पर कहमुकर ने का वर्ताव किया है हम यह भी नहीं चाहते कि जो पत्र व्यवहार लाला ठाकुरदास भामडे गुजरान्वाला निवासी का और स्वामी दयानन्द सरस्वती का होकर "दयानन्द मुख चपेटिका" पुस्तक छपी, हमारे इस "दयानन्द छल कपट दर्पण" नाम संग्रह को देख हमारा और किसी समाजी पुरुष का भी छप कर व्यर्थ समय व्यतीत हो, ।

परन्तु क्या करिये मुझ को यथार्थ अवकाश नहीं मिलता जो इस तरफ ध्यान दूं । तब भी जहां तक होगा अब मैं शीघ्र अपना इतिहास आप के निकट लिख पठाऊंगा" ।

हाल में एक लाला दलपतराय ने उन रिसालों से लेकर संग्रह कर एक पुस्तक छपाई है, और उसके ऊपर मोटे २ अक्षरों से यह लिखा है कि यह जीवन चरित्र स्वामीजी का हाथ का लिखा (खुदनविस्त) है, इसके अतिरिक्त यह कथा सम्पूर्ण आर्य्यसमाजों में प्रसिद्ध भी हो रही है, और दयानन्दद्विग्विजय तथा गेज़ट अजमेर, फर्रुखाबाद, लाहौर के आर्य्य समाचार पत्रों से लेकर अनेक मनुष्यों ने पुस्तकाकार जीवन चरित्र भी लिखे हैं ।

* देखो पुस्तक दयानन्द मुख चपेटिका ।

आज कल के लोगो ने यह चाल ग्रहण करली है कि जब वह किसी पुस्तक अथवा लेख के खंडन का उद्यम करना चाहें और बुद्धि की मन्दता अथवा दूसरे की पुस्तक तथा लेख की सत्यता के कारण उसका खंडन न बन पड़े तो उस पुस्तक वा लेख लिखने वाले को गालियां देने लगते हैं और इतना करने पर ही अपना परिश्रम सफल मानते हैं, जैन भाई जवाहरसिंह लाहौरी ने एक पुस्तक समाजियों के प्रतिकूल तो लिखी राधाकृष्ण महता एक समाजी पुरुष ने एक "ग्रंथीफोबिया" नामक पुस्तक रच गुरु नानक साहिब आदिक अनेक शिक्खों के गुरु लोगो को भला बुरा लिख मारा, तथा साधु आत्माराम (आनन्द विजय) जी ने जो पुस्तक "अज्ञानतिमिरभास्कर" लिखा उसको देख प्रयाग नगर से प्रकाशित होने वाले "आर्य्यसिद्धान्त" पत्र के सम्पादक ने उक्त साधु जी को ही अनेक अनुचित शब्द लिख दिये * हम ऐसे उत्तर दाताओं की कुछ प्रशंसा नहीं करते, सराहनीय पुरुष तो वही होगे जो लिखे लेख का सर्वमान्य उत्तर देने की शक्ति रखते हो ।

इस लिखने से हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हमारी लिखी इस पुस्तक का कोई उत्तर न लिखे, परन्तु जो लिखने का परिश्रम करे उसको उचित है कि हमारे लिखे प्रमाणों का खंडन करे, और मंडन करना छोड़ आज कलकी भेड़िया धसान में पढ़ कर हमको या हमारे इष्ट देव को कुवचन कहना ही अपनी विद्वत्ता समझेगा उसको हम क्या सब कोई मूर्ख और बुरा कहेंगे ।

यह पुस्तक २५ मार्च सन् १८८९ ई० को बिलकुल तैयार होगई थी, परंतु छपने का समागम न हुआ इस लिये २५ मई सन् १८९० ई० को पुन घटा बढ़ा कर शुद्ध किया और अब मुद्रित कराया जाता है ।

इस पुस्तक में जो जो लेख हम स्वामी दयानंद सरस्वती की स्वहस्तलिखित पुस्तक से लेवेंगे उस की आदि में (द) और जो अन्य पुस्तक वा समाचार पत्र से लिया जायगा उसकी आदि में (ख) और जहाँ हम अपनी युक्ति प्रमाण से कोई लेख लिखेंगे वहां (क) ऐसा चिन्ह कर देवेंगे सो पाठक गण इस पुस्तक के पढ़ते समय उक्त सूचना चिन्ह को अवश्य ध्यान में लावें, किं बहुना ।

(जीयालाल)

फर्रुखनगर जिला गुड़गाँव.
तारीख २५ मई सन् १८९० ई०

* देखो आर्य्य सिद्धान्त पत्र खंड ३ संख्या १ पृष्ठ ३ ।

धर्मवीर काव्याकार-राजरत्न

श्री १०५ कुवर छत्रपतिसिहजी



मरचेंट प्रेस, कानपुर।

दर्श पूर्णमास प्रभृति इष्टियों का और पुरुषमेध, अश्वमेध, श्रोत्रामणि, सर्वमेध, महारुद्रयाग प्रभृति समस्त यज्ञों का ऐसा सफाया किया कि मानो वेद में यज्ञों का विधान ही नहीं और भारतवर्ष में या तो यज्ञ हुई नही और यदि कहीं हुई भी हों तो वे कुरान बाइबिल के आधार पर हुई होंगी क्योंकि यजुर्वेद में यज्ञों का कहीं पता ही नहीं, इस प्रकार से वेद के नये, झूठे, कपोल कल्पित अर्थ बनाने से स्वामी जी की आस्तिकता में स्पष्ट बट्टा लग जाता है।

किसी किसी जीवन चरित्र में लिखा है कि स्वामीजी सत्यवादी धर्मात्मा थे किंतु जिस समय हम 'सत्यार्थप्रकाश' और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में यह लिखा देखते हैं कि ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं किन्तु पुराण हैं। ब्राह्मण भाग और मन्त्र भाग, वेद इन दो भागों में बटा है एक भाग तो वेद है और दूसरा भाग पुराण है यह लेख सिद्ध करता है कि पूज्य स्वामीजी चाल बाजी की उच्च कक्षा में पहुँच चुके स्वामी जी ने वेद की ११३१ शाखाओं में से ११२७ को तो छोड़ दिया केवल चार शाखाओं को वेद माना इस चाल से स्वामी जी की चालाकी का यही अभिप्राय था कि हमको समस्त वेद भी न मानना पड़े।

स्वामी जी ने वेदों के नाम से झूठे वेद मन्त्र भी बना लिये देखो हमारा बनाया "जाली वेद मंत्र"। सध्या के आरम्भ में "ओं वाक् वाक्" एवं 'भूः पुनातु शिरसि' इनको स्वामी दयानन्द जी ने वेद मन्त्रों के नाम से लिखा है किन्तु ये वेद मन्त्र नहीं हैं। इसके अलावा 'सत्यार्थप्रकाश' में वेदों की आज्ञा के नाम से कई एक झूठे लेख लिखे हैं जिनको देखना हो वे 'बनावटी वेद' नामक हमारी बनाई पुस्तक देखलें। स्वामी जी के इन आचारणों से और जीवनचरित्रों में बहुत अंतर है किन्तु इस 'दयानन्द छल कपट दर्पण' में हमारे मित्र स्वर्गवासी प० जीयालाल जी जैनी ने स्वामी जी का सत्य चरित्र प्रमाण देकर लिखा है हमारी समझ में और और जीवन चरित्र सत्य घटनाओं को दबाकर स्वामी जी की प्रशंसा करने के लिये ही बने हैं और यह 'दयानन्द छल कपट दर्पण' स्वामी जी के सच्चे हाल को संसार पर विदित कर रहा है, सत्य जान कर ही इस जीवन चरित्र को प० कामताप्रसाद जी दीक्षितने स्वर्गवासी प० जीयालाल जी के सुपुत्र माननीय शिखरचन्द जी जैन से इसका रजिस्ट्री हक लेकर इसको प्रकाशित किया। हमें विश्वास है कि दयानन्दजी के जीवन चरित्र जाननेकी इच्छा

पढ़ने।

श्रीकृष्णचरणानुरागी

श्री १०५ राव साहब सेठ पं० हरिशङ्करजी ताल्लुकेदार,

हरदा (मध्यभारत)।



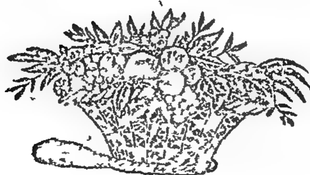
मरचेंट प्रेस, कानपुर।

* प्रार्थनायें *

आज हमको यह अवसर मिला है कि 'दयानन्द छल कपट दर्पण' के विषय में हम जनता से दो प्रार्थनायें करें (१) प्रार्थना तो यह है कि इस ग्रन्थ के द्वितीयवार छपने में जो अशुद्धियां रह गई हों उनको पाठक क्षमा करें।

(२) हमने यह ग्रंथ स्वर्गवासी पं० जीयालाल जी जैनी के विद्वान् पुत्र पं० शिखरचन्द जैन से खरीद लिया है अब इस ग्रन्थ पर हमारा स्वत्व है हमारी आज्ञा बिना कोई भी इस ग्रंथ को न छापे।

कामताप्रसाद दीक्षित
अमरौधा (कानपुर)





सनातनधर्म-संरक्षक

पं० श्यामलालात्मज श्री १०५ पं० भगवानदीनजी शुक्ल

तालुकेदार शाहपुर (मध्यभारत) ।



मरचेंट प्रेस कानपुर ।

॥ श्री जिनधर्म्मो जयति ॥

श्री दयानन्दछलकपटदर्पण ।

॥ दोहा ॥

प्रथम नमँहु आदीश जिन, आदिधर्म्म रवि मान ।
जिन मुख किरण प्रकाश में, लखा यथारथ ज्ञान ॥ १ ॥
अब दिखलाऊं जगत् को, दयानन्द को भेद ।
न्यायवत निर्णय करैं, सठ मानें मन खेद ॥ २ ॥

नवीन जाति की उत्पत्ति ।

किसी समय दक्षिण के देशों में यह रिवाज था कि बहुधा भोले भाले मनुष्य धर्म्म समझ अपनी लघु अवस्था की कन्या को देवमंदिर में चढ़ाकर देवदासी बना देते थे, और जिस दिन से वह कन्या देवदासी बनाके मंदिर में चढ़ाई जाती थी मातापिता से उसी दिन से उसका सम्बन्ध बिलकुल छूट जाताथा, और मंदिरका पुजारीही उसका लालन पालन करता रहता था, बाल अवस्था में उसको गीत नृत्य आदि संगीत विद्या सिखलाई जाती थी और तरुण होने पर वह मंदिर की नृत्यकारिणी कहलातीथी, जब नृत्य करनेका समय होताथा, तबवह नानाप्रकारके पट, आभूषणोंसे अलंकृत हो सोलह शृंगार कर कज्जल, बिन्दी, बैना लगा निर्लज्ज भाव बता, नगर, परिवार, और मातापिता, भ्रात, भगिनी आदि सबके सन्मुख नृत्यकारणी बनी मंदिर के देवता की मूर्ति को अपना स्वामी समझ नृत्य करती थी, और जब वह यौवन अवस्था में काम चेष्टा से व्याकुल होती और मैथुन कर्म्म की उसको आवश्यकता होती तो रजस्वला होने के पश्चात स्नान कर जिस किसी पुरुष का हाथ पकड़ निज स्थान पर लेजाती, वह पुरुष उसके संग विषयभोग करता था, परन्तु एक दिन से अधिक ऐसा करने का अधिकार उसको नहीं था, यदि एक दिनसे अधिक ऐसा

प्रजा के मनुष्य दोनोंका व र-(कर्न्ते) करदेते थे * जब ये नृत्यकारिणी जिन
दूसरा नाम भक्तिनी भी है जार (यार) पुरुष को लेकर देशांतर को भागने लगीं
तो यह, देवदासी का प्रचार क्रमश बहुधा स्थानों में बन्द होगया, उस सम
पर कुछ जाति पतित उदिचं गोत्री अनेक ब्राह्मणो मे से बहुधा मनुष्यों ने अपने छो
छोटे लडको को गीत नृत्य विद्या में प्रवीण कर उनको मन्दिरो के नृत्यकार्य्य
नाया, जब ये लड़के स्त्रियों के समान पट आभूषणों से शृंगार कर भाव ब
कल्पित कुच लगा नृत्य करते थे तो देखने वालो को उन लडकों में और नृत्यकारि
स्त्रियों में बहुतही कम अंतर मालूम होता था, क्योंकि ये लडके शिर पर केश भ
स्त्रियो के सदृश लम्बे २ रखते थे ॥

अब ये लोग सब देशो में पाये जाते हैं (।) और परवावज, ढोलकी
सारगी, भेर, तबला, आदि बजाना लडके नचाना भिक्षामाँगना कपडे सीना रहस्य
लीला करना आदि इनके मुख्य काम हैं और ,ये लोग तपस्वी, भोजगी, जाजगी
बडुआ या बरुआ, भोजपुरहा, राय, कापडी, इपु, भट, पारिष आदिक नामों से
प्रसिद्ध और विख्यात हैं ॥

हमारे फर्रुखनगर में भी इनके दस बारह घर हैं इन लोगों की यह कहा
वत प्रसिद्ध है कि हम सब प्रकार के काम करसक्ते हैं, किसी भी कार्य्य को करने
लज्जा नहीं मानते, और कहते हैं कि हमारे पुरुषाओं ने परमेश्वर से यह प्रार्थना की
थी कि हे भगवन् "इकबार बनादो कापड़ी फिर तुम्हें हमारी क्या पड़ी" बस हम ईश्वर
भरोसे पर नहीं हैं अपने परिश्रम द्वारा जो कुछ कमाते हैं उसी पर सतुष्ट रहते हैं।

अब ये लोग अन्यजातीय शूद्रा स्त्रियों से कराव भी करने लगे हैं, और
राह चली वर्णत्रय के घर की रोटी कपडे पहिने हुए खालेते हैं ॥

दयानन्दोत्पत्ति ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र भी इन्द्रजाल का ख्याल है

* न्यूनाधिक अबभी यह रिवाज उस देशमें पाया जाता है देखो मद्रास हाईकोर्ट
रिपोर्ट जिल्ददोयम अप्रैल सन् १८७७ ई०

(।) पहाडों में रहने वाली रामजनी इन मे से ही निकली हैं

(?) दक्षिणदेशके रहने वालों के अतिरिक्त हम यह नहीं कहसकते किसब एक ही
वंशके लोग हैं,

जिसमें नाना प्रकार के गुप्त भेद और गूढार्थ प्रकट होते हैं, कि जिनका समझना भी किसी विद्वान पुरुष का ही काम है परन्तु यह कहावत प्रसिद्ध है कि "जिनढूंढा तिन पाइयाँ,, तथा (जोयन्द —यायन्द) (جوینده یابنده) बस ऐसे मनुष्य भी संसार में विद्यमान हैं जो अपनी बुद्धिमानी और ढूंढ द्वारा ऐसे ऐसे गूढ मार्गों में पैठ कर उनका यथार्थ भेद खोजलेते हैं और यही उनकी बुद्धिमानी और दीर्घदर्शिता का अनुपम चिन्ह है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन थे ? किस नगर कुल गोत्र में उनका जन्म हुआ ? यह स्पष्ट रूप से आज तक इस भारतवर्ष में किसी ने भी नहीं जाना और न उक्तमहाशय ने अपने मुखसे ही किसी को बतलाया किन्तु पूछने परभी यही उत्तर दिया कि मैं जो आजकल दयानन्द सरस्वती के नाम से पुकारा जाता हूं सम्वत् १८८१ वैक्रमी में काठियावाड प्रान्त की राजधानी मोरवी के इलाके में एक उदिच ब्राह्मणके घर जन्मा और प्रथम ही से जो मैंने अपने पिताका नाम और कुटुम्बियोंका पता नहीं बतलाया उसका यही कारण है कि यदि उनको सब समाचार मिल जावेंगे तो वे मुझको उठाकर घर पर लेजाकर इस सांसारिक झगड़े में फंसा देंगे जिससे मेरा मन घृणा कर रहा है, और मुझको यह भी सन्देह होता है कि घर पर जाऊंगा तो फिर द्रव्य छूना पड़ेगा इसी कारण मैं उनका ठीक २ पता नहीं देता हूं ॥

स्वामी जी के इस कहने पर हमारी अनेक शङ्कायें ।

(**प्रथम**) जिस समय स्वामी जी ने अपना जीवनचरित्र वर्णनकिया उनकी ५० वर्ष की अवस्था थी क्या उस समय तक माता पिता विद्यमान थे ? जो खबर पाकर उक्त स्वामी जी को पकड़कर घर पर ले जाते ॥

(**द्वितीय**) यदि यह मान भी लिया जाय कि उस समय तक माता पिता विद्यमान भी थे तो स्वामी जी ऐसे छोटे बालक नहीं थे जो माता पिता गोद में उठा कर ले जाते किन्तु हिन्दू लोगों में तो यह मर्यादा है कि जिनका पुत्र सन्यासी हो जाता है वे माता पिता कुछ नहीं कह सकते और इसको बहुत बड़ा आश्चर्य तो इस बात का है कि स्वामी जी को उन के माता पिता के समाचार क्योंकर मिलते रहते थे ? क्या कोई गुप्त दूत अथवा तार लगा हुआ था ? इस कहने से तो यही सिद्ध होता है कि स्वामी जी को अपने माता पिता का जीवित रहना भी

दु ख का कारण था और वे रात दिन परमेश्वर से यही प्रार्थना करतेहोंगे कि हमारे माता पिता और कुटुम्बी शीघ्र मर जाय जिससे हमारा सदैव का खटका मिट जाय बस जब तक यह नहीं मानलिया जायगा जैसा हमारा पूर्वोक्त विश्वासहै तब तक यह सिद्धनहीं हो सकेगा कि पचास वर्ष की अवस्था में भी स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपने कुटुम्बियों के हाथ से पकड़ा जाकर घर पर ले जाने का भय लगा हुआ है ॥

(तृतीय) स्वामी जी कहते हैं कि घर पर जाकर द्रव्य छूना पड़ता सो भय । छापाखाना खोलने, पुस्तक बेचने, चन्दा इकट्ठा करने में जो द्रव्य आपको छूना पड़ा वह किसी गणनामें नहीं था ? अथवा निज घर छोड़ पराये अनेक घरों से मागा द्रव्य छूने में नवीन वेद भाष्य के लेखानुसार कोई दोष व प्रतिज्ञा भग नहीं थी ? हा ! किसी कवि ने सत्य कहा है ॥

पर उपदेश कुशल बहुतेरे । आप करैं ते नर न घनेरे ॥

स्वामी जी निज माता पिता को तो अपने समाचार तक देने से रुके और "सत्यार्थप्रकाश" में निम्न लिखित उपदेश लिखते हैं ॥

मानोवधी॰ पितरंमोतमातरम् १ यजुः०

"प्रथम माता मूर्त्तिमती पूजनीय देवता,, अर्थात् संतानों को तन मन धन से सेवा करके माताको प्रसन्नरखना हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करनी, दूसरा पिता सत्कर्तव्य देव उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथि देवो भव । ६ । तैतिरीयनि०

यह पाँच मूर्त्तिमान देव जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्य शिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है येही परमेश्वर को प्राप्तिहोने की सीढ़ियाँ हैं। इन की सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं, वे अतीव वेद विरोधी हैं, *

धन्य महाराज धन्य, अजी स्वामी जी महाराज यदि आपके माता पिता को इस

* तृतीय वार के छपे हुये स०प्रकाश के समु० ११ पृष्ठ ३१७ । ३१८ को देखो ।

समय के ठीक समाचार मिल जाते तो वे फूले अंगों न समाते और आप का उच्च कुल गोत्र में जन्म लेना सर्वसाधारण पर विदित भी होजाता ॥

(**चतुर्थ**) संसार प्रचलित मर्य्यादा यह है कि पिता अपने पुत्र की उन्नति का अभिलाषी रहता और सदैव यही चाहता है कि मेरा पुत्र मेरे नाम को बढावे परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस के विरुद्ध निज पिता के नाम को उलटा छिपाया इसका कोई गुप्त भेद है, इधर ये माता पिता के वियोग में ध्रुव के समान दुखी थे तो सुनीती और उत्तानपाद से न्यून दशा इन के माता पिता की भी न होगी यदि स्वामीजी की आज कल की प्रतिष्ठा प्राप्त करने के समाचार उस के माता पिता को मिलते तो वे अत्यन्त हर्षमान ईश्वर का धन्यवाद करते, परन्तु इन का पता न लगने पर अपने मनमें यह विचारते रहते होंगे तो आश्चर्य्य ही क्या है कि हमारा पुत्र कहीं डूब कर मर गया अथवा मुसल्मान, ईसाई, या साधु होगया, हा ! न मालूम अब उसकी क्या दशा है ? और उसपर क्या २ गुजरती है ?

(**पाँचवें**) यदि स्वामीजी के कुटुम्बीजन विद्यमान थे (जैसाकि स्वामी जी का विश्वास दृष्टि पड़ताथा) और उनको अपने पढे लिखे पुत्र की अत्यन्त ढूंढ (तलाश) थी (जैसी कि लौकिक रीत्यानुसार होनी भी चाहिये) तो जब स्वामी जी ने अपना बहुत कुछ पता ठिकाना, जन्म का सम्वत्, राजमोरवी का इलाका, जाति ब्राह्मण, उदिच गोत्र, इत्यादिक ठीक ठीक बतला दिया था तब घर वालों को पता मिलना कठिन नहीं था, आज पुलिस प्रबन्ध ऐसा प्रबल महकमा है कि नाम मात्र के सहारे पर ही अपने चोर को पृथिवी पर से खोज लेता है जब स्वामी जी कहते हैं, मेरा पिता बड़ा धनाढ्य, जमींदार था मेरे भागने पर उसने फौज के सिपाही ढूंढने (तलाश) को भेजे थे, तो विश्वास होता है कि पुलिसमें तो अवश्य खबर दी गई होगी, परन्तु यह बडे आश्चर्य्य की बात है कि यदि आज लाट साहब का बेटा खोया जाय तो फौज नहीं चढ़े, और किसी की चार आने की अगूठी लेकर कोई भाग जाय तो पुलिस मारी मारी फिरे, लेकिन स्वामी जी के ढूंढने को पुलिस नहीं गई फौज चढ़ी ॥

यह बनावट स्वामी जी महाराज की ठीक नहीं बन पड़ी किंतु उलटा उनके वचनों का विश्वास नष्ट करती है ॥

(छठे) यदि स्वामी जी के माता पिता वास्तव में कंगाल थे तो उनका यथार्थ हाल कह देने में स्वामीजी का कुछ बिगाड़ नहीं था वरन यश, कीर्ति की उन्नति थी सब यही कहते कि स्वामी जी ने निज पुरुषार्थ से भारतवर्ष में प्रसिद्धता पाकर भी पिछली हीन दशा को नहीं छिपाया और जो स्वामी जी के पिता यथार्थ में धनाढ्य थे तो फिर उसके गुप्त करने में क्या लाभ था?

(सातवें) स्वामीजी ने अपने जीवनचरित्रको निज मुखसे कहने में जो कुछ त्रुटि रख छोडी है उससे यही सिद्ध होता है कि अवश्य कुछ दालमें काला है नहीं तो थोड़ासा पता देना और थोड़ासा छिपाना इसमें क्या चतुराई थी? यह प्रसिद्ध है कि आर्य्य समाजी मनुष्यों ने स्वामीजी का यथार्थ जीवनचरित्र संग्रह कर मुद्रित करानेका प्रण किया है और उस काम के लिये एक "पण्डित लेखराम" नामी समाजी पुरुष नियत किये गये हैं, हम आशा करते हैं कि उक्त लेखराम महाशय स्वामी जी के गुप्त समाचारों के ढूंढने में त्रुटि नहीं करेंगे, और हमको यह भी विश्वास होता है कि जब वे ढूंढेंगे तो वह गुप्त भेद भी उनको अवश्य खुल जायगा जिस को हम जान बूझकर भी लिखना नहीं चाहते * और जो उन्हो ने ढूंढने में प्रमाद किया अथवा समाचार मिलने पर उनको छिपाया तो यह जीवन चरित्र अधूरा रह जायगा।

(क) अब न्यायशील स्वतः विचारलें कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका कथन कहाँ तक सत्य है, जो मनुष्य अपना जन्म कुल गोत्र बताकर उसका कुछ भाग छिपाता है, चाहे वह उच्च कुल गोत्र का ही क्यों नहो सर्वसाधारण के सन्मुख विश्वास करने योग्य अथवा प्रामाणिक नहीं है॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सम्वत् १८८१ वैक्रम शाक १७४६ सन् १८२४ ईस्वी में मिती भाद्रपद शुक्ल ०९ गुरु वार को दिन के मध्यान में हुआ था इस का ब्योरा हमको उनकी जन्म पत्री ‡ द्वारा (जो हमारे एक पुरुष मित्र ने कुछ दिन हुये चिट्ठी द्वारा भेजी थी) निश्चय हुआ था.

---

* यह समाचार प्रकट रूपसे तो नहीं परन्तु किम्बदन्ती (अफवाह) के तौर पर जो कुछ हमने सुने हैं वे दूसरे भागके अन्तमें लिखेंगे॥

‡ यह जन्मपत्रिका गुजराती अक्षरों में उस देशके लेखानुसार थी जिसको हमने स्वदेश रीतिके अनुसार करलिया है,

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्मपत्रिका ॥

सम्वत् १८८१ शाके १७४६ तत्र भाद्रपद शुक्ला ०९ गुरुवासरे कलादि ०१ । ३६ मूल नाम नक्षत्रे कलादि ३६ । ४६ प्रीति नाम योगे कलादि १४ । ०३ कौलव नाम करणे कलादि ०१ । ३६ उपरान्त तैत्तिले, चन्द्र तारीख ०६ एवं विधि पञ्चाङ्ग शुद्धौ तत्र दिन प्रमाण ३१ । ३२ रात्रिमान २८ । २८ अहोरात्रिमान ६० । ०० तत्र सिंहार्क गतांशा १७ । ५५ । २५ तत्र श्री सूर्य्योदयादिष्टम् १५ । १० तदा ०७ । ०७ । ४० । ५८ । ५४ लग्नोदये जन्म मूल नक्षत्रे तृतीय चरणे राशि धन, स्वामी गुरु, गण राक्षस, वर्ण क्षत्री, इत्यादि ।

घर	तन	धन	सहज	जाया	सुत	अरि	भार्या	मृत्यु	धर्म	कर्म	आय	व्यय
लग्न	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
ग्रह	०	च रा	०	०	०	०	श०	के	सू०	स शु	बु०	म०

देश काठियावाड़ राजधानी महाराज मोरवी में रामपुरा नाम एक छोटा सा ग्राम है, उस ग्राम में भजनहरि नाम कापड़ी रहता था, उसके केवल एक कन्या के अतिरिक्त कोई पुत्र नहीं था, इस लिये रात्रि दिवस उसको पुत्र का मुख देखने की प्रचुर लालसा लगी रहती थी। एक दिन किसी महात्मा ने उसको उपदेश दिया कि यदि तू एक सौ एक (१०१) दिन महादेव जी के मन्दिर में गोघृत का दीपक जलाया करे तो शिवजी की कृपा से तेरे भी कुलका दीपक पुत्र उत्पन्न होवे ।

भजनहरि की वृद्धावस्था होगई थी, पुत्रोत्पत्ति की उमंग में मदोन्मत्त था इस के एक छोटा भाई सीतारामहरि नाम और था, उसके भी कोई पुत्र नहीं था, धर्मकार्य्य में भजनहरि की बुद्धि सदा सर्वदा से उत्तम थी, महात्मा जी का उपदेश मान हर्ष सहित शिव मन्दिर में दीपक धरने लगा, और थोड़े ही दिनों में शिवजी की कृपा से तथा होनहार कर्मकाण्ड के योग से भजनहरि की स्त्री को गर्भ रहा, संवत् १८८१ भाद्रपद शुक्ला ०६ गुरुवार के दिन पुत्र का जन्म हुआ *

* तिथि वार महीना जन्मपत्री के अनुसार लिखा गया है, और जन्मपत्री का फल दूसरे भाग के अन्त में लिखा जायगा, तथा देखो उर्दू धर्म जीवनपत्र लाहौर, तारीख १७ जून सन् १८८८ ई० ।

भञ्जनहरि के सकल परिवार में प्रचुर आनन्द भया, शिवभजन इसका नाम धरा † दशवें दिन बालक को उसी शिव मन्दिर में लेगये जहाँ भञ्जनहरि दीपक जलाया करता था। और भञ्जनहरि हाथ जोड़ शिर नवाय शिव जी की मूर्ति [पिंडी] के सम्मुख खड़ा हो कहनेलगा, हे बाबा भोलेनाथ मैं तो महानन्द भागी हूं यह जो कुछ है आपही का अनुग्रह और प्रताप है मैं आज ही से इस बालक को आपका नृत्यकार समझ कर प्रथम इसको यही विद्या पढ़ाऊंगा। आप कृपा कर इसके जीव को सब प्रकार के कष्टों से निर्भय रखना, मेरे बुढ़ापे की टेक आपही के हाथ है, तथा मेरी आपसे बारम्बार यही प्रार्थना है, इत्यादिक शिव जी की भक्ति कर बालक को घर पर लाया, और लालन पालन करने लगा, ज्योतिषियों से ग्रह पूछे गये, तो उन्हों ने उत्तर दिया कि बालक होनहार है, परन्तु इसका जीवित रहना कुछ कठिन भी है, क्योंकि इसके ऐसे उत्तम ग्रह तुम्हारे घर योग्य नहीं हैं, और यदि यह बालक जीता भी रहा (जैसा एक दो ग्रहों के फल से दृष्टि भी आता है) तो सुन लो भाई यह लड़का बड़ा ही प्रतापवान् और प्रसिद्ध पुरुष होगा यह सुन भञ्जनहरि बहुत खुश हुआ, यत्न सहित बालक का पालन पोषण करने लगा शनैः शनैः शिवभजन पाँच वर्ष का हुआ, पिता ने विद्यारम्भ कराया, बालकपन से ही बुद्धि इसकी उत्तम थी, इधर गुरु जी का अनुग्रह भी अधिक हुआ तो थोड़े ही दिनों में बहुत कुछ विद्या पढ़ ली, जब पाठशाला से कुछ समय बचता था तो भञ्जनहरि इसको गीत नृत्य आदि अपने पुरुषाओं का कार भी सिखलाया करता था, जब शिवभजन आठ वर्ष का हुआ उचित रीति से उपनयन (यज्ञोपवीत) कराया गया* तेरह चौदह वर्ष की अवस्था में इसने अक्षर शब्द विद्या और गीत नृत्य विद्या दोनों में अच्छा अभ्यास कर लिया था, और रंग रूप उज्वल होने के अतिरिक्त इसने नृत्य कला में तो ऐसा कमाल पैदा किया और यह ऐसा विख्यात हुआ कि दूर दूर के मनुष्य इसका नृत्य देखने आते थे।

† स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना जन्म का नाम मूलशंकर बतलाया था, जैसा कि इस श्लोक से पाया जाता है (श्लोक) क्षोणिमाहीन्दुभिराभयुतेपौक्रमे वत्सरेय । प्रादुर्भूतो द्विजवरकुले दक्षिणे देशवर्य्ये ॥ मूलेनासीजननविषये शंकरेणापरेणाख्यति मापप्रथमवयसिप्रीतिदासज्जनानाम् ॥ १ ॥ देखो दिलफुशायन्त्र फतहगढ़ की छपी दिनचर्या का अंतिम पृष्ठ।

* कापड़ी लोगों में भी उपनयन कराया जाता है।

एक इसके रामपुरा ग्राम से निकट के "थांकागीर" नाम उत्तम ग्राम का रहने वाला जमींदार का लडका तो इसके नृत्य पर मोहित हो निज घर त्याग रात्रि दिन इसी के घर पड़ा रहने लगा।[†] एक दिन शीत काल में शिवरात्रि का व्रत आया भजनहरि अपनी सम्पूर्ण मण्डली और साज बाज ले कर शिवभजन सहित शिवालय में गया, यह वही शिवालय है कि जहाँ भजनहरि ने घृत के दीपक जलाये थे, शिवभजन को नृत्यकारी बना कर नाचने के लिये खड़ा किया, तब शिव भजन बोला, हे पिता जब हम किसी और मन्दिर में जाते हैं तो पुजारी आदिक बहुधा मनुष्य हमको मान, धन, देते हैं? परन्तु यह जगल शून्य स्थान है, यहां केवल उन मनुष्यों के अतिरिक्त जो राह, घाट। चलते हमारा तमाशा देखने को खड़े होगये हैं, और कोई दातार पुरुष तो है ही नहीं फिर किस आशा पर यहां जागरण करते हो? तब भजनहरि बोला हे पुत्र यह शिवजी महाराज सब की आशा पूर्ण करते हैं, और मैं तो इनका उपकार जन्मातर भी नहीं भूलूँगा। शिव भजन ने निज पिता के मुख से जब महादेव जी की इतनी बडाई सुनी बड़ा हर्ष माना, और मन में विचार किया, जिस शिवजी की पिता इतनी बड़ाई करते हैं, उससे कुछ मैं भी तो मागूँ। यह विचार मन ही मनमें प्रार्थना करने लगा, हे शिवजी मैं तेरे द्वार पर आज उस भावना से नृत्य करूगा जो शास्त्र में इन्द्र की अप्सराओं ने भगवान के सम्मुख किया लिखा है। और अपने मन और वाणी की शुद्धता से आपके वे गुणानुवाद गाऊगा जो नारद, देव, किन्नर वा गन्धर्वादि ने भी न गाये हों। इस सेवा का मुझको यथार्थ फल देना तेरे ही हाथ है। इतना विचार कर मन खोलकर ऐसा नृत्य किया जैसा पार्वती जी के आगे महादेव जी ने स्वत भी नहीं किया होगा। अर्द्ध रात्रि तक जागरण होता रहा, और महादेव जी ने भी जो कुछ वर देना था दे दिया * परन्तु शिवभजन उस समय इसी आशा में जागता रहा

† आजकल भी अनेक रूप रसिक मनुष्य रासधारियों के उज्वल वर्ण लडकों पर रागी हो जाते हैं।

* हमारे सिवाय कोई क्या जाने महादेव जी ने शिवभजन के नृत्य से प्रसन्न होकर यह वरदिया कि हे बालक तू प्रसिद्ध पुरुष होगा, परन्तु तेरे पिता ने अपने वचन का यथार्थ पालन नहीं किया, अपनी आजीविका के आधीन हो आज से पहिले तेरा नृत्य अनेक स्थानों पर कराके टके कमाये इस लिये उसको तेरा सुख न होगा, ।

कि शिवजी महाराज मेरी सेवा का फल प्रकट होकर देवेंगे । और सब मनुष्य सो गये तब तो शिवजी की मूर्ति पर चढ़ी हुई वस्तु फल फूल मिठाई आदि को मूसे (चूहे) उठा २ कर ले जाने लगे । और कितनोंही ने तो शिवलिंग अर्थात् मूर्ति पर मींगन (बीट) भी कर दई, तब तो शिवभजन को अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ मन में विचारने लगा कि जिस शिव ने अपने द्रव्य की ही रक्षा नहीं की वह मेरी क्या आशा पूरेगा यह विचार निराश हो आप भी सो गया । प्रात काल के समय जब सब मनुष्य सोतेसे उठे भजनहरि ने शिवभजनको जगाया और कहा उठ बेटा महादेवजीको नमस्कारकर अपने घर चलें । तब शिवभजन बोला हम नहीं जावें दूरसे नमस्ते है, कि यह शिव भो कोई पदार्थ है जो अपने द्रव्य को चूहोंसे न बचा सका हमारा क्या उपकार कर सक्ता है ।

"भजनहरि बोला हे पुत्र"

"मायांतुप्रकृतिविद्यान्मायिनन्तुमहेश्वरम्"

अर्थात् प्रकृति का नाम माया है, और प्रकृत्यऽवच्छिन्न जो चैतन्य है उसी का नाम महेश्वर है, (यह श्वेताश्वर उपनिषद् की श्रुति है)

"और देखो"

"तंयथायथोपासतेतदेवभवति" तद्धैनान्भूत्वाऽवतितस्मादेनमेववित्सर्वेरेवै तैरूप्यासीतसर्वꣳहैत द्भवतिसर्वꣳहैनमेतद्भूत्वाऽवतिःश०मं०ब्रा०२० *

इसका अर्थ यह है कि उस परमेश्वर की जो जैसे रूप से उपासना करता है, वह तद्रूपही होजाता है, और उसी रूप से अपने उपासक का संरक्षण करता है, इस लिये जो लोग एव विधि गुण सम्पन्न ईश्वर को जानते हैं उनको चाहिये कि वे उक्त सभी रूपों से उसकी उपासना करें । वह सर्व स्वरूप हो जाता है और तद्रूपहो के इन सभी का रक्षण करता है । इसी प्रकार महादेव जी भी हैं ॥

। आगे चलकर स्वामी दयानन्द सरस्वती (शिवभजन) को महादेवजी स्वप्नमें दर्शन देंगे ।

* कोई यह शंका न करे कि कापडी को इतनाज्ञान संभव नहीं ? गुजरात देश के अनेक शूद्र लोग भी अच्छे व्याकरणी होते हैं और भजनहरि तो अच्छा जानकार पुरुष था ।

शिवभजन बोला मैं अब आपकी एक बात भी नहीं मानूँगा ‡ मेरा विश्वास धातु पाषाण की प्रतिमाओं पर नहीं रहा, इनसे कोई फल की प्राप्ति नहीं। इनका पूजना सर्वथा व्यर्थ है, मैं आपकी और सब बात मानूँगा परन्तु मूर्ति पूजा तो मैं बिलकुल नहीं करूंगा, यह सुन भजनहरि को बड़ा कष्ट हुआ, क्रोध में आकर पुत्र को बुरा भला कहने लगा, इस समय शिवभजन का मित्र जिमींदार का लड़का भी उपस्थित था, भजनहरि शिवालय से अपने घर आया, पुत्र से ऐसा अप्रसन्न हुआ कि मुख से बोलना भी छोड़दिया अब शिवभजन का गीत नृत्य तो बिलकुल ही छूट गया केवल दादी, माता, भगिनी, चाचा, चाची, के सहारे से यह व्याकरण सिपाही पढ़ता रहा, जब इसकी अवस्था पन्द्रह सोलह वर्षकी हुई तब इसकी प्यारी भगिनी और प्यारे चाचा का परलोकवास होगया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती आप कहते हैं कि एक रात्रि को मैं अपने किसी मित्र के स्थान पर बैठा हुआ नाच देख रहा था, कि मेरे घर से एक मनुष्य ने आकर कहा तुम्हारी भगिनी अत्यन्त बीमार मरणान्त को पहुँची है, यद्यपि उसकी चिकित्सा और बचनेके अनेक उपाय किये गये परन्तु वह हमारे निज गृह पहुँचने के दो घंटे के भीतर भीतर ही मृत्युको प्राप्त होगई।

'इस पर' भाई जवाहरसिंह जी अपनी संग्रह ⊛ में लिखते हैं कि यह लिखना स्वामी जी का असम्भव जान पड़ता है कि घर में प्यारी भगिनी को प्राणान्त छोड़ कर भाई नाच, तमाशा देखने चलाजाय। हाँ यह विश्वास होसक्ता है कि कापड़ी लोग जो नाचने, गानेका काम करते हैं, लालच में आकर या किसी देवमंदिर में बुलाये जाने पर निज आजीविका भंग होने का भय मान, घर के रोगी को छोड़ सहती ले बहुधा चले जाते हैं॥

भगनी और चाचा के मर जाने पर शिवभजन को बहुत कष्ट हुआ, जो कुछ

‡ इससमय तो यहकहदिया कि नहींजाते नमस्तेहै-परन्तु जब कुछदिनों बाद ज्ञानहुआ तो पश्चाताप किया और सम्पूर्ण समाजियों को नमस्ते ही कहने का उपदेश किया। तथा कुछ पीछे जब सम्वत् १९३८ में पुस्तक आर्योद्देश्य रत्नमाला बनाकर छपाई तो उसमेंभी नमस्ते शब्दको मानरखा।इसका अर्थयह लिखाहै कि मैं तुम्हारा मान्य न करता हूं देखो संख्या १००

नाम मात्र घर में मीठा बोलने का सहारा था तो दादी माता के अतिरिक्त बिल्कुल नहीं रहा। इधर पिताने विचारा कि जब तक इस का विवाह न करूगा यह मेरे काम का हर्गिज न होगा बस, इसका पिता विवाह की तैयारी करने लगा यह देख शिवभजन के मित्र ने इससे कहा क्यों मित्र अब क्या करोगे? हमारा तुम्हारा बहुत दिनों से यह वचनालापहो चुका है कि विवाह के बखेड़े में नहीं पड़ेंगे। अब यही विचार उत्तम दीख पड़ता है कि किसी बहाने से भाग चलें इसको शिवभजन ने स्वीकार कर निज माता पिता से कहा मैं राजकोट पाठशालामें मित्र सहित पढने जाऊंगा परन्तु मातापिता ने आज्ञा नहीं दी इधर इसके मित्र का विवाह आगया तब तो इस का मित्र जमींदार का लड़का बाईस (२२) वर्ष की और शिवभजन सोलह (सोलह) वर्ष की अवस्था में गुप्तरूप गृह, ग्राम, परिवार, त्याग देशांतर को चल दिये।

(क) एक मनुष्य से मित्रता का होना (जिसका स्थान इनके गृह से छ. मील था) स्वामीजी ने स्वत. स्वीकार किया है, और यह भी निश्चय होता है कि

* यह स्वामी दयानन्द की उर्दूसवान्ह उमरी इस्लामी प्रेस लाहौर में स० १८८९ ई० की छपी देखो पृष्ठ २४।

कि उसके साथ भागने का हाल भी बहुधा अपने विश्वासी समाजियो को स्वामी जी ने गुप्त रूप से अवश्य कह दिया है, अब ये अपनी निन्दा के भय से नहीं कहे वो उनकी इच्छा, परन्तु सत्य बात अधिक दिन गुप्त नहीं रहती, पुस्तक "ग्रन्थी फोबिया" में जिसने यह लिखा कि अपनी जाति, पैदायश, जिलेका नाम बतलाने से स्वामी साहिब पकड़े नहीं जा सकते थे। क्योंकि इस बात का किसी को यक़ीन नहीं कि सिवाय उसके बेटे या किसी और रिश्तेदार के उस जिले से जहा उसकी रहायश है, और कोई शख्स नहीं भागा होगा, व नीज़ दयानन्द सरस्वती नाम स्वामी साहिब का वालदैन का रक्खा हुआ नहीं है। और असल उर्दू में भी देखो।

اپنی جاۓ پیدایش کے ضلع کا نام بتلانے سے سوامی صاحب پکڑے نہیں
جا سکتے تھے کیونکہ اس بات کا کسی کو یقین نہیں کہ سوامی اسکے بیٹے یا اور
رشتہ دار کے اس ضلع سے جہاں اسکی سکونت ہے اور کوئی شخص نہیں بھاگا
ہوگا و نیز دیانند سرسوتی نام سوامی صاحب کا والدین کا رکھا ہوا نہیں ہے *

* यह लेख उर्दू की किताब ग्रन्थी फोबिया-अरोड़वंश प्रेस लाहौर की छपी हुई पृष्ठ १५ पंक्ति ९ से और रद्दुबतलान पृष्ठ ७६ से लिया गया है।

उपरोक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि जो मनुष्य दयानन्द सरस्वती के साथ घर से भागा उसको बहुधा समाजी मनुष्य जान बूझ कर निज निन्दा के भय से प्रकट नहीं करते उलटा उसको गुप्त रखते अर्थात् छिपाया चाहते हैं।

शिवभजन ने माता पिता को अपने वियोग का महान कष्ट देकर अपना जन्म कृतार्थ किया तब घर से निकलने का एक सच्चा और छोटा सा बहाना यह किया कि मैं अपने मित्र से मिलने जाता हूँ वहा से शीघ्र चला आऊंगा। परन्तु यह केवल माता पिता से झूठा बहाना ही था मन में तो मित्र के संग भागने की थी।

(द) स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं कि जब मैं अपने घर से चला सन्ध्या समय सम्वत् १९०३ वैक्रमी था, पहिली रात आठ कोश के अन्तर पहुँच कर एक नगर के निकट जा रहा। और दूसरे दिन ३० मीलके अतन्र पहुँचा, तीसरे दिन मैंने एक सरकारी नौकर की जुबानी यह सुना कि कुछ घोड़ों के सवारों सहित फौज के मनुष्य मेरे नगर के किसी तरुण पुरुष को ढूँढते फिर रहे हैं और कहते हैं कि वह मनुष्य निज गृह त्याग कर भाग गया है, मैं यह समाचार पाकर शीघ्र आगे बढ़ा ही था कि कुछ मगते भिक्षुक मनुष्यों ने मेरे बहु मूल्य पट, आभूषण, कंठ, अगूठी, इत्यादिक सब छीनलिये। और मैं स्यांही नामक ग्राम में पंडित लाला भक्त के पास पहुचा, वहाँ मुझको एक ब्रह्मचारी मिला जिसने मुझ को ब्रह्मचारी बनाकर मेरा नाम "शुद्धचेतन" रखलिया, औरमैं रगदार कपड़े बदल कर अहमदाबाद के निकट एक कोट का गढ़ नाम नगर में आया, यहां मुझको एक बैरागी मिला जो मेरे कुटुम्बियों को भले प्रकार जानताथा। मैंने अपने घर से निकल जाने का सारा वृतांत उसको कह सुनाया, तब उसने मुझ को बुरा भला कह कर पूछा अबतू कहा और किधर जायगा, तब मैंने शीघ्रतासे कहदिया कि इस वर्ष जो सिद्धपुर का मेला कार्तिक में होने वाला है उसमें जाता हूँ, और इतना कहकर मैं सिद्धपुर में जाकर नीलकंठ महादेव के मन्दिर में ठहरा, उस बैरागीने यह बड़ा छल किया कि मेरे पिता को समाचार देदिये, और मेरा पिता मुझको पकड़ने के लिये बहुतसी फौज लेकर सिद्धपुर के मेले ही में चला आया था,

(क) यह कथन स्वामी का ठीक नहीं है, सत्य समाचार नीचेसंम्टर में देखो।

(ख) जब स्वामी जी और उनके मित्र घर से चले सम्वत् १८९७ वै० था और यह कहना भी स्वामी जी का झूठ है कि भागने के समय मेरी उमर २२-वर्ष की थी, * क्यों कि यदि यह इतनी अवस्था के होते तो भगते भिखारियों के हाथ से लुटे नहीं जाते, और एक वैरागी से बुरा भला सुन अपना गुप्त भेद नहीं देते, जो पट, आभूषण दोनों के पास थे भीलों ने छीन लिये और शिव भजन का मित्र भी इससे जन्मांतर के लिये जुदा होगया ‡ और यह बिचारा अकेला ही रह गया और इसने योगी सन्यासियों के सहारे दो तीन महीने व्यतीत किये और उनके साथ साथ ही एक स्याही नामक नगर में पहुँचा और विद्योपार्जन का यत्न वा भोजन का प्रबन्ध न हुआ तो आगे वह सीतापुर पहुंचा यहां भी योगियों के साथ ही में कुछ दिन रहकर फिर आगे चला, इधर इसके मित्र के पिता के चार मनुष्य भी ढूढते फिर रहे थे एक साधु के पत्रद्वारा समाचार पाकर यहां आये और सिद्धपुर में योगियों समेत इसको घेर लिया, तब शिवभजन ने डर के मारे यह कहा कि मुझ को यह साधु बहकाकर ले आये और अब कोई मुझको मेरेपिता के घर पहुँचादे तो मैं घर जाने को तैयार हूँ । इधर योगी कहने लगे महाराज इसको हम नहीं लाये स्याही ग्राम में माँगता फिरता था हमारे संग हो लिया हम नहीं जानते यह कहां का रहने वाला कौन है । उन चार मनुष्यों ने शिवभजन से पूछा कि अमुक तुम्हारा मित्र कहां है, तब कहा मित्र का हाल मुझे मालूम नहीं । वे मनुष्य शिवभजन को पकड कर ले चले और मार्ग में अनेक प्रकार की धमकियां दे कर भी पूछा परन्तु इसने अपने मित्र का कोई पता नहीं दिया, इसका पिता बुलाया गया, और उसको भी समझाया गया परन्तु कुछ कार्य सिद्ध न हुआ तब यह दोनों पिता पुत्र छोड दिये गये भजनहरि शिवभजन को लेकर निज घर पर गया, बहुत कुछ बुरा भला कहा विश्वास बिलकुल जाता रहा, शिवभजन अपने भागने की घात में लगा रहा कि ऐसा न हो जो गुप्त भेद खुलजाय । भजनहरि को भी इसके भागने

---

* आर्य्यावर्त पत्र कलकत्ता खंड १ संख्या ४९ में स्वामी जी को भागने के समय १६ वर्ष की ही अवस्था लिखी है,

‡ यह कुछ गुप्त भेद है जिसको हम विना दूसरे प्रमाण के नहीं लिखते ॥

। असल में इसका मित्र प्रथम दिन से ही इसके साथ नहीं गया दो चार दिन पीछे घर से चला था ।

का भय हुआ, इसको कई आदमीयों के पहरेमें रखने लगा, एक दिन शिवभजन ने कल्पित निद्रा में घर्राटे लगा लगा कर पहरेदारों को यह विश्वास दिलाया कि शिवभजन अवश्य सोगया, जब पहरेदारों ने इसको सोया जाना आप भी सब सोगये, इस समय रात्रि के ३ बजे थे, तबतो शिवभजन भी चुपके चुपके उठकर चला और एक पीतल का तूम्बा,इसलिये हाथ में लेलिया कि यदि किसी ने चलते हुए टोक लिया तो कह दूगा कि पाखाने जाता हू ॥

[क] पाया जाता है कि इस समय तक इसकी विद्या और बोध उत्तम न था क्योंकि जो मनुष्य अपने माता पिता को ऐसा दु ख देवे जिसका नाम पुत्र वियोग है, उससे बढ़कर और दुराचारी कौन होगा, तुलसीदासजी ने सत्य कहा है ।

दोहा-तुलसी या संसार में । बड़े दुःख यह चार ॥
भूमि छुटन या ऋण बँधन । मरे पुत्र या नार ॥१॥

तथा।देखो ।

श्लो०-परंक्षिपतिदोषेण वर्तमानः स्वयंतथा ।
यश्चक्रुध्यत्यनीशान· सचमूढतमोनर· ॥१॥

(श्लोक का अर्थ) आप तो दोष रूपी सिन्धु में निमग्न होपरन्तु औरों को दोष लगाकर दूषित करता है, तथा जो दुर्बल और निष्पौरुष होकर अत्यन्त क्रोध कर्ता है, वह पुरुष तम अर्थात अतीव मूढ है ॥

(द)स्वामी जी लिखते हैं कि जब मैं एक मील तक चला गया तो लोगों को मेरे चले जाने का हाल मालूम हुआ, मैंने मार्ग में एक बहुत बडा वृक्ष देखा जिसकी शाखा चारों ओर दूर दूर फैली हुई थी, और एक देव मन्दिर (शिवालय) उन शाखाओ से ढका हुआ था, मैं उस वृक्ष पर चढ गया और उसकी शाखाओं में जो मन्दिर के ऊपर छाई हुई थी छिप गया, एक घन्टे का समय भी व्यतीत न हुआ था कि मैं क्या देखता हूँ कि कितने ही सिपाही मुझे ढूढते फिर रहे हैं, मैं उनको देखकर पाषाणवत् स्थिर हो गया, तब वे सिपाही देख भाल कर चले गये और मैं सम्पूर्ण दिवस वृक्ष में छिपा रहकर रात्रि होते ही निकल भागा, न किसी से मिला और न मार्ग पूछा सीधा अहमदाबाद पहुँचकर बडोदा को होलिया, यहां चेतानि-

यों से मिला और मेरा निश्चय वेदांतपर होगया, और मैंने समझा कि ब्रह्म मैं हीहूँ इस षडोद्रे मे मुझ को एक काशी की रहने वाली स्त्री मिली जिसने बतलाया कि कि अमुकस्थान पर विद्वान पंडित का समारोह होने वाला है, मैं उसी ओर चला गया, यहां पर सच्चिदानन्द नामी एक परमहंस मिले, उन्होंने कहा चाल्ड़ाकल्याणी में बहुत से साधु रहते हैं तब मैं उधर चला गया, और एक सत्यशीलधान दीक्षित ब्राह्मण से मिला जिससे कुछ वादानुवाद हुआ, फिर मैंने परमहंस परमानन्द जी से विद्योपार्जन आरम्भ कर थोड़ेही समय में वेदान्त परभाष्य और कई पुस्तक देख ली, मैं उस समयब्रह्मचारी बना हुआ था, और अपनेहाथ की बनाई हुई रसोई खाता था, सो इससे छुटकारा पाने के लिये मैंने चतुर्थ श्रेणी के संन्यासी होने का विचार किया, और एक ऐसा विचार करने की अधिकता इसलिये थी कि ब्रह्मचारी रहने से ऐसा न हो पकड़ा जाऊ, क्योंकि मेरे कुटुम्बियों की प्रसिद्धता से मुझे पूरापूरा भय था * और अभीतक मेरा नाम वही प्रसिद्ध था जो घर में माता पिता और परिवार के मनुष्य बोला करते थे ‡ इसलिये मैंने यही विचार उत्तम समझा कि सन्यासी होकर निडर और स्वतन्त्रहो जाऊगा, सो मैंने अपने एक मित्र दक्षिणी पंडित से प्रार्थना करी कि आप मेरे सन्यासी होने के लिये सब से विद्वान दीक्षित से कहदें, उस समय मेरे मित्र ने तो मेरे विषय में बहुत कुछ कहा परन्तु दीक्षित जी ने मुझे सन्यासी नहीं किया ॥

[क]ऊपर के लेखपर पाठकगण ध्यान देवेंकि ३ बजे प्रातःकाल के समय स्वामी जी सोतेसे उठ पीतल का तूम्बा लेकर भाग पड़े और जब मन्दिर पर चढवृक्ष में छिपे हुये देख रहे थे कि सिपाही ढूढते फिर रहे हैं तो एक घंटा भी न हुआ था भावार्थ यहकि चारभी नहींबजेथे, क्या खूब! एक घंटेही में सब कुछ होगया, और खैर जो कुछ उनका लिखा हुआ सत्य ही समझ लिया जाय तो उनकी बहुत बड़ी कृतघ्निता है कि घरसे भागने पर मन्दिर का सहारा लिया और उसमें छिपकर छुटकारा पाया, फिर थोड़े दिनों पीछे मूर्तिपूजा और मन्दिर की बुराई करने लग गये काशी निवासनी स्त्रीने, जिस स्थानका पता दिया उसका नाम भी गुप्त रक्खाऔर

*क्यों नहीं कहते कि जो खोटे कर्म करके भागे थे उनका भय था।

‡ अर्थात शिवभजन।

अपने संन्यासी होने का कारण भी जैसा कुछ बतलाया पाठकवृन्द समझ सकेंगे। स्वामी जी की सचाई का यह हाल है कि कभी कहते है मेरा नाम बदल कर शुद्ध चेतन रक्खा गया, कभी कहते हैं जो नाम घर पर पुकारा जाता था वही था इस संन्यास लेना हुआ। पाठक गण जब तक स्वामी के माता पिता परिवार के मनुष्य तथा उनके (जो साथ भागा था) माता पिता रहे इन्हों ने अपना वृतांत गुप्त ही रक्खा, परन्तु जब सब के मर खप जाने के समाचार मिल गये तो निजमित्र के बदले आप ही जमीदार के पुत्र बन गये और भागने का साल सम्वत् भी झूठ सच मन माना सोही प्रसिद्ध किया, यह भेद किताब उर्दू "फसान अजायब" (जिसका नाम नागरी में मोहिनी चरित्र है) की बन्दर वाली कहानी से पूरा २ मिला हुआ है यथार्थ जो कुछ है आगे चल कर लिखेंगे। अभी तो स्वामीजी की स्वहस्त लिखित कहानी और हमारा शंका समाधान ही बराबर देखते चले जाओ।

[द] स्वामी जी लिखते हैं जब सन्यासियों ने मुझको चेला न बनाया तो मैं अप्रसन्न न हुआ, किंतु थोड़े ही समय पश्चात दो महात्मा दक्षिण की ओर से आये, जिनमें एक स्वामी दूसरा ब्रह्मचारी था, और दोनों एक जंगल में जहा मेरी विश्राम कुटी थी दो मील के अन्तर पर ठहरे थे, मेरा मित्र दक्षिणी पंडित जो बड़ा वेदान्ती और विद्वान पुरुष था उन से मिलने गया, मैं उनके साथ गया, उनके पास जाकर हमारा वादानुवाद शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने कहा हम दक्षिण देश के उस स्थान से आये हैं जहाँ शंकराचार्य्य का शृंगी मठ है, और अब द्वारिका को जावेंगे उनमें जो स्वामी था उसका नाम पूर्णानन्द सरस्वती था, मैंने अपने मित्र दक्षिणी पंडित से कहा, मुझको इनसे ही कहकर संन्यासी कराद़ो? तब मेरे मित्रने पूर्णानन्द सरस्वती जी से कहा, वे जाति के महाराष्ट्र ब्राह्मण थे, कहने लगे। हम नहीं करते, किसी गुजराती से जाकर मिलो तब मेरे मित्रने बहुत कुछ कह सुनकर मैं सन्यासी करा दिया और मेरा नाम "दयानन्द" हो गया, और गुरुने मुझको एक दण्ड देकर उसकी विधि बतला दी, परन्तु मेरे से नहीं बन पड़ी क्योंकि विद्योपार्जन में विघ्न होता था वे मुझे सन्यासी बनाकर द्वारकाकी ओर चले गये।

(क) प्यारे पाठकगण प्रथम बारकेछपे पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ट १६३ पंक्ति ९ में स्वामीजी लिखते हैं कि जिस पुरुष को विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण

जितेन्द्रियता हो और विषय भोग की इच्छा न हो उसी को सन्यास लेना उचितहै, अन्य को नहीं" बस इस लिखने में यह प्रकट होता है कि जिस समय आपने सन्यास लिया था यह ज्ञान नहीं था कि जिस पुरुष को विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितेन्द्रियता हो और विषय भोगकी इच्छा न हो उसी को सन्यास लेना उचित है अन्य को नहीं. नहीं तो कदापि सन्यास न लेते, क्योंकि आप में अद्यपयत विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितेन्द्रियता नहीं थी, और विषय भोग की इच्छा पूर्ण थी, विद्या ज्ञान यथार्थ होता तो परस्पर विरुद्ध शास्त्र प्रतिकूल युक्ति-रहित लेख क्यों करते, वैराग्य के विरुद्ध धनादि पदार्थों में राग क्यों होता, पूर्ण जितेन्द्रियता का लक्षण जो आपने ही प्रथम बारके छपे "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ५८ पंक्ति २१ में लिखा है, उसका कुछ भी चिन्ह पाया जाता विषय भोग की इच्छा न होती तो उत्तमोत्तम वस्त्रों और भोजनों से क्या प्रयोजन था, अच्छा किया जो आपने सन्यास का अन्त में त्याग कर दिया, क्योंकि पूर्ण जितेन्द्रियता होने और विषय कषाय भोगों की इच्छा घटने में आपके अन्त समय तक त्रुटि थी।

(ढ) फिर कुछ दिन तक मैं उसी स्थान पर रहा परन्तु जब मैंने सुना कि व्यास आश्रम में स्वामी योगानन्द रहते हैं, उनके पास योगविद्या सीखने चला गया, और वहां जाकर बहुत कुछ योगाभ्यास सीखता रहा।

(क) प्यारे पाठकवृन्द ! कहां तक लिखा जाय दयानन्द सरस्वती ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने तथा दूसरे मनुष्यों को अपना सच्चा योगाभ्यासी विदित कराने के लिये निज जीवनचरित्र में मनमाना अट्ट सट्ट भर मारा, परन्तु खेद इस बात का है कि फिर भी कुछ लाभ न हुआ, हम सग्रह में केवल वही समाचार लिखेंगे जिनकी आवश्यकता है, स्वामी जी ने अपने जीवनचरित्र में छोटी सी बात को भी इतना बढ़ा कर लिखा है जिससे बहुधा व्यर्थ कागज काले हुए, अब हम केवल उनके जीवनचरित्र से भी संक्षेपरूप लेते हैं, क्योंकि विस्तार से हमारा क्या प्रयोजन है।

(द) स्वामी जी लिखते हैं कि मैं सन्यासी हो कर जब संस्कृत विद्या का पण्डित हो गया तो चित्तौड़ के आस पास कृष्ण शास्त्री रहता था वहाँ गया और उससे व्याकरण विद्या का और भी अभ्यास किया, फिर चाल्डा कल्याणी में आया

तब ज्वालानन्द शिवानन्द योगियों से मिलकर कुछ काल उनके संग रहा और उत्तम योगाभ्यास में निपुण होगया तब अहमदाबाद के निकट दूधेश्वर महादेव आबू पहाड़ की चोटी पर इत्यादिक स्थानो में जो योगाभ्यासी मिले उनसे इसी विद्या को सीखता हुआ सम्वत् १९११ में प्रथम ही कुंभ के मेले पर हरिद्वार पहुँचा, वहां से हृषीकेश होकर टिहरी तथा टिहरी में आया राजपंडितों से मिला वाममार्ग का भेद जान श्रीनगर केदारघाट रुद्रप्रयाग होता हुआ अगस्तमुनि की समाधिपर पहुँचा वर्षा ऋतु वहां ही पूरीकर केदारघाट गुप्तकाशी त्रियुगी नारायण आदि स्थानों में घूमा अलकनन्दानदी के तट २ दहिने किनारे २ फिरता मन्मथ तीर्थ में आया, मार्ग के कष्टों से खेदखिन्न होकर एक समय मैंने अपना ही पश्चाताप किया कि हा ! मैंने घरपर रहकर ही विद्या क्यों न पढ़ी जो इस महान कष्ट में न पड़ता, फिर मैंने एक मनुष्य की जान बचाई, और लौटकर बद्री नारायण पहुंचा, रात्रि को रावलजीके स्थान पर भोजन कर सो रहा, प्रातः समय चिलकिया घाटी में उतरकर रामपुर में आया सो एक महात्मा रामगिरी नामी के दर्शन हुये, वह रामगिरी कभी सोता नहीं था, मैं उससे आज्ञा ले काशी पुर और वहां से द्रोणसागर पहुँचा जहां शीतकाल काट मुरादाबाद सम्भल हो गढ़मुक्तेश्वर के पार पहुंचा उस समय मेरे पास "शिव साधन प्रदीपका" "योग बीज" "कपीलानन्द सहिता" यह तीन पुस्तक भी थीं, जिनको मैं कभी २ देखा भी करता था, इनमें "नाडीचक्राति" और "नाडीचक्र" उत्तम विषय थे जिनसे मनुष्य के शरीर के भीतरी भाग का भेद खुलता था, परन्तु उसका जानना बड़ा कठिनथा, एक समय मुझे यह भ्रम उत्पन्न हुआ कि कहीं यह पुस्तक अशुद्ध तो नहीं हैं, और इस भ्रम मिटाने के लिये मैंने अनेक यत्न किये एकबार गंगाजी में कोई मृतक शरीर बहा जाता था, उसको देख मैं जल में घुस (पैठ) किनारे पर पकड़ लाया, और तीक्ष्ण कर्द (तेज चाकू) से काट फाड़ कर खूब ही देखा परन्तु कुछ दृष्टि नहीं पड़ा तब लाचार हो पुस्तकों सहित मुर्दा जल में पटक दिया, और आगे को चल दिया, कुछ दिन गंगा के तटपर रहकर फर्रुखाबाद आया * फिर कई स्थानों पर फिर कर कानपुर में गया, यह समय ठीक

* प्रथम जब फर्रुखाबाद गये बिल्कुल नंगे थे जुबान संस्कृत ही बोलते थे ॥

सम्वत् १९१२ वैक्रमीके व्यतीत होनेका था, कानपुरसे इलाहाबादतक के बहुधा बड़े २ स्थान देखता हुआ मैं भादोके महीने में मिर्जापुर पहुँचा, और वहां काकाराम राजाराम शास्त्रियोंसे मिला, फिर चाण्डालगढ़ में पहुँचकर दुर्गाखोह के मन्दिर मे दसदिन गुजारे, और चावलखाना छोड़दिया पर यहाँ मुझको भंग पीने की बाँण [आदत] पड़गईथी, चाडालगढ के बाहर एक शिवजी का मन्दिर था, एक दिन मैं उस मन्दिर में जा रहा तो एक पिछले समय का बिछड़ा मनुष्य मुझको मिला परन्तु मैं भग के नशे में अचेत होरहा था, शीघ्र सो गया, तब स्वप्न मे क्या देखता हु कि महादेव और पार्वतीजी आपस में वार्ता कर रहे हैं । पार्वती जी शिव जी से कहरहीथीं दयानन्द का विवाह होजाय तो बडी श्रेष्ठ बात है*परन्तु शिवजीने स्वीकार नहीं किया, उस समय जो मेरी आख खुलगई तो बड़ाक्लेश प्राप्त हुआ †वृष्टि लगातार होरहीथी, मन्दिर में एक वृषभकी मूर्ति खड़ीथी, मैंने अपने कपडे और पुस्तक उसकी पिठपर धरदिये, और बैठगया तो क्या देखताहू कि एक मनुष्य उस वृषभके शरीर में घुस रहा है, मैंने अपना हाथ बढाकर पकडना चाहा तो वह निकल भागा, और मैं उसके स्थान मूर्ति में घुसकर सोगया । प्रात काल एक स्त्रीने आनकर वृषभकी पूजा करी और मुझको देवता समझके गुड और दही दिया और कहा महाराज भोजनकरलो, मैंने उसका कहनामात्र भोजन करलिया जिससे भगका नशा उतर गया, और मे आगे को चलपड़ा, परन्तु मैंने कभी किसीसे मार्ग नहीं पूछा, । मैं नर्मदा नदीके निकाश की ओर सघन वनों को अवगाहन करता हुआ एक ऐसे स्थान मे पहुँचा जहाँ अनेक बनचर दुष्ट जीव रहते थे, एक कालेरीच्छ (भालू) से मेरा सामना हुआ, परन्तु वह मेरे सोटेसे डरकर भागगया, मुझको नर्मदा नदीके निकाशके देखनेकी बड़ी उत्कंठा लगरहीथी, इसलिये निर्भय हुआ मै आगे ही को बढ़ाचलागया, कुछ मार्ग मुझको वृक्षों की सघनताके कारण सर्पके समान पेटके बल चलकर काटना पड़ा था, बस इसी प्रकार के अनेक कष्ट सहन करता हुआ चला २ मैं एक ग्राम के निकट पहुँचा, यहा के सरदारने मुझे दुग्धपिलाया, परन्तु उसकासो॰

* पार्वती जी का कहना महादेवजी स्वीकार करलेते तो स्वामीजी बड़े प्रसन्न होते,
† ऐसा क्यों नहो जिस शिवजी को बालकपन में स्त्री बनकर नृत्य दिखलाया उसने ब्याह की नाहीं करदी, यदि शिवजी इस समय विवाह की नाहीं नकरते तो सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी एक स्त्री को ११ पति की आज्ञा न देते,

जन मैंने इसलिये स्वीकार नकिया कि वह प्रतिमा पूजनेवाला था । इत्यादि०

[क] प्यारे पाठकवृन्द विचार करना चाहिये स्वामी जी का स्वहस्त लिखित जीवन चरित्र कहातक विश्वास करने योग्य है, इसमें जोकुछ लिखा है उसमें स्वामी जीने अपने योगाभ्यासी होने का सिद्धान्त निकलाया है, परन्तु हम कहते हैं कि स्वामी जी को योगाभ्यास का नामतक यादनहीं था, योगीपुरुष दुबले पतले निर्बल शरीर के होते हैं, स्वामी जी तो हृष्टपुष्ट मोटे ताजे थे । उनके शरीर पर योगाभ्यास का कोई भीचिन्ह नहीं था, समाधिका लगाना गुफा, गढे आदिक में बैठकर कुछ समय तक स्थिर होजाना दुनियाँ दिखलाव और केवल मानमात्रथा, इससे कुछ फलकी प्राप्ति वा योगविद्याका सम्बन्ध नहीं था, और यह स्वामीजी का लिखना और भी उनके मिथ्याभाषण का पता देता है कि आत्मानन्द से आत्म विद्या और योगानन्द से योगाभ्यास सीखा, तथा रामपुर में रामगिरि आदिक साधुओंसे कार्य्य सिद्ध किया ।

प्यारे पाठकवृन्द देखो तो सही क्या ? तुक मिलाई हैं, अनेक स्थानों का भ्रमण जिताकर स्वामीजी यह सिद्धकिया चाहते है कि उनका यह भ्रम केवल योगियों के ढूँडने ही का था । आपलिखते हैं कि मैंने एक मनुष्य की जानकपाई, परन्तु पूरा पता लिखते लज्जा उत्पन्नहुई जो नहीं लिखा, जानपड़ता है यहा भी कोई गुप्तभेद अवश्य है । आहा ! यह कितने आश्चर्य्य की बात है आपको जो मिला महात्माही मिला, स्वामीजी लिखते हैं किसी स्थान में मेरे पास कपडे तक नहीं थे कही लिखते हैं रंगे हुये कपडे और पोथी पुस्तक भी मेरे पास थे उनकी परीक्षाके लिये मैंने एक मुर्दा नदी मे से निकालकर चीरडाला और तीक्षण शस्त्र [तेज चाकू] भी मिलगया, और विना गुरोपदेश उनपुस्तकोंके शुद्धाशुद्ध का ज्ञानभी स्वयंही होगया, और सर्व पुस्तकें मुर्दे सहित जलमें डालदीं फिर आगेचले, महादेव के मन्दिर में जोवृषभथा, उसकी पिठपर धरनेको अन्य पुस्तक कहा से आई ? वृषभके शरीर में स्वामीजी मुखसे घसे या गुदासे ? यह स्पष्ट नही लिखा ? क्योंकि मूर्ति में केवल दोनों ही मार्ग खुले होंगे, और जिस मूर्ति के उक्त दोनो मार्ग ऐसे बड़े हो कि जिसमें मनुष्य घुस सक्ता है वह मूर्ति न मालूम कितनी बड़ी होगी ? और जिस शिवालयमें वह मूर्ति होगी उसके विस्तार का तो क्या ठिकाना है *

* यह सब भगके नशेकी लीला और मनकल्पना है,

सम्वत् १९१२ वैक्रमीके व्यतीत होनेका था, कानपुरसे इलाहाबादतक के बहुधा बड़े २ स्थान देखता हुआ मैं भादोके महीने में मिर्जापुर पहुँचा, और वहां काकाराम राजाराम शास्त्रियोंसे मिला, फिर चाण्डालगढ़ में पहुँचकर दुर्गाखोह के मन्दिर में दसदिन गुजारे, और चावलखाना छोड़दिया पर यहाँ मुझको भंग पीने की बाँए [आदत] पड़गईथी, चाडालगढ के बाहर एक शिवजी का मन्दिर था, एक दिन मैं उस मन्दिर में जा रहा तो एक पिछले समय का बिछड़ा मनुष्य मुझको मिला परन्तु मैं भंग के नशे में अचेत होरहा था, शीघ्र सो गया, तब स्वप्न में क्या देखता हूं कि महादेव और पार्वतीजी आपस में वार्ता कर रहे हैं । पार्वती जी शिव जी से कहरहीथीं दयानन्द का विवाह होजाय तो बड़ी श्रेष्ठ बात है*परन्तु शिवजीने स्वी कार नहीं किया, उस समय जो मेरी आंख खुलगई तो बड़ाक्लेश प्राप्त हुआ † वृष्टि लगातार होरहीथी, मन्दिर में एक वृषभकी मूर्ति खड़ीथी, मैंने अपने कपड़े और पुस्तक उसकी पिठ्ठपर धरदिये, और बैठगया तो क्या देखताहूं कि एक मनुष्य उस वृषभके शरीर में घुस रहा है, मैंने अपना हाथ बढ़ाकर पकड़ना चाहा तो वह निकल भागा, और मैं उसके स्थान मूर्ति मे घुसकर सोगया । प्रात काल एक स्त्रीने आनकर वृषभकी पूजा करी और मुझको देवता समझके गुड़ और दही दिया और महा महाराज भोजनकरलो, मैंने उसका कहनामान भोजन करलिया जिससे भंगका नशा उतर गया, और मैं आगे को चलपड़ा, परन्तु मैंने कभी किसीसे मार्ग नहीं पूछा, । मैं नर्मदा नदीके निकाश की ओर सघन वनों को अवगाहन करता हुआ एक ऐसे स्थान मे पहुँचा जहाँ अनेक वनचर दुष्ट जीव रहते थे, एक कालेरीछ (भालू) से मेरा सामना हुआ, परन्तु वह मेरे सोटेसे डरकर भागगया, मुझको नर्मदा नदीके निकाशके देखनेकी बड़ी उत्कंठा लगरहीथी, इसलिये निर्भय हुआ मैं आगे ही को बढ़ाचलागया, कुछ मार्ग मुझको वृक्षों की सघनताके कारण सर्पके समान पेटके बल चलकर काटना पड़ा था, बस इसी प्रकार के अनेक कष्ट सहन करता हुआ चला २ मैं एक ग्राम के निकट पहुँचा, यहां के सरदारने मुझे दुग्धपिलाया, परन्तु उसकासे-

---

* पार्वती जी का कहना महादेवजी स्वीकार करलेते तो स्वामीजी बड़े प्रसन्न होते,
† क्लेश क्यों नहो जिस शिवजी को बालकपन में स्त्री बनकर नृत्य दिखलाया उसने ब्याह की नाहीं करदी, यदि शिवजी इस समय विवाह की नाहीं नकरते तो, सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी एक स्त्री को ११ पति की आज्ञा न देते, -

जन में इसलिये स्वीकार नकिया कि वह प्रतिमा पूजनेवालाथा । इत्यादि०

[क] प्यारे पाठकवृन्द विचार करना चाहिये स्वामी जी का स्वहस्त लिखित जीवन चरित्र कहांतक विश्वास करने योग्य है, इसमें जोकुछ लिखा है उसमें स्वामी जीने अपने योगाभ्यासी होने का सिद्धान्त दिखलाया है, परन्तु हम कहते हैं कि स्वामी जी को योगाभ्यास का नामतक यादनहीं था, योगीपुरुष दुबले पतले निर्बल शरीर के होते हैं, स्वामी जी तो हृष्टपुष्ट मोटे ताजे थे । उनके शरीर पर योगाभ्यास का कोई भीचिन्ह नहीं था, समाधिका लगाना गुफा, गढे आदिक में बैठकर कुछ समय तक स्थिर होजाना दुनियाँ दिखलाव और केवल भानमतथा, इससे कुछ करामात प्रतिज्ञा योगविद्याका सम्बन्ध नहीं था, और यह स्वामीजी का लिखना और भी उनके मिथ्याभाषण का पता देता है कि आत्मानन्द से आत्म विद्या और योगानन्द से योगाभ्यास सीखा, तथा रामपुर में रामगिरि आदिक साधुओंसे कार्य्य सिद्ध किया ।

प्यारे पाठकवृन्द देखो तो सही क्या २ तुक मिलाई हैं, अनेक स्थानों का भ्रमण लिखकर स्वामीजी यह सिद्ध किया चाहते हैं कि उनका यहश्रम केवल योगियों के ढूँढने ही का था । आपलिखते हैं कि मैंने एक मनुष्य की जानबचाई, परन्तु पूरा पता लिखते लज्जा उत्पन्नहुई जो नहीं लिखा, जानपड़ता है यहां भी कोई गुप्तभेद अवश्य है । आहा ! यह कितने आश्चर्य्य की बात है आपको जो मिला सहायकी मिला, स्वामीजी लिखते हैं किसी स्थान में मेरे पास कपडे तक नहीं थे कहीं लिखते हैं रंगे हुये कपडे और पोथी पुस्तक भी मेरे पास थे उनकी परीक्षाके लिये मैंने एक मुर्दा नदी में से निकालकर चीरडाला और तीक्ष्ण वर्द [तेज चाकू] भी मिलगया, और विना गुरोपदेश उनपुस्तकोंके शुद्धाशुद्ध का ज्ञानभी स्वमेवही होगया, और सब पुस्तकें मुर्दे सहित जलमें डालदीं फिर आगेचले, महादेव के मन्दिर में जोवृषभथा, उसकी पिट्ठपर धरनेको अन्य पुस्तक कहां से आई ? वृषभके शरीर में स्वामीजी मुखमें घसे या गुदासे ? यह स्पष्ट नहीं लिखा ? क्योंकि मूर्ति में केवल दोनो ही मार्ग खुले होंगे, और जिस मूर्ति के उक्त दोनो मार्ग ऐसे बड़े हों कि जिसमें मनुष्य घुस सका है वह मूर्ति न मालूम कितनी बडी होगी ? और जिस शिवालयमें यह मूर्ति होगी उसके विस्तार का तो क्या ठिकाना है *

* यह सब गपके नरोंकी लीला और मनकल्पना है,

सम्वत् १९१२ वैक्रमीके व्यतीत होनेका था, कानपुरसे इलाहाबादतक के बहुधा बड़े २ स्थान देखता हुआ मैं भादोंके महीने में मिर्जापुर पहुँचा, और यहां काकाराम राजाराम शास्त्रियोंसे मिला, फिर चाण्डालगढ़ मे पहुँचकर दुर्गाखोह के मन्दिर में दसदिन गुजारे, और चावलखाना छोडदिया पर यहाँ मुझको भंग पीने की बाँण [आदत] पडगईथी, चांडालगढ के बाहर एक शिवजी का मन्दिर था, एक दिन मैं उस मन्दिर में जा रहा तो एक पिछले समय का बिछुडा मनुष्य मुझको मिला परंतु मे भंग के नशे में अचेत होरहा था, शीघ्र सो गया, तब स्वप्न मे क्या देखता हूं कि महादेव और पार्वतीजी आपस में वार्ता कर रहे हैं । पार्वती जी शिव जी से कहरहीथीं दयानन्द का विवाह होजाय तो बड़ी श्रेष्ट बात है*परन्तु शिवजीने स्वीकार नहीं किया, उस समय जो मेरी आंख खुलगई तो बड़ाक्लेश प्राप्त हुआ † वृष्टि लगातार होरहीथी, मन्दिर में एक वृषभकी मूर्ति खडीथी, मैंने अपने कपडे और पुस्तक उसकी पिष्ठपर धरदिये, और बैठगया तो क्या देखताहूं कि एक मनुष्य उस वृषभके शरीर में घुस रहा है, मैंने अपना हाथ बढाकर पकडना चाहा तो वह निकल भागा, और मैं उसके स्थान मूर्ति में घुसकर सोगया। प्रात:काल एक स्त्रीने आनकर वृषभकी पूजा करी और मुझको देवता समझके गुड और दही दिया और कहा महाराज भोजनकरली, मैंने उसका कहनामान भोजन करलिया जिससे भंगका नशा उतर गया, और मैं आगे को चलपड़ा, परन्तु मैने कभी किसीसे मार्ग नहीं पूछा, । मैं नर्मदा नदीके निकाश की ओर संघन वनों को अवगाहन करता हुआ एक ऐसे स्थान मे पहुँचा जहाँ अनेक वनचर दुष्ट जीव रहते थे, एक कालेरीच्छ (भालू) से मेरा सामना हुआ, परन्तु वह मेरे सोटेसे डरकर भागगया, मुझको नर्मदा नदीके निकाशके देखनेकी बड़ी उत्कंठा लगरहीथी, इसलिये निर्भय हुआ मैं आगे ही को बढ़ाचलागया, कुछ मार्ग मुझको वृक्षो की सघनताके कारण सर्पके समान पेटके बल चलकर काटना पड़ा था, बस इसी प्रकार के अनेक कष्ट सहन करता हुआ चला २ मैं एक ग्राम के निकट पहुँचा, यहां के सरदारने मुझे दुग्धपिलाया, परन्तु उसकाभी-

---

* पार्वती जी का कहना महादेवजी स्वीकार करलेते तो स्वामीजी बड़े प्रसन्न होते, † क्लेश क्यों नहो जिस शिवजी को बालकपन में स्त्री बनकर नृत्य दिखलाया उसने ब्याह की नाहीं करदी, यदि शिवजी इस समय विवाह की नाहीं नकरते तो सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी एक स्त्री को ११ पति की आज्ञा न देते,

के साथ लगा माता पिता का दिया पिछला शिवभजन* नाम छोड़ दयानन्द सरस्वती नया नाम पाया, यह पूर्णानन्द सरस्वती क्रोधी पुरुष था, जब स्वामी दयानन्द सरस्वती की गुरु से नहीं बनी तो फिर वहाँ से इनके देशाटनका आरम्भ हुआ, और देश देश नगर ग्राम घूमते यह पूर्वको चले यह समय ठीक २ इनकी २९ वर्षकी अवस्था का है उस समय सम्वत् १९१० था, जब यह पूर्णानन्द के पास से चले किसी भी धर्म पर विश्वास नहीं रखते थे, किंतु इनके चित्त की चचलता दिनो दिन नये २ विश्वासों में डाल भ्रम उपजा रही थी, यद्यपि इनको संस्कृत विद्या का अच्छा बोध होगया था, परन्तु इस समय इनका चित जो किसी धर्म का अनुरागी नहीं था, इस लिये यह चारो वेदो को भी भ्रम दृष्टि से ही देखते थे । इनकी इस चित्त की चचलताने घरघर की भिक्षा से गुजरान करा, इनको सम्वत् १९११ के कुम्भ के मेले ने हरिद्वार पर पहुचाया जहा देश देशान्तर के आये हुये साधु सत और गृहस्थी लोग कई लक्ष्य एकत्रित थे । स्वामी जी ने गुप्त रूप से भेद पाया कि इस मेले में कुछ मनुष्य ऐसे भी आए हैं जो मेरे पिछले कार्य्य से भेदू है, बस तत्काल भयमान जङ्गलका मार्ग लिया और हृषीकेश, बद्रिकाश्रम, केदारघाट आदि अनेक विकट और भयानक मार्गोको देखते विचरते राजधानी टिहरी में आये और यहा अच्छे २ कर्मेष्ठी विद्वानो की अधिकता देख प्रसन्नता सहित कुछ दिन रहकर उनमे मन बढाया, परन्तु जब अनेक पण्डितो से अधिक प्रीति होगई तो यह भी स्पष्टरूप से सिद्ध हो गया कि यह सब वाममार्गीहैं, जो माता, भगिनी, पुत्री प्रमुखो से विषय सेवने मासखाने मदिरापीने आदि नीचकार्य्यो हीमे धर्म्म समझते हैं । जब स्वामीजीको वाममार्गियोंकी पोलखुली तबतो इनसे अत्यन्त घृणाहुई, तत्पश्चात् स्वामी जीने उत्तराखण्ड की विषमभूमि का अवगाहनकर जोशीमठपहुच कुछ दिन के लिये आसनजमाया इस परि भ्रमण के समय यह वैरागी, योगी दण्डी, सन्यासी, ब्रह्म-चारी, आदि अनेक महात्माओ से मिले, और उनके सग अपने संस्कृत विद्या सीखने के उमग मे और इच्छाको पूराकरनेमें रहे परन्तु किसी धर्मसे इनको शांति नहीं मिली जिस वद में यह परमेश्वरके व्यतिरिक्त दूसरे की पूजा करनेकी आज्ञानहीं बतलाने

* गुजरात देश में पिता के नाम को मिलाकर बोला जाता है असल नाम शिव था और पिता का नाम भजन था दादा का नाम हरि था इस लिये भजनहरि का पुत्र शिवभजन पुकारा गया और निजही का नाम मूलशकर है ।

प्यारे पाठक गण खयाल करने की बात है यह गप्प नहीं तो और क्या है? फिर देखो महादेव पार्वती जी का वार्तालाप भी स्वामी जी ही ने सुना, और उनका आने हुए स्वामी जी ने ही देखा, और जो मनुष्य वहां थे सब सोगये थे अथवा अन्धे थे। मालूम होता है कि जब महादेव और पार्वती जी मनुष्यरूप संसार में विद्यमान थे स्वामी जी ने अवश्य देखे होंगे जो शीघ्रता से पहचान लिये नहीं तो स्वप्ने में देखी वस्तु बिना पूर्व ज्ञान के पहचानी नहीं जा सकी। और जो यह मान लिया जाय कि स्वामी जी ने महादेव पार्वती जी को उनकी मूर्ति के सहारे पर सदृश होने से पहचाना था तो उसमें मूर्ति पूजा सिद्ध होगई फिर स्वामी जी उसका खंडन करते लज्जित नहीं होते यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। और यह भी असम्भव है कि बड़े भयानक और सघन वनों में जहां पेट के बल भी चलना पड़ा आपको एक चूहे का बच्चा भी न मिला, किन्तु बस्ती के निकट एक भालू (रीछ) ने घेर लिया। हा! ऐसी २ झूठी गप्प लिखकर सत्यवक्ता अथवा "सत्यार्थप्रकाश" कर्त्ता बनना स्वामी जी को ही भाता था। जो स्त्री पूजा का सामान लेकर आई उसको आप भूखे मरते खा गये जो महानिर्धन गरीब लोगों का भाग है और वह भी केवल गुड़ और दही था, कोई उत्तम भोजन नहीं था परन्तु जिस मनुष्य ने दुग्ध पिलाया उसका भोजन इस लिये नहीं खाया कि वह मूर्तिपूजक था, किन्तु आश्चर्य की बात है। अब हम स्वामी जी की स्वहस्त लिखित व्यर्थ कहानी को छोड़के जो कुछ यथार्थ है वही लिखेंगे आगे चलकर इस पुस्तक में हमारी युक्ति प्रमाण अन्य ग्रन्थ लेखादिक का संग्रह यही होगा विशेष और कुछ न होगा।

(ख) जब पिछली बार भी शिवभजन छल कपट ही में भागा तो माता पिता ने भी सतोषधार कुछ पीछा नहीं किया, इधर यह महात्मा जी छुपते छुपते साधुओं के संग में नाना प्रकार के कष्ट सहन करते अनेक स्थानों में घूमे। जहां किसी प्रकार का सहारा मिला उसी सहारे पर विपत्ति के दिन काटे। जिसको विद्वान देखा उसी की सेवा चाकरी कर विद्या का लाभ उठाया, जहां किसी महात्मा का पता लगा उसी की दृढमुख्य समझी, निदान इस देशाटन के समय ही में एक पूर्णानन्द सरस्वती (जिसका दूसरा नाम आनन्दगिरी भी है) नाम सन्यासी मिला कुछ दिन उसके पास रहकर विद्यापढी तब "सरस्वती" इतना पुछल्ला अपने नाम

* भावउगा मातापिताका दिया पिछलाशिवभजन* नाम छोड़ दयानन्द सरस्वती नया नाम पाया, यह पूर्णानन्द सरस्वती मोची पुरुष था, जब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी गुरु से नहीं बनी तो फिर वहाँ से इनके देशाटनका आरम्भ हुआ, और देश देश नगर ग्राम घूमते यह पूर्वको चले यह समय ठीक २ इनकी २९ वर्षकी अवस्था का है उस समय सम्वत् १९१० था, जब यह पूर्णानन्द के पास से चले किसी भी धर्म पर विश्वास नहीं रखते थे, किंतु इनके चित्त की चञ्चलता दिनों दिन नये २ जिज्ञासों में डाल भ्रम उपजा रही थी, यद्यपि इनको संस्कृत विद्या का अच्छा बोध होगया था, परन्तु इस समय इनका चित्त जो किसी धर्म का अनुरागी नहीं था, इस लिये यह चारो वेदों को भी भ्रम दृष्टि से ही देखते थे । इनने इस चित्त की चञ्चलताने घर घर की भिक्षा से गुजरान करा, इनको सम्वत् १९११ के कुम्भ के मेले ने हरिद्वार पर पहुंचाया जहां देश देशान्तर के आये हुये साधु सन्त और गृहस्थी लोग कई लक्ष्य एकत्रित थे । स्वामी जी ने गुप्त रूप से भेद पाया कि इस मेले में कुछ मनुष्य ऐसे भी आए हैं जो मेरे पिछले कार्य्य से भेदू है, बस तत्काल भयमान जङ्गलका मार्ग लिया और हृषीकेश, बद्रिकाश्रम, केदारघाट आदि अनेक विकट और भयानक मार्गोंको देखते विचरत राजधानी टिहरी मे आये और यहा अच्छे २ कर्मष्टी विद्वानो की अधिकता देख प्रसन्नता सहित कुछ दिन रहकर उनमे मन बढ़ाया, परन्तु जब अनेक पण्डितों से अधिक प्रीति होगई तो यह भी स्पष्टरूप से सिद्ध हो गया कि यह सब वाममार्गी हैं, जो माता, भगिनी, पुत्री प्रमुखों से विषय सेवने मांसखाने मदिरापीने आदि नीचकार्य्यों हीमें धर्म्म समझते हैं । जब स्वामीजीको वाममार्गियोंकी पोलखुली तबतो इनमे अत्यन्त घृणाहुई, तत्पश्चात् स्वामी जीने उत्तराखण्ड की विषमभूमि का अवगाहनकर जोशीमठपहुंच कुछ दिन के लिये आसनजमाया इस परि भ्रमण के समय यह बैरागी, योगी दण्डी, सन्यासी, ब्रह्म चारी, आदि अनेक महात्माओं से मिले, और उनके संग अपने संस्कृत विद्या सीखने के उमंग मे और उद्यमको पूराकरने में रहे परन्तु किसी धर्मसे इनको शांति नहीं मिली जिस वेद मे यह परमेश्वरके व्यतिरिक्त दूसरे की पूजा करनेकी आज्ञानहीं बतलाते

---

* गुजरात देश मे पिता के नाम को मिलाकर बोला जाता है असल नाम शिव था और पिता का नाम भजन था दादा का नाम हरि था इस लिये भजनहरि का पुत्र शिवभजन पुकारा गया और शिवही का नाम मूलशंकर है ।

उस वेदको यह उससमय पढतो चुकेथे, परन्तु फिर भी उसके लोभसे अविश्वासी होकर कभी शैवी, कभीवैष्णव कभी वेदान्ती, कभीकुछ कभीकुछ गुप्तभावसे रहतेरहे, इससे यहभी सिद्धहोताहै कि जब मतमतान्तरके वेग भाल और व्यर्थ झगडेमें पडकर इनको कल्याणकारी मार्ग नही मिला और संस्कृत विद्याने इनकीबुद्धिमें अपना चमत्कार फैलाया तो यह विशेष विद्यापार्जनके अभिलाषीहुये पुन देशाटनमें हीप्रवर्ते, और सम्वत १९१६ व १९१७में जब कुछ दुर्भिक्ष सम्भव हुआ यह मथुराजीमें आए और जोशीबाबा के धर्मक्षेत्रमें डेराजमाया, और इसीक्षेत्र मे रसोई खाते और अपने आपको गुजराती ब्राह्मण प्रसिद्ध करते थे, यहा स्वामी जी ने वृजानन्द नामी अन्धेसाधु से (जिसने इनको पुत्र बना लिया था) पिछला पढा लौटा कर बहुत समय तक और भी पढा, क्योंकि यह वृजानन्द जी अच्छे विद्वान् पुरुष थे । जब दुर्भिक्ष काल हटा और साधारण समय हुआ तब पुन कुंभके मेले का आगमन हुआ यह मथुरा जी* से चलकर आगरे मे आये बाबू सुन्दरलाल डाकविभाग के मकान पर कुछ दिन आराम किया, क्योंकि उक्त बाबू जी को योगाभ्यासका अत्यन्त प्रेम था, और स्वामीजी को वह योगाभ्यासी समझे हुये थे । फिर स्वामी जी, भरतपुर, करौली, अलवर, जयपुर आदिक रजवाडोमें घूमते फिरते रहे, परन्तु इस देशाटनमें कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ, हा यह लाभ तो अवश्यहुआ कि जिस भयसे यह अबतक गुप्तरहे उस का अब नाम मात्र ही खटका रह गया था, और यही इनको निश्चय भी हो गया था, सम्वत् १९२३ के चैत्र कृष्णपक्ष में एक संन्यासियों की जमात रजवाडे से आनकर फर्रुखनगर के पास एक बाग में ठहरी † इनमें स्वामी दयानन्द सरस्वती भी थे, नगर में घूमते विद्वानों को ढूढते स्वामी दयानन्द ‡ जैन ढूढियापंथी के मकान पर आये, वादानुवाद करके चले गए, स्वामी दयाचन्द ढूँढिये की जितनी प्रसिद्धता थी उतनी विद्या नहीं थी, इस लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती को इनसे

* मथुरा जी में रह कर स्वामी जी वल्लभकुल के गोस्वामियो को देखते थे तो उन की विचित्र लीला पर मन ही मन में अनेक कुतर्क विचारे परतु द्रव्य की सहायता बिना कुछ न हुआ ।

† यह सब सन्यासी हरिद्वार को जाते थे ।

‡ फर्रुखनगर के ढूढिये जैनियों में स्वामी दयाचंद नामी और प्रतिष्ठित पुरुष थे जो मार्गशीर्ष सम्वत १९२९ में मर गए ।

मिलकर विशेष आनन्द नहीं हुआ, और अगले दिन सब सन्यासीगण देहली को चले गये, ※ और सम्वत् १९२४ के हरिद्वारकुम्भ के मेले में जामिले, कर्म्मयोगसे इस मेले में विशूचिकारोग ऐसा प्रचण्ड हुआ कि असंख्य मनुष्य, स्त्री, बाल, वृद्ध, मृत्यु को पागए, उस समय उक्त स्वामी जी भी शीघ्रतापूर्वक जान बचा कर उत्तराखण्ड को चले गए, तथा तन पर जो वस्त्रादिक थे, वे त्यागकर केवल कोपीनधारी विचरने लगे, और पहाड़ों में रह कर कुछ समय व्यतीत किया, परन्तु फिर मन में विचार आया कि एक स्थान पर रहना उचित नहीं, अभी तो बहुत कुछ करना है, जो विद्या पढी है उससे भी तो कुछ लाभ उठाऊं, यह विचार अलीगढ़, अनूपशहर होते हुए कानपुर पहुँचे। यहां के पण्डित लोगों में लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा से शास्त्रार्थ हुआ जिसके मध्यस्थ 'डबल्यूथेअर्स' असिस्टेंट कलक्टर हुए थे। सो यद्यपि कानपुर के पण्डित लोगो को स्वामी जी के कहने पर संतोष और विश्वास तो न हुआ, लेकिन मध्यस्थ महाशय ने अपनी निम्न लिखित अंग्रेजी चिट्ठी मे स्पष्ट रूप से स्वामी दयानन्द सरस्वती की जीत दिखलाई है ※

TRUE COPY

GENTLEMEN CAWNPORE,

At the time in question I decided in favour of Daya-Nand Saraswati, Fakir, and I believed his arguments in accordance with the Veds. I think here on the day If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days,

Yours Obediently,

(Sd) W Thaire.

※ यहां दयानन्द सरस्वती सन्यासी बने हुए थे परन्तु जब हमने इनको सन १८७७ ई० में दिल्लीदरबार के अवसर पर देखा तो पूरे अमीर बने हुए थे।

※ अनूपशहर में, एक वैरागी ने स्वामी जी को गाली दी तो इनके संगियों ने इनकी आज्ञा बिना उसे अदालत फौजदारी से कैद करा दिया था जो अपीलमें बरी हुआ

अंग्रेजी चिट्ठी का अनुवाद (तरजुमा)।

मैंने इस समय दयानद सरस्वती फकीर की जीत का निश्चय किया, मेरे यकीन मे उसका सब कहना वेदानुकूल है, इस लिए मैं कहता हूँ कि अवश्य उसकी जीत हुई, यदि किसी को मेरे किए निर्णय को प्रमाण अपेक्षित हो तो मैं थोडे दिनों में अपनी सब वे दलीलें लिख दूगा जिनसे मैंने स्वामीजी की जीत प्रसिद्ध की है ॥

स्थान कानपुर खास।	द० आपका सेवक—"उवल्यू थेमर्स,"
ता० १७–८–१८६६ ई०।	असिस्टेंट कलक्टर कानपुर।

जब स्वामी जी को असिस्टेंट कलक्टर कानपुर ने सराहा तो अपने मन में आप बड़े खुश हुये अत्यन्त हर्षमाना। और अब तो आप अष्टादश पुराणोंको उच्चेस्वर से मिथ्या और कल्पित स्वार्थी पण्डितों के बनाये कहने लगे, और केवल इक्कीश २१ शास्त्रों ही को ईश्वरकारचा मानने लगे। जिन २१ शास्त्रों को उन्होंने सत्य और ईश्वरका रचा माना उनका संस्कृत विज्ञापन निज अपनी लेखनी से लिखकर स्वामी जी ने कानपुर के "शोलेतूर छापे खाने में छपवाया था, सो ज्यों का त्यों नीचे लिखा जाता है *

श्रीरस्तु ॥ ऋग्वेदः १ यजुर्वेदः २ सामवेद ३ अथर्ववेदः ४ एतेषुः चतुर्षु वेदेषुः कर्म्मोपासना ज्ञानकाण्डा वानिश्चयोमि ॥ तत्र सन्ध्या वन्दनादिरश्वमेधान्तः कर्म्म काण्डो वेदितव्यः यमादिः समाध्यन्त उपासना काण्डश्च बोधव्यः। निष्कर्म्मादिः परब्रह्म साक्षात्कारान्तो ज्ञान काण्डो ज्ञातव्यः ॥ आयुर्वेदः ५ तत्रचिकित्सा विद्यास्ति ॥ तत्र चर्क-सुश्रुतौद्वौ ग्रन्थौ सत्यौ विज्ञातव्यौ ॥ धनुर्वेदः ६ तत्र शस्त्रास्त्र विद्यास्ति ॥ गंधर्ववेदः ७ तत्र गान विद्यास्ति ॥ अथर्ववेदः ८ तत्र शिल्प विद्यास्ति ॥ एतेचत्वारोवेदानामुपवेदा यथा

[1] देखो दयानद दिग्वजय भाग दूसरा पृष्ट १४०।

* एक पोष्टकार्ड हमारे पास दफ्तर देवधर्म्म विधान आफिस लाहौर से आया जिसमें लिखा है कि उक्त संस्कृत नोटिस सन् १८७० ई० में छपाहुआ मालूम पडता है क्योंकि वाही दिनो में हमको मिला था,

संख्यं वेदितव्य. ॥ शिक्षावेदस्था ६ तत्र वर्णोच्चारण विधिरस्ति ॥ कल्पः १० तत्रवेद मंत्राणामनुष्टान विधिरस्ति ॥ व्याकरणम् ११ तत्र शब्दार्थ सम्बन्धानां निश्चयोस्ति तत्र द्वौग्रन्थावष्टाध्यायी व्याकरण महाभाष्याख्यौ सत्यौवेदितव्यौ नैरुक्तम् १२ तत्रवेदमन्त्राणां निरुक्तयः संति ॥ छन्दः १३ तत्र गायत्र्यादिछन्दसां लक्षणानिसंति ज्यौतिषम् १४ तत्रभूतभविष्यद्वर्तमानानां ज्ञानमस्ति ॥ तत्रैकाभृगुसंहिता सत्यावेदितव्या ॥ एतानि षटवेदाङ्गानि वेदितव्यानि ॥ इमाश्चतुर्दशविद्याश्च ॥ ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डुक्य तैतर्यैतरी छान्दोग्य बृहदारण्यक श्वेताश्वतरकैवल्योपनिषदो द्वादश १५ अत्र ब्रह्मविद्यैवास्ति ॥ शारीरकसूत्राणि १६ तत्रोपनिषन्मन्त्राणां व्याख्यानमस्ति कात्यायनादीनिसूत्राणि १७ तत्र निषेकादिस्मसानान्तानां संस्काराणांव्याख्यानमस्ति ॥ योगभाष्यम् १८ तत्रोपासनाया ज्ञानस्यच साधनानिसंति ॥ वाको वाक्य मेकोग्रन्थ १९ तत्रवेदानुकूला तर्कविद्यास्ति ॥ मनुस्मृतिः २० तत्रवर्णाश्रम धर्माणांव्याख्यान मस्ति ॥ वर्णसंकर धर्माणाञ्च महाभारतम् २१ तत्र शिष्टानां जनानां लक्षणानिसंति ॥ दुष्टानांजनानाञ्चएतान्येकविंशति शास्त्राणि सत्यानिवेदितव्यानि ॥ एतेष्वेव विंशतोशास्त्रेष्वपिव्याकर्ण वेद शिष्टाचार विरुद्धम् यद्वचनं तदप्यशत् तेभ्य. एकविंशतिशास्त्रेभ्योसे भिन्नाग्रन्थाः संति ते सर्वे गप्पाष्टकाख्यावेदितव्या गप्प मिथ्या परिभाषणे ॥ तस्मात् पःप्रत्यः गपयनेचतद्वप्पम् ॥ अष्टौगप्पानियत्रास्युर्गप्पाष्टकं तद्विदुर्बुधाः अष्टौ सत्यानि यत्रैवतत्सत्याष्टकमुच्यते कान्यष्टौगप्पानीत्यत्राह मनुष्य कृता. सर्वे ब्रह्म.

वैवर्त पुराणादियेग्रन्थाः प्रथमं गप्पम् १ पाशाणादि पूजनं देवबुद्ध्या द्वितीयं गप्पम् २ शैव शाक्त वैष्णव गणपत्यादय. संप्रदाया स्तृतीयं गप्पम् ३ तत्र ग्रन्थोक्तो वाममार्गश्चतुर्थं गप्पम् ४ भंगादि नशा करणं पञ्चमं गप्पम् ५ परस्त्री गमनं षष्टं गप्पम् ६ चौरीति सप्तमं गप्पम् ७ कपट छलाभिमानास्टतभाषणमष्टमं गप्पम् ८ एतान्यष्टौ गप्पानित्यक्तव्यानि ॥ कान्यष्टौ सत्यानीत्यत्राह । ऋग्वेदादीन्येक द्विंशति शास्त्राणि परमेश्वर रचितानि प्रथमं सत्यम् १ ब्रह्मचर्य्याश्रमेण गुरुसेवा स्वधर्म्मानुष्टान पूर्वक वेदानां पठनं द्वितीयं सत्यम् २ वेदोक्त वर्णाश्रम स्वधर्म्म संध्या वन्दनाग्निहोत्रानुष्टानं तृतीयं सत्यम् ३ यथोक्तदाराधिगमनं पंचमहायज्ञानुष्टान ऋतुकाल स्वदारोप गमनम् श्रौतस्मार्ताचाराद्यनुष्टानं चतुर्थं सत्यम् ४ शमदमतपश्चरण यमादि समाध्यन्तोपासना सत्संग पूर्वक वानप्रस्थाश्रमानुष्टानं पंचमं सत्यम् ५ विचार विवेक वैराग्य परा विद्याभ्यास संन्यास ग्रहण पूर्वकं सर्व कर्म फल त्यागाद्यनुष्टानंषष्टं सत्यम्॥६॥ज्ञान विज्ञानाभ्यासत्रानर्थ जन्म, मरण हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संगादीदत्यागानुष्टानं सप्तमं सत्यम् ७ अविद्यास्मिता रागद्वेषभिनिवेश तमो रजः सत्व सर्व क्लेश निवृत्तिः पंचमहाभूतातीत मोक्ष स्वरूप स्वराज्य प्राप्तिः अष्टमं सत्यम् ८ एतान्यष्टौसत्यानि गृहीतव्यानि ॥ इति ॥

{ दयानन्दसरस्वत्याख्येनेदम्पत्र रचितमृतदे।
सत्सज्जनैर्विदित यम् "शोलेपुर" मेंछपा * }

* इस विज्ञापन के संस्कृत में जो अशुद्धियां रो गई हैं, हम नहीं कह सकते कि

(इसका भावार्थ) ऋग्वेद १ यजुर्वेद २ सामवेद ३ अथर्ववेद ४ इन चारों में कर्म उपासना और ज्ञान काण्ड का निश्चय है सन्ध्या उपासनासे लेकर के अश्वमेधयज्ञतक कर्मकाण्ड समझना चाहिये, और यमनियम से लेकर समाधितक उपासनाकाण्ड जानना चाहिये, निष्कामकर्म से लेकर ब्रह्म के साक्षात्कारान्त ज्ञानकाण्ड जानना चाहिये, पांचवें आयुर्वेद यह चिकित्सा विद्या है, इस विद्यामें चरक सुश्रुत दो सच्चे ग्रन्थ मानने चाहिये, छठा धनुर्वेद इसमें शस्त्र और अस्त्रविद्या है सातवां गान्धर्ववेद इसमें गानेकी विद्या है आठवें, अर्थवेद इसमें शिल्प (कारीगरी) विद्याहै, यह चारों उपवेद समझने चाहिये, और नव(९) शिक्षाग्रन्थहै जिनमें अक्षरों के पढ़ने की रीति वर्णितहै, दसवें कल्पशास्त्र इसमें वेद, मन्त्रों को किस किस कार्य में पढ़ना इसकी विधि लिखी है ग्यारहवें व्याकरण इस विद्या से शब्दों के अर्थो का सम्बन्ध निश्चयहोता है, इसमें दो ग्रन्थ हैं, अष्टाध्यायी, और महाभाष्य चार यही सत्य हैं, बारहवें निरुक्त, इसमें वेदमन्त्रों की निरुक्तिया अर्थात वेदमन्त्रोंके शब्दोंकी विवेचना है, तेरहवें, छन्द, इसमें गायत्र्यादि छन्दों का सविस्तार वर्णन है चौदहवें, ज्योतिष, इसमें भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल का ज्ञान है, इसमें एक पुस्तक भृगुसंहिता सत्य है, यह छ वेदाङ्ग समझने चाहिये, और चौदह विद्या भी इनही को कहते हैं, ईश १ केन २ कठ ३ प्रश्न ४ मुण्ड ५ माण्डूक्य ६ तैत्तर्य ७ ऐतरेय ८ छान्दोग्य ९ बृहदारण्येक १० श्वेता ११ सत् १२ कैवल्य बारह उपनिषद् हैं, इनमें ब्रह्मविद्या ही है, सोलहवें शारीरिक सूत्राणि, इनमें उपनिषदों के मन्त्रों के भेदाभेद लिखे हुये है, सतरहवें कात्यायनादिसूत्र हैं, इसमें गर्भाधान से लेकर मरने तक के जो कुछ आचार व्यवहार हैं सो लिखे हैं, अठारहवें, योगाभ्यास, इसमें उपासना और ज्ञान के साधन हैं, उन्नीसवें, वाक्योंक ग्रन्थ, इसमें वेदानुसार तर्क किया है, और तर्क करने का रीति है, बीसवें, मनुस्मृति, इनमें वर्णाश्रम धर्म का वर्णन और वर्णसंकरों का व्याख्यान है, इक्कीसवें, महाभारत इसमें भले बुरे मनुष्यों के लक्षणों का वर्णन है, यह इक्कीस शास्त्र + सत्य हैं, इन ग्रन्थों में भी व्याकरण वेद शिष्टाचारसे जो विरुद्ध है सोभी मिथ्या है, और इसके उपरांत

स्वामी जी की ग्यारह यह छपा में हो गई हो ?

+ यहा स्वामी जी ने स्पष्टरूप से २१ शास्त्रों को परमेश्वर के रचे माना है, परन्तु आर्यसमाज स्थापित करते समय सब ८ (१७) को छोड केवल चार वेद और उनमें से भी केवल मन्त्र भाग ही को सत्य ग्रहण करो वाह ! क्या कहना है ?

और सत्य सत्याष्टक है, गप्प्लृ धातु वाक्यार्थ है, उससे, प, प्रत्यय होता है, तो गप्प बन जाता है, अष्ट गप्प जिसमें हों उसको गप्पाष्टक कहते हैं, अष्टसत्य जिसमें हों उसको सत्याष्टक कहते हैं, अब आठो गप्पोंका वर्णन है, मनुष्यों के रचित ब्रह्म वैवर्त पुराणादि ग्रन्थ पहिलीगप्प १ देवता समझकर पाषाणादि प्रतिमा पूजना दूसरीगप्प २ शिव शक्ति विष्णु गणपत्यादि सम्प्रदाय तृतीयगप्प ३ तन्त्रग्रन्थोंमें लिखा हुआ वाममार्ग चौथीगप्प ४ भंगआदि नशा करना पांचवी गप्प ५, परस्त्री गमन ' छठी गप्प ६ चोरी सातवी गप्प ७ कपट छल अभिमान इत्यादि ✤ आठवीं गप्प ८ आठ सत्य यह हैं, पूर्वोक्त ऋग्वेदादि इक्कीशशास्त्र परमेश्वर के रचेहुये हैं यह पहिलासत्यहै, १ ब्रह्मचर्याश्रम से गुरुसेवा और अपने धर्मपर चलकर वेदोंका पढना दूसरा सत्य है, २ वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म सन्ध्यावन्दना अग्निहोत्रादि तीसरासत्य है, ३ विवाहिता स्त्री के पास ऋतु के समय गमन करना और पांच महायज्ञों का अनुष्ठान करना श्रुति स्मृति मे कहीहुई बातोंको करना यह चौथा सत्यहै, ४ शम, दम, तप, यम, और समाधितक उपासना सत्सङ्ग वानप्रस्थाश्रम अनुष्ठान यह पांचवां सत्यहै, ५ विवेक वैराग्य पराविद्याओंको पढना और सन्यास ग्रहण करके सम्पूर्ण कर्मों के फल को छोडदेना यह छठासत्यहै, ६ ज्ञान और विज्ञानसे सारी बुराईजन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ मोह, सङ्ग दोषों को छोडदेना सातवां सत्य है, ७ अविद्या, अभिमान, रागद्वेष, अभिनिवेश, तम, रज, सत्व, II आदि बाधाओं से बचना और पांच महाभूतों से परे मोक्षस्वरूप जो अपनःराज है उसको प्राप्तकरना यह आठवांसत्यहै, ८ यह आठसत्य ग्रहण करने चाहियें ॥

(दयानन्द सरस्वतीने यह पक्षवाहि सज्जनों के जाननेके लायक)

यह स्वामीदयानन्द सरस्वती पूर्वोक्त २१ शास्त्रों केही सहारेपर देशदेशान्तर के पण्डितो से वादानुवाद करते और झगड़ते फिरे, परन्तु इनके सिवाय और कुछ फलप्राप्त नहुआकि उनका नाम समाचारपत्रोंद्वारा भारतमें प्रसिद्ध होनेलगा, तथा अनेक समाजों में इनकी चर्चाहोनेलगी । अवतो इनको यह ख्याल पैदा हुआकि जबतक कोई ऐसा कार्य्यनहो जिसमें पांवटेकनेका सहारा नहो मेरी शुभ आशा

' यहाँतो आपने परस्त्रीका निषेधकिया परन्तु 'सत्यार्थप्रकाश' मे नियोग की आज्ञादेदई

✤ क्या स्वामीदयानन्द सरस्वतीजी चोरी छल कपट झूठ आदिक त्यागदियेथे ?

II यहां आपने सतोगुणभी कहदिया वाह ! क्याअच्छीबुद्धि है जब सतोगुणही त्याग दिया फिर बताइये विनागुणभी कोई पदार्थ होसक्ता है ?

मनोकामना फलितहोनी कठिन है, बस इसी ग्लानिमें निमग्न होकर आपने सेठ,साहू कारों की सहायतासे पाठशालाओं के प्रचारका बीड़ा उठाकर प्रथम पाठशाला संवत् १९२६ के मध्यमें फर्रुखाबाद में स्थापितकरी, और कुछ दिन वहां ठहरे भी थे ॥

और उनको यह भी खयाल थी कि भारतवर्ष में काशीकी विद्वत्ता अधिक प्रसिद्ध है, सो जबतक मैं काशीके पंडितों से विजयप्राप्त नकरलूं मेरी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ेगी बस इसी विचारांधीन होकर काशी पहुंचे, और कार्तिक शुदी १२ भौमवारस-म्वत् १९२६ को स्वामीविशुद्धानन्द वा बालशास्त्री आदियनेक पंडितोंसे शास्त्रार्थ किया परन्तु प्रकट में विजय किसी पक्षकी भी नहीं हुई, दोनोदल अपनी २ विजय मान बैठरहे, इस विषयमें भारतेन्दु बाबूहरिश्चन्द्रजी ने अपनी बनाई "दूषणमालिका" नाम पुस्तककी भूमिका में प्रथमही यह लिखा है ॥

अथ दयानन्द नामो क्या जाने कौनजाति वा किस आश्रमके कोई महापुरुष सब देशोंमें भ्रमणकरते हुए, सनातन धर्मरूपी सूर्य्य को राहुकी भांति ग्रास करते हुए, मूर्खों और आलस्यसे भरे हुए जीवों के हृदय वर्तिको अपने रंगमें रंगते हुए, इसी बहाने से अपना नाम लोगों में विदितकरते हुए, और अपने वाक्य वाणके आ-डम्बर से साधुलोगों का हृदय दहन करते हुए काशी में आये इत्यादि । इत्यादि० ॥

सन् १८७० ई० काशी] (हरिश्चन्द्र)

तथा मित्रविलास पत्र संख्या १७ खण्ड १२ तारीख १२ नेवम्बर सन् १८८८ ई० पृष्ठ ५ पंक्ति ३२ में यह लिखा है कि"

पिशावर में रहने वाले मुरलीधरने काशी नरेश की सभा में असी संगमके ऊपर बनारस रामबाग में पौषके महीने में सम्वत् १९२६ में दयानन्द को परास्त कि-याथा, और रात्रि के नौ (९) बजे महादुर्दशा कीनीथी* ॥

इत्यादिक लेखोंसे तथा स्वामीजीके स्वतः छपाये हुये शास्त्रार्थ काशीसे यही सिद्धहोता है कि प्रथमवार काशी जाने में स्वामी दयानन्द सरस्वती को कुछ भी लाभ न हुआ, और यह घूमते हुये कलकत्ते पहुंचे, वहाँ बाबू केशवचन्द्र सेन † से इनकी मुलाकात हुई, और उक्त बाबू जीने स्वामी को समझाया कि यदि आप पंडित

---

* इन लेखों के अतिरिक्त काशी के पण्डितोंने अपनी विजयपताका उड़ाने करने के लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रतिकूल "दयानन्दपराभूति" "दुर्जन मतमर्दन" नामक दोपुस्तक संस्कृतमें,रचकर काशीनरेश के यन्त्रालय में छपवाई थीं,

† बाबु केशवचन्द्र सेन कलकत्ते के रहने वाले ब्राह्मसमाजी प्रसिद्धपुरुष थे

लोगो से मतानुसार न करो अपना अभिप्राय ईश्वर (परमात्मा) के तौर पर किसी मुख्य स्थान पे बैठ कर वर्णन किया करो तो उत्तम है, श्रोतागण प्रीति सहित सुनने को आवें और किसी से द्वेष भी न होय, और न ऐसा कहना जो किसी को बुरा लगे।

यह उपदेश स्वामी जी को अत्यन्त प्यारा लगा, और इसी के सहारे चल पड़े, फर्रुखाबाद से लौटकर आपने मिर्जापुर, छलेश्वर, कासगज * में भी पाठशाला स्थापित की जिसमें मुख्य विद्या व्याकरण थी, और किसी अध्यापक का ३०) रुपया मासिक और किसी का २०) रुपया नियत कर दियाथा, और एक एक दो दो मास में दौरा कर के आप भी इनकी सार सभाल सत करते फिरते रहते थे।

इसी प्रकार जब अधिक समय व्यतीत हो गया तो आपने फिर विचार किया कि केवल पाठशालाओं के स्थापित करने ही से मनोकामना सिद्ध नहीं हो सकती, अब कुछ नवीन ग्रन्थ भी लिखे जावें तो ठीक हो, परन्तु ग्रन्थ लिखे भी जायँ और छपने के लिये द्रव्य की सहायता न मिले तो भी ठीक नहीं, बस इसी विचार में फिर देशाटन को उद्यमी हुये, और सम्वत् १९२८ ही से पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" का प्रारम्भ कर थोडा २ लिखते रहते थे। सो जब उसका पूर्वार्द्ध पूरा हो गया तो कानपुर के रईस राजा—जयकृष्णदास इसके सहायक बन गये, और अपनी चिट्ठी सहित स्वामी जी को काशी भेज पुस्तक छपने का प्रारम्भ करा दिया, इसमें द्रव्य राजा जयकृष्णदास जी का लगता था, और प्रूफसीट व संशोधन का काम स्वामी जी आप करते थे, इधर इसी कार्य्य के सहारे पर काशी के विद्वानों से यथानुसार शास्त्रार्थ भी करते रहते थे।

यहाँ इतना और लिखा जाना उचित है कि जिन २१ शास्त्रों को स्वामी दयानन्द सरस्वती ईश्वर का रचा मान कर कानपुर में उसका छपा हुआ विज्ञापन बाट चुके थे, पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" लिखते समय उनका भी विश्वास त्याग चुके थे, क्यों कि उन्होंने विचार किया कि व्याकरण और महाभारत और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों को ईश्वर रचित कहने से काम नहीं चलता, और यह सत्य भी है कि जब महाभारत और मनुस्मृति और उपनिषदादि ग्रन्थ ही ईश्वररचित नहीं, तो कब और ईश्वररचित क्योंकर हो सकते हैं, परन्तु स्वामी जी ने विचारा कि जो हम सम्पूर्ण शास्त्रों का विश्वास त्याग देंगे तो ब्रह्मसमाजियों में गणना किये जावेंगे, और फिर उन लोगों को जो शास्त्रों के वचनों पर बिना विचारे अज्ञान हठ कर श्रद्धा रखते हैं, हम अपनी तरफ खैच नहीं सकेंगे, भावार्थ उनका स्वाधीन करना

* कासगज में दयानन्द सरस्वती की पाठशाला ज्येष्ठ सं० १९२७ में स्थापित हुई थी

कठिन हो जायगा, इस ख्याल से अब स्वामी जी ने प्रगट रूप से वेदों की संहिताओं ही को ईश्वररचित वर्णन किया, और पश्चिमोत्तरीय भारतवर्ष में घूमकर व्याख्यान देने लगे, सम्वत् १९२६ में स्वामी जी पुनः कलकत्ते पधारे, पण्डित ताराचरण गाव भाटपाड़े के रहने वाले हैं, जो हुगली के पार है, परन्तु यह महाशय काशी नरेश के निकट बनारस में रहते हैं, आजकल अपने देश में आये थे, और कलकत्ते में राजा ज्योतिन्द्रमोहन ठाकुर के मकान पर ठहरे थे, यद्यपि इनसे स्वामी जी का शास्त्रार्थ कार्तिक शुक्ला १२ सम्वत् १९२६ में काशी के पण्डितों सहित होता रहा लेकिन जब स्वामी जी ने सुना कि उक्त ताराचरण जी कलकत्ते में आये हैं, तो इस प्रसिद्ध नगर में अपना नाम प्रसिद्ध करने की अभिलाषा से उनके मकान पर जाकर शास्त्रार्थ की ठहराई, परन्तु परिणाम व्यर्थही रहा, यहांभी दोनों दल अपनी २ विजय का डंका बजाते रहे, यथार्थ में हार जीत किसी की भी नहीं हुई, कलकत्ते से लौट कर स्वामी जी फिर काशी में आये और "सत्यार्थप्रकाश" का प्रूफसीट करने लगे।

मगलदेव पराजय के पृष्ठ ४ पंक्ति २५ में लिखा है कि:—

"जिस दिन स्वामी जी वन से आए थे भोजन का सहारा और शरीर पर वस्त्र तक भी न था, खण्डन मण्डन ही के द्वारा धनी बन गए और आनन्द भोगे।"

सम्वत् १९२६ व १९३० में यह काशी के निकट ही विचरते रहे, जब कुछ द्रव्य की सहायता मिली और उज्वल मनुष्यों के पास बैठने उठने का समागम हुआ, तो स्वामी जी ने लंगोटी बांध नंगा फिरना छोड़ कर अच्छे २ वस्त्र और बहुमूल्य जूता पहिनना स्वीकार किया, और खानपान भी शनैः शनैः ऐसा बदल गया कि खूब तरमाल खाने लगे, पिछले समय संन्यासधर्म में जो कुछ कालतक उत्तम पदार्थों से बञ्चित रहे थे उसकी भी कसर निकालने लगे, और यह कहलावत प्रकट सिद्ध कर दिखलाई,

"अब तो आराम से गुजरती है, आक़बतकी खबर खुदा जाने।"

[शेअ] اب تو آرام سے گذرتی ہے عاقبت کی خبر خدا جانے

राजों के समान सुख भोगने लगे, सहस्रों मनुष्यों पर हुकूमत करने लगे, लक्ष्मी की प्राप्ति और अधिकता दिनोंदिन होने लगी, निवाड़ के पलंग पर सोने लगे बड़े बड़े तकिये लगाये जाने लगे, सैकड़ों मूर्ख चरण छूने लगे, रसोई में पट

रस भोजन बनने लगी, हाथपांव धुलाने को कहार खड़ा रहने लगा, लेखक लोग लिखाई का काम करने लगे इत्यादि ।

जब सन् १८७५ ई० मुताबिक सम्वत् १९३२ में पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" छप कर तैयार हो गया तो स्वामी जी बड़े खुश हुये । *

इसपुस्तकमें प्रथमही प्रथम ६ पृष्ठ तो शुद्धाशुद्ध पत्र के लगाये हैं ॥

फिर पृष्ठ ७ से २६ तक प्रथम समुल्लास है इसमें ईश्वरके ॐकारादि नामोंके मनोक्तअर्थ मंगलाचरण आदि लेख हैं ॥

पृष्ठ २७ से पृष्ठ ३६ तक द्वितीय समुल्लास है इसमें बालशिक्षाविधान तथा भूतप्रेतादि निषेध जन्मपत्र सूर्यादि ग्रहोंकी मनोक्त समीक्षा करी है॥

पृष्ठ ३७ से पृष्ठ ६३ तक तृतीय समुल्लास है इसमें अध्ययनाध्यापन विधिके स्वकपोलकल्पित आलोचना लिखी है, ॥

पृष्ठ ६४ से पृष्ठ १५३तक चतुर्थ समुल्लासहै, इसमें समावर्तन, विवाह, गृहाश्रमविधि के नामसे व्यर्थ झगडा भर दिया है ॥

पृष्ठ १५४ से पृष्ठ१७४तक पंचमसमुल्लासहै, इसमें वानप्रस्थ संन्यासविधिहै ।

पृ० १७५ से पृष्ठ २२० तक षष्ठ समुल्लास है, इसमें राजधर्म का वर्णन है सो यहां तक तो स्वकपोलकल्पना नाम मात्र थोड़ीसी ही है, परन्तु फिर,

पृ० २२१ से पृष्ठ२५२ तक सप्तम समुल्लासहै, इसमें ईश्वरनिषय व्याख्या है ।

पृ० २५३ से पृ० २६६ तक अष्टम समुल्लासहै, इसमें सृष्टयोत्पादादिविषयहै।

पृ० २६७ से पृ० २८७ तक नवम समुल्लास में विद्याअविद्या बन्धमोक्ष विषय है ॥

पृ० २८८ से पृ० ३०६ तक दशम समुल्लासहै, इसमें आचाराऽनाचार भक्ष्याऽभक्ष्य का वर्णन है, और यहां तक इस पुस्तक का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ है ।

पृ० ३०७ से पृ० ३९६ तक एकादश समुल्लास है, इसमें भारतवर्ष के अनेक मतमतान्तर तथा धर्मग्रन्थों का मनोक्त खण्डन मण्डन किया है ।

पृ० ३९७ से पृ० ४०७ तक द्वादश समुल्लास है, इसमें जैन तथा बौद्धधर्म

---

* सत्यार्थप्रकाश की कुछ समालोचना आगे चल कर मिलेगी और यह पुस्तक पूर्ण रूप से छप कर तो सन १८७५ ई० में तैयार हुई थी परन्तु प्रकाशितआदि फार्मों को स्वामी जी ने सन् १८७४ ई० में पूराकर लिया था ।

पर कटाक्षकर खण्डन मण्डन किया है, और इतने पर ही ग्रन्थ समाप्त किया है।

इस पुस्तक के आरम्भ का प्रथम पृष्ठ निम्नलिखित लेख युक्त है।

"अथ सत्यार्थप्रकाश" श्री स्वामी दयानन्द रचित। श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर सी० एस० आई०, की आज्ञानुसार, मुंशी हरिवंशलाल के अधिकार से इस्टार प्रेस मुहल्ला रामपुर में छापी गई, सन् १८७५ ई० बनारस पहिली बार १००० पुस्तक मोल फी पुस्तक ३) ।

फिर टाइटिलपेज के अन्दर निम्नलिखित ३ विज्ञापन लिखे हैं।

निवेदन १, यह पुस्तक श्रीस्वामीदयानन्द सरस्वती ने मेरे व्ययसे रची है, * और मेरे हीव्ययसे मुद्रित हुई है उक्त स्वामी जीने इसकारचनाधिकार मुझको दे-दियाहै, और इस कार्यमें अधिष्ठाताहू, और मेरी ओरसे इसपुस्तककी रजिष्ट्री कानून २० सन १८४७ ई० के अनुसार हुई है, सिवाय मेरे या मेरी आज्ञाके इस पुस्तकके छापनेका किसीको अधिकार नहीं है, ।(द० श्रीराजाजयकृष्णदास, बहादुर, सी० एस० आई०)

निवेदन २, जिस पुस्तक के आदि और अतमें मेरे हस्ताक्षर और मोहर नहीं वह चोरीकी है, और उसका क्रयविक्रय नहीं होसकता, ।

(द० श्रीराजा जयकृष्णदास, बहादुर सी, एस, आई,)

निवेदन ३, इसपुस्तक के पाठकों से मेरी यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ को छपवानेसे मेरा अभिप्राय किसीविशेष मत के खण्डन मण्डन करने का नहीं किंतु इसका मुख्यप्रयोजन यह है, कि सज्जन और विद्वानलोग इसको पक्षपातरहित होकर पढ़ें, और विचारें, और जिनविषयों में उनकी दयानन्द स्वामी के सिद्धांतों से सम्मति नहो उनविषयोंपर अपनी अनुमतिप्रायः प्रमाणपूर्वक लिखें, जिससे धर्मका निर्णय और सत्यासत्य की विवेचनाहो, मुखसे शास्त्रार्थ करने में किसी बातका निर्णय नहीं होता, परन्तु लिखनेसे दोनोंपक्षों के सिद्धांत ज्ञातहोजाते हैं, और सत्य विषयकानिर्णय होजाताहै, इसलियेआशा हैकिसब पण्डित और महात्मापुरुष इसकी यथावत समालोचना करेंगे, और यह नसमझेंगे किमुझकोकिसीविशेषमतकीनिन्दा अभिप्रेत हो, छापनेमें शीघ्रताकेकारण इसग्रन्थ में बहुत अशुद्धता रहगई है आशा है पाठकगण इस अपराधको क्षमा करेंगे।

---

* इस पुस्तकको स्वामीजीने राजा साहब से द्रव्यलेकर बनाया और अपना सत्व उनकोदेदिया।

(क) यद्यपिस्वामीजीने यह "सत्यार्थप्रकाश" ग्रंथ महारा रचकर प्रचलित कराया है, परन्तु इसमें जोकुछ लिखा है वह सच्छास्त्रों के विरुद्ध मनोक्त गीतगाया और स्वकपोलकल्पित ढोल बजाया है, प्रकृति, और जीवोंकीउत्पति, आचमन का प्रयोजन, कफपित्त की निवृत्ति, मार्जनकाफल, आलस्यदूरकरना, यज्ञोपवीतको विद्या काचिन्हजानना,पठनपाठन, और सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र, और अतिथिसेवाका आपही विधानकरना, और फिर यहकहनाकि, येसबकर्म अविद्वानपुरुषों के वास्ते हैं, जो जहांसेमिले वहांसे लेलेनेकी आज्ञादेना, सृष्टिके आदिमें अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा के हृदय में वेदोंका प्रकाशहोना, और उनसे ब्रह्माजीका पढना कहना, मुक्तिसे पुनरावृत्तिमानना, और उसको कारागार और फांसीकेसमान जानना, दश-पुरुषोंतक से नियोगकरनेकी आज्ञादेना, और गर्भवती स्त्रीसे भी नरहा जाय तो किसीसे नियोगकरके उसकेलिये पुत्रोत्पत्तिकरले, ऐसा असमंजसलेख तथा मांसादि पदार्थों से प्रातः साय दोनों काल होम करने की आज्ञा देना, मांस भक्षण की पुष्टि करना, यज्ञ में बन्ध्या गाय और बैलनरआदि पशुओंके वधकी विधिकरना, स्वर्ग नर्क लोकों का न मानना, प्रथम "तिब्बत" में आर्यों की उत्पत्ति कहना, परमात्मा को विजातीय भेद शून्य लिखना, प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण मानना, इत्यादि विद्वान् पुरुषों से कुछ गुप्त नहीं है।

"सत्यार्थप्रकाश" के प्रकाशित होने से संसार को लाभ के बदले जो कुछ हानि हुई वह तो हम दूसरे भाग में लिखेंगे, परन्तु स्वामी जी को रोटी कमा खाने का उत्तम सहारा हो गया, इस पुस्तक के लिखे जाने पीछे स्वामी जी बम्बई पधारे, और मन में यह उमंग उत्पन्न हुई कि विद्यमान चारो वेदों की मनमानी टीका और भाष्य बना कर संसार मे फैलाई जायं तब ही हमारी यथार्थ प्रसिद्धता होय।

बाबू नवीनचन्द्रराय लाहौर से प्रकाशित होने वाली अपनी "ज्ञानप्रदायिनी" मासिक पत्रिका संख्या ३१ । १२ खण्ड ४ पृष्ठ २४ में लिखते हैं कि—

स्वामी दयानन्द सरस्वती जब बम्बई गए थे हमारे साथ भी उनकी मुलाकात हुई थी। हम लोगों से उन्होंने यह इच्छा प्रकाशकी, कि वे वेदों की नई टीका करना चाहते हैं, जिसमें वे यह सिद्ध करेंगे कि अग्नि, वायु, इन्द्र प्रभृति शब्द ईश्वर

* सत्यार्थप्रकाश छपकर तैयारहुआ जब स्वामीजीकी अवस्था इक्यावन (५१) वर्षकीथी और इसकेछपकर आनेसे पहिले अर्थात् प्रूफसीट करके स्वामीजीबम्बई चले गये थे।

वाली हैं, और वेदों में केवल ईश्वर से ही प्रार्थना की है, और हम लोगों से भी इस प्रकार के अर्थ करने में सहायता चाही। हमने उत्तर दिया कि हमें यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती, और ऐसा सम्भव भी प्रतीत नहीं होता कि वे इस प्रकार का अर्थ सर्वत्र लगा सकेंगे। इसके दृष्टांत में हमने उनसे कहा कि यजुर्वेद में एक स्थान में धान्य से प्रार्थना है, सब कोई जानता है कि धान्य खाने की वस्तु है, इसका अर्थ वे ईश्वर क्यों कर बनावेंगे? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'धान्य' शब्द धा धातु से निकला है, धा धातु का धारण और पोषण अर्थ है सर्वत्र गुण विशिष्ट चावल ही प्रसिद्ध है, ईश्वर अर्थ इस शब्द का किसी कोष में नहीं, इतने शास्त्रार्थ से ही हमने जान लिया था कि स्वामी जी किस प्रकारका अर्थ वेदोंका करना चाहते हैं।

बम्बई के बहुत से भाटिये लोग जो वैष्णव थे, अपने गुरु की बल्लभकुली से तथा उसकी बल्लभकुली राजदरबार तक पहुंचने की इच्छा से अपना सनातनधर्म छोड़ने को उद्यमी थे, और कुछ अंग्रेजी विद्या के नवशिक्षित विद्यार्थी जो मर्कटा (चपल बांदरी) विद्या रूप मदिरा के नशे में मदोन्मत्त हुये अपने चलन व्यवहार को बदलना चाहते थे, स्वामी जी के चिकने चुपडे स्वार्थ भरे व्याख्यानों को सुन कर शीघ्र इस तरफ झुके, फिर तो स्वामी जी ने भी समय को विचार शीघ्रतासहित उक्त मनुष्यों की सहायता से अपना पहिला आर्यसमाज सन १८७४ ई० मुताबिक सम्वत् १९३१ में शहर बम्बई + में स्थापित किया। नवशिक्षित मनुष्य जो बहुधा समाचारपत्रों द्वारा इनके ऊपरी चमत्कार के नित नये नाटक सुन दर्शनाभिलाषी होने लगे थे, बल्कि बहुधा नास्तिक विश्वासी तथा ब्रह्मसमाज विश्वासी (अर्थात् जो ब्रह्मसमाज को अच्छा समझ जाति बिरादरी के भय से उसमें नहीं मिल सकते थे) ऐसे अनेक मनुष्य स्वामी जी के आधीन हो गए, और ऐसे मनुष्यों के आधीन होने से स्वामी जी की मनमानी होने लगी।†

+ सत्यार्थप्रकाश को स्वामी इस समय से पहिले बना शोध प्रूफसीटकर के देआये थे परन्तु वह पूर्णरूप से छपकर सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ था।

† केवल इतना ही नहीं किंतु जब स्वामी जी ने बहुत से भाटियों और वैष्णव लोगों को अपने गुरु बल्लभकुली गोस्वामियों से उदास देखा तो उनको अपना करने के लिये और सब काम छोड़ प्रथम एक "वेदविरुद्धमतखण्डन" नाम पुस्तक बनाकर प्रकाशित किया जिसका कार्तिक सं० १९३१में लिखाजाना उसके अन्तके निम्नलिखित श्लोक से सिद्ध है श्लोक शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासितेदले। अमायां

स्वामी जी ने यह भी समझा कि आजकल के नवशिक्षित मनुष्य जो बहुधा देशोन्नति २ पुकारा करते हैं, जब उनसे यह भी कह दिया जायगा कि आपका विचार ठीक ठीक वेद की आज्ञानुसार है, (और ब्राह्मणों को दान देना श्राद्ध पापणादि प्रतिमा पूजना स्वार्थी मनुष्यों ने स्वकपोलकल्पित मनघडन्त प्रचलित कर दिया है, और यह कर्म सर्वथा वेदविरुद्ध है, ज्ञानवान् मनुष्यों को भूल कर भी इस भ्रमजाल में पड़ना नहीं चाहिये) तो वे मनुष्य अवश्य हमारे पक्ष का ग्रहण करेंगे। क्योंकि प्रथम तो सरकारी पाठशालाओं का उपदेश ही उनको नास्तिक बना चुका है, इतासहा जब हमारे उपदेश से उनको प्रकट रूप से रुपये की भी बचत निकल आवेगी तो हमारे कार्य्य की सिद्धि में कोई भी विलम्ब न होगा।

ऐसे विचारों की सिद्धि होने पर स्वामी जी के समाज स्थापित होने में विशेष परिश्रम और किसी प्रकार का विघ्न न हुआ, और जब स्वामी जी का प्रथम आर्यसमाज बम्बई में स्थापित हो गया तो स्वामी जी ने निम्नलिखित दश नियम बनाए थे जो आज पर्य्यन्त आर्यसमाजों में प्रचलित हैं, और हम उनको अपनी शंकाओं सहित नीचे लिखते हैं।

आर्यसमाजों के दश नियम और उन पर हमारी शंका।

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल ईश्वर है।

(शंका) इस नियम पर हमारी यह शंका है कि "जब सब का आदि मूल ईश्वर है" तो परमाणु और जीवों को नित्य मानना क्या इस नियम के प्रतिकूल है ?

(२) ईश्वर जो सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्विकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निराकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टि का कर्ता है, उसकी उपासना करनी योग्य है।

(शंका) यह ज्ञान ईश्वरस्वरूप का परोक्ष है, या अपरोक्ष ? और परोक्ष ज्ञान से संशय की निवृत्ति होती है अथवा अपरोक्ष से ? परोक्ष ज्ञान से कदाचित स-

भौमरारेव ग्रन्थो ऽयम्पूर्तिमागत ॥ १ ॥ और इस पुस्तक में केवल वल्लभकुली गोस्वामियों का ही खण्डन है।

शय की निवृत्ति नहीं होती है।

इस कारण जब तक ईश्वरस्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होगा उपासक उपासना किसकी करे? यदि ईश्वरस्वरूप का साक्षात्कार नहीं होगा तो ये नाम ईश्वर के कैसे रक्खे गए?

(३) वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

(शंका) वेद मन्त्र भाग माना है, उसी को ईश्वरोक्त कहा, ब्राह्मणभाग ईश्वरोक्त नहीं माना इसकी यथार्थ समीक्षा हम दूसरे भाग में लिखेंगे।

(४) सत्यके ग्रहण करने और असत्य को छोड़नेमें सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

(शंका) इसका नाम विवेक है, परन्तु जब तक सत्य और असत्य का विवेक न होवे यह नियम कब पूरा हो सकता है? कहिये ईश्वर सत्य है, या जगत् सत्य है? जो ईश्वर सत्य है और जगत् भी सत्य है तो दो सत्य नहीं हो सकते, इस कारण ईश्वर सत्य है ऐसा कहना चाहिये। जब ईश्वर सत्य है तो जगत् स्वप्न समान मानना पड़ेगा, जब स्वप्न समान हुआ तो इन पदार्थों में से कहो किसका ग्रहण करें और किसका त्याग करें? ग्रहण और त्याग दूसरे पदार्थ का होता है, जब दूसरा पदार्थ असत्य ही है तो त्याग किसका? इस नियम में भी विचार करना चाहिये, यह नियम केवल व्यवहार शुद्धि के लिये है वा परमेश्वर प्राप्ति के लिये है, यदि व्यवहार शुद्धि के लिये है तो खैर और जो परमेश्वर प्राप्ति के लिए है तो जगत् स्वप्न समान ही मानना पड़ेगा। इसके मिथ्या पदार्थों का क्या ग्रहण और क्या त्याग करना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचारके करना चाहिये

(शंका) यह नियम ऊपर के नियम से मिला हुआ है केवल 'सब काम धर्मअनुसार' इतना पद और विशेष है सो इसमें धर्म पर दृष्टि करनी चाहिये, अर्थात् जिसका जो धर्म है उसी के अनुकूल सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिये। प्रथम तो यह देखना चाहिये कि शरीर का क्या धर्म है, और आत्मा का क्या? शरीर जड़ दृश्य दुःख रूप है, धर्म इसका उत्पन्न होना घटना, बढ़ना, नष्ट होना प्रत्यक्ष है। आत्मा द्रष्टा है, नित्य चेतन सत्य जन्म मरण से रहित आनन्दस्वरूप है, क्योंकि जो सत्य है सोई नित्य है जो नित्य है सोई जन्म मरण से रहित है, जो जन्म मरण से रहित है

सोई आनन्द है। अति आश्चर्य की बात है कि आत्मा में अनात्मा अभिम और अनात्मा में आत्म अभिमान। फिर कैसा धर्म अनुसार और स असत्य का विचार करके नियम का करना कहा है ? और यहभी आश्चर्य कि निरवयव चैतन्य आत्मा को माना और प्रभजन माना निरवयव आक श जड़ तो सर्वव्यापक, और निरवयव चैतन्य आत्मा प्रभजन, कहो ध अनुसार यह सत्य का ग्रहण है या असत्य का त्याग है ? जब निरवयव तो तीन की गाथा १ ही स्वरूप में कैसे हो सकती है।

(६) संसार का उपकार करना इस समाजका मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरि आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

(शंका) जब कर्ताहर्ता ईश्वर को ही माना गया तो मनुष्य कौन जो उसके कार्यो में हस्तक्षेप करे, उपासक को उपास्य की बराबरी उचित नहीं है।

(७) सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

(शंका) प्रीति अनुकूल पुरुषों में होती है, यदि धर्म अनुसारपर दृष्टि है, तो धम विरोधी हठ करने वाले अभिमानी को शत्रु समझना चाहिये। फिर सब से प्रीतिपूर्वक वर्तना चाहिये यथा योग्य ठीक है। प्रीतिपूर्वक अशुद्ध है, इन्द्रि गण जो विषयों में आशक्त करें परम शत्रु हैं, इस लिये उसको शत्रु समझ कर विषयानन्द की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए अपने आनन्द में आनन्द रहना चाहिये। यह बाह्यदृष्टि है, जो सब से प्रीतिपूर्वक या यथायोग्य वर्तने की शिक्षा है, जब तक सब से प्रीति या यथायोग्य अर्थात् न्यूनाधिक प्रीतिको छोडकर अन्त दृष्टि नहींहोती तबतक कदाचित् कल्याण नहींहोता, बिनाइसके यह नियम वृथा है

(८) अविद्याकानाश और विद्या की वृद्धि करनीचाहिये ॥

(शङ्का) विद्या यथार्थज्ञान को कहते हैं, और परमेश्वरपूर्णसजाति विजाति, पशुगत, भेद रहित है, जगत् स्वप्न समान है, यदि जगत् में सत्यबुद्धि और परमेश्वर पूर्णमें भेदबुद्धि हैसोई अविद्याहै, सो इसका नाशकरनाचाहिये, अर्थात् आत्मा अभिमान हटाना चहिये, क्या इसीकानाम विद्याकीवृद्धि है, जो वेदों के अर्थ मनमाने बना दिये ॥

(९) प्रत्येकको अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहनाचाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

(शङ्का) जबतक भेदबुद्धि है तबतक यह बातभी कदाचित् नहीं होसकती, यह बात

केवल कहनेमात्रप्रतीत होती है । ऐसा कोई पुरुष भेदवादी दृष्टिमें नहीं आता कि जो अपनी अपेक्षा दूसरे की प्रशंसा को सहनकरे, ईश्वर आदि की तो क्यागाथा, भेदबुद्धि के अभावहुये ऐसा होगा ॥

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियमपालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियममें सबस्वतन्त्र रहैं ॥

(शङ्का) जो सबहितकारी नियम हैं सो प्रति २ को लेकर सर्वकहलाता है, आश्चर्य हैकि पृथक्हितकारी नियममें स्वतंत्रता और सर्वहितकारी में परतन्त्रता कैसे होसक्ती है ? स्वतन्त्रता और परतंत्रतामें परस्परविरोधहै, और सर्व हितकारी तथा पृथक्हितकारी एकहीबात है, क्योंकि प्रति २ को लेकर सर्व होते हैं। ऐसा कौननियम है जो सर्वहितकारी हो और पृथक्हितकारी नहो ? यदि विषयादिकसुख अर्थात् मद्यमांस आदिका खानपान सुख पृथक्हितकारी है, सर्वहितकारी नहीं, और उसके करने में समाजकी स्वतन्त्रआज्ञा है तो यह कैसी शिक्षा है ? इसशिक्षाको कोईबुद्धिमान प्रमाण नहीं करेगा । समाज में युक्तहोकर भी विषय के सुख में जो पृथक्हितकारी सुख है उसकी स्वतंत्रता बनी रहे तो बडाआश्चर्य है ॥ *



प्यारेपाठकवृन्द स्वामीदयानन्दसरस्वती केवल सामाजिक सुधार और ऊपरी टीप टाप को ही देशोन्नति समझते थे, और धर्म्म को उन्होंने धर्म्म जान कर नहीं किंतु पूर्वोक्त कार्य्य का सहायक समझ कर अपने (प्रोग्राम) प्रबंध में शामिल किया था, बस आप खुद विचार सकते हो कि यह स्वार्थ साधना स्वामी जी की धर्म्म से कितनी प्रतिकूल थी ।

बंबई के एक दो बडे २ विद्वान् और प्रतिष्ठित पण्डितों से जब स्वामीजी ने वेदों के मनघड़ंत अर्थभाष्य करने की सहायता मागी तो उन लोगों ने धर्म्म और सत्य का पालन कर साफ इनकार कर दिया, और कह दिया कि हम ईश्वर के उपासक तो अवश्य हैं परन्तु वेदोंकी बनावटी टीका करनेमें सहायक नहींहोवे, स्वामीजी ने यह भी कहा कि इसमे देश की भलाई है, परन्तु फिर भी उनमे से किसी पण्डित ने सहायता नहीं की ।

* उपरोक्तलेख में १ से १० तक जो नियमहैं स्वामीजीके कियेहैं और शंकादमारीहैं,

श्रीमती राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया ने अपने नाम के साथ इम्प्रेस आफ इण्डिया (EMPRESS OF INDIA) नाम की उपाधि स्वीकार करने के लिये एक बहुत बड़ा दरबार करने की हिंदुस्तान के गवर्नरजनरल बहादुर को आज्ञा दी थी, स्थान देहली और दिन पहली जनवरी सन् १८७७ ई० का नियत हो कर सम्पूर्ण भारतवर्ष के राजा महाराजा रईस अमीर बुलाए गए थे। और यह दरबार देखने और स्मरण रखने ही योग्य था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भी दरबार की धूम सुन कर चल पड़े, मार्ग में जहा २ ठहरना हुआ अपने कार्य्य की सिद्धि में लगे रहे, महाराज होलकर इन्दौर की राजधानी में भी १५ दिन ठहरे थे, वहा से चल कर दरबार से कुछ समय पहिले ही से शहर देहली मे आकर अपना डेरा जमा दिया था।

ज्ञानप्रदायिनी मासिकपत्रिका लाहौर के मालिक बाबू नवीनचद्र राय अपनी पत्रिका सख्या ३१ । ३२ पृष्ठ २४ में लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती से हमारी-मुलाकात देहली के दरबार सन् १८७७ ई० में हुई, वहा उन्होंने हमें, तथा बाबू केशवचद्रसेन जी, और दक्षिणवासी रायबहादुर गोपालहरि देशमुख जी और श्रीयुत् हरिचद्र चिंतामणि, को निमन्त्रण किया और हम लोगों से यह प्रस्ताव किया कि हम लोग पृथक् २ रीति से धर्मोपदेश न करके एकता के साथ करें तो अधिक फल होगा, इस विषय में बहुत बातचीत हुई, परन्तु मूलविश्वास में उनके साथ हम लोगों का भेद था, इस लिए जैसी वे चाहते थे एकता नहीं हो सकी, और इस समय स्वामी जी का चलन व्यवहार पहिले की अपेक्षा बिलकुल बदल गया था और अब तो यह पूरे अमीर बने हुए थे *

इस दरबार के समय आने पर स्वामी जी को नाना प्रकार के लाभ हुए। अनेक अच्छे २ योग्य पुरुषों से मिलना भेंटना हुआ।

इन्हीं दिनों में स्वामी जी की "सस्कारविधि" बबई से छप कर आ गई,

---

मासिक प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई थी।

* अब आपने समस्त वेदभाष्य भूमिका छपने के लिये लाजरस प्रेस बनारसमें भेज कर उसके मासिक प्रचलित करने का प्रबंध किया और टाइटिल पेज पर अपने पर्यटन अर्थात् आने जाने का प्रोग्राम छपाने लगे।

जिसको देख कुंवर ज्वालाप्रसाद ने उनसे कहा कि इसमें अमुक २ बात आपने बहुत बुरी लिखी हैं, इसको विक्रय करके अनुचित बातों का प्रचार न कीजिये परंतु वह भी स्वामी जी ने स्वीकार नहीं किया। —

देहली से स्वामीजी पश्चिमोत्तर प्रांत मे चले गये, और मुरादाबाद वाले मुन्शी इन्द्रमणि के साथ स्वामी जी ने प्रीति का प्रचार किया।

मुरादाबाद में कुछ दिन रह कर स्वामी दयानन्द सरस्वती और मुन्शी इन्द्रमणि दोनों महाशय चान्दापुर के प्रसिद्ध मेले में चले गये।

यह मेला मुन्शी प्यारेलाल कबीरपंथी कायस्थ ने अपना सहस्रों रुपया लगा कर और साहिब जिलाधिपति की आज्ञा लेकर कराया था, और चांदापुर गांव मुन्शी प्यारेलाल साहिब का ही है।

यह मेला चैत्र शुक्ला ४। ५ सं० १८३४ मुताबिक १९। २० मार्च सन् १८७७ ई० में हुआ था।

मेले में बाबू हरगोविन्द साहब हेडक्लर्क शाहजहांपुर, मौलवी मोतीमियां, ला० रामप्रसाद आनरेरी मजिस्ट्रेट, लाला बनवारीलाल, बाबू प्यारेलाल, मुन्शी सोहनलाल, मुहम्मद हैदरअली मुख्तार, मुहम्मद अलीशाह आदि अनेक प्रतिष्ठित तथा ओर और अनेक जाति के मनुष्य आये थे। उनमें कई पादरी और कई मुसलमान भी थे, सो स्वामी दयानन्द सरस्वती का नोबिल स्काट साहब पादरी और मौलवी कासिमअली मुसलमान से वादानुवाद आरम्भ हो गया। प्रथम पादरी नोबिल स्काट साहब फिर मौलवी कासिमअली फिर स्वामी दयानन्द सरस्वती और मुन्शी इन्द्रमणि जी वर्णन करते थे, और नियम यह था कि प्रश्न दश मिनट से अधिक देरमें न कहा जाय और उत्तर ३० मिनट से अधिक देरमें नहीं दिया जायगा।

दूसरे दिन ७॥ बजे दिन से लेकर ११ बजे तक और १ बजे से ४ बजे तक वादानुवाद हो कर मेला विसर्जन हुआ, ईसाई लोगों ने इस मेलेम हार उठाई स्वामी दयानन्द सरस्वती और मुन्शी जी की विजय हुई, विशेष हाल देखना चाहो तो स्वामी दयानन्द सरस्वती रचित "मेला चाँदपुर" नामक पुस्तक में देखो।

तारीख २१ व २२ मार्च सन् १८७७ ई० को दो रात मोतीमियाँ रईस

— देखो मंगलदेव पराजय पृ० १८ पंक्ति १६।

शाहजहांपुर ने मुन्शी इन्द्रमणि के नाम इस विषय को लिखा कि आप स्वामी दया-नन्द सरस्वती को साथ लेकर शाहजहांपुर चले आओ। आपसे मौलवी अहमद हुसैन साहब पुनर्जन्म के विषय में कुछ बहस किया चाहते हैं।

इन खतों के पहुँचने पर दोनो महाशय २२ मार्च सन् १८७७ ई० दो पहर दिन चढ़े शाहजहाँपुर पधारे और डिप्टी साहिब के मकान पर विश्राम किया।

अगले दिन २ पहर दिन चढे तक मौलवी साहब की राह देखी परन्तु जब मौलवी साहब नहीं आये तो लाचार इनको भी लौट आना पड़ा।

इस चान्दापुर के मेले के समय स्वामी जी के पास वेदभाष्यभूमिका प्रूफ सीट होने के लिए आया, उक्त प्रूफ में लिखा था कि सृष्टि की आदि में अग्नि वायु, आदित्य और अंगिरा उत्पन्न हुए, उनके ज्ञान में ईश्वर ने वेदों का प्रकाश किया, मुन्शी जी ने उसे देख कर स्वामी जी से कहा कि "श्वेताश्वतरोपनिषत" में लिखा है कि—

योब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वैवेदांश्च प्रहिणोति तस्मै, इति

इसकी पुष्टि में और भी अनेक वचन हैं, और अद्यपर्यंत सम्पूर्ण विद्वानो का यही मत है, कि परमात्मा ने सृष्टि की आदि में श्री ब्रह्मा जी के हृदय में प्रकाश किया है, आपने सम्पूर्ण के विरुद्ध अग्नि, वायु, और अंगिरा के ज्ञान में कैसे लिख दिया ? इस पर बहुत वार्तालाप रहा अंत में स्वामी जी ने कहा कि मुझको—

"अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थ मृग् यजु साम लक्षणम् ॥"

मनु के इस श्लोक पर कुल्लूकभट्ट के टीका में

'अग्नेऋग्वेदोवायोयजुर्वेद आदित्यात् सामवेद' इति

यह श्रुति देख कर धोखा लग गया मैंने "सत्यार्थप्रकाश" में भी ऐसा ही लिखा है अब आपके कथन से प्रकट हुआ कि यह बात अशुद्ध है परन्तु मैं अपने पहिले लेख के विरुद्ध नहीं लिख सकता। *

आर्यसमाज वाले मिलने के समय जो परस्पर नमस्ते कहते हैं, इस विषय

* देखो मंगलदेव पराजय पृ० ८ पंक्ति २१ व पृ० ९ पंक्ति १४ तक।

मुन्शी जी ने स्वामी जी से हरिद्वार, छलेसर आदि में वार्तालाप किया कि परस्पर नमस्ते का करना अयोग्य है । हरिद्वार में स्वामी जी ने पण्डित भीमसेन को मध्यस्थ किया उन्होंने स्वामी जी के सन्मुख स्पष्ट कह दिया कि मुन्शी जी ठीक कहते हैं, परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्य है, परन्तु स्वामी जी को अपने कथन का आग्रह ही रहा । फिर मुरादाबाद में इस विषय पर तीन दिन स्वामीजी से मुन्शी जी का पूर्ण वार्तालाप हुआ, पण्डित भीमसेन ने बहुत मनुष्यों के सन्मुख कहा कि हम स्वामी जी से नमस्ते कहते हैं, परन्तु वे उत्तर में किसी को नमस्ते नहीं कहते । अन्त में स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि आपका कथन सर्वथा ठीक है निःसन्देह परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्य है । ॐ

जब शाहजहांपुर में स्वामी जी का और मौलवी साहब का मुकाबिला नहीं हुआ तो यह मुरादाबाद मथुरा आगरा आदि शहरों में घूमते और विद्वान् पुरुषों से अपना मेल बढ़ाते फिरने लगे, क्योंकि जिस भय से यह अपने आपको प्रकट करना नहीं चाहते थे, वह भय सर्वथा नष्ट हो चुका जाना जाता था । +

बाबू नवीनचन्द्रराय ने आगरे में और बा० वृजलाल घोष ने मथुरा में स्वामी जी से मिल कर मन में विचारा कि इन महात्मा जी से हमको अधिक सहायता मिलने की आशा है, यह दोनों बाबू ब्रह्मसमाजी थे ।

बा० नवीनचन्द्रराय ने लाहौर के ब्रह्मसमाजियों को आगरे से लिखा कि यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती लाहौर में पधारें तो ब्रह्मसमाज की तरफ से इनका स्वागत कर अच्छी तरह आदर सत्कार होना उचित है ।

१९ अप्रैल सन् १८७७ ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वती लुधियाने से लाहौर में पधारे, मुन्शी हरसुखराय अखबार "कोहेनूर" के मालिक और पण्डित मनफूल साहब मीरमुन्शी गवर्नमेण्ट पञ्जाब ने इनकी रेल पर अगवानी की । और रत्नचन्द धाड़ीवाल के बाग में इनका डेरा जमा, और ब्रह्मसमाजियों की तरफसे ही इनके खानपान का प्रबंध हुआ ।

ॐ मतादेय पराजय पृ० ८ पंक्ति ९ ।

+ तभी तो निडर हो वेदभाष्यभूमिका के टाइटिल पर मासिक छपाने लगे कि अमुक मास में हम अमुक स्थान पर होंगे ।

सम्पादक धर्मजीवनपत्र लाहोर अपने १२ जून सन् १८८७ ई० के छपे हुये पत्र संख्या २४ पृ० ५ में लिखते हैं कि जो तरमाल पहिले कभी स्वप्न में भी मुश्किल से न देखे होंगे उनके भोग लगने लगे, और उन लज्जतों का केवल इसबात से अनुमान हो सकता है कि पहिलेपहिल जब यह लाहौर में आये तो चार व पांच रुपया प्रतिदिन केवल भोजन के खर्च को लिया करते थे ।

उधर जिह्वा का स्वाद जितना मिला उतना चक्खा । इधर पोशाक का लोलच इतना बढ़ा कि नंगे रहने के दिनों की कसर निकालने के लिये पशमीने रेशम कलाबतून आदि के अनेक वस्त्र बनने लगे ।

आर्यसमाचार मेरठ में जो स्वामी जी की पोशाक की फेहरिस्त प्रकाशित हुई, उसको देख कर विद्वान् पुरुष भली प्रकार समझ सकते हैं कि यह सन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती कहाँ तक त्यागी थे ।

पूर्वोक्त समाचारपत्र से कुछ वस्तु के नाम लेकर यहां लिखे जाते हैं ।

सुर्ख दुशाला कामदार १, दुशाला जर्द जोड़ा १, दुशाला सुर्ख १, चादर पशमीने की १, चोगा सफेद बनात का १, दुशाला रेशमी १ जोड़ा दोपट्टारेशमी धूपछाँह का १, चोगाजरदोजी रेशमी १, चोसारेशमी इकहरा १, चोगासब्ज १, कोट रेशमी दोहरा १, पेटी सुर्ख धोतियां सुर्ख रेशमी किनारे का दुपट्टाकलाबतून का १ इत्यादि० ।

स्वामी जी के मरने पर जब उनके द्रव्य की संभाल हुई तो परोपकारिणी सभा के उपमन्त्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने २८ दिसम्बर सन् १८८२ ई० को अजमेर में भरी सभा को यह दिखलाया गया था कि चार हज़ार तीन सौ ४३००) रुपया नकद मौजूद हैं, और ग्यारह हजार रुपया ११०००) लोगों के से लेना है, चार हज़ार ४०००) का प्रेस और अड़तालीस हज़ार ४८०००) रुपये की पुस्तक मौजूद हैं *

प्यारे पाठकवृन्द ! यह लेख हमने अपनी तरफ से कल्पना करके नहीं लिख दिया किन्तु आर्यसमाज ही के लेखों से लिया गया है, अब हम पूछते हैं कि क्या देशोन्नति के लिये भेंट हो जाना इसी का नाम है ? क्या भूखी नंगी हालत से

* देखो दयानन्दग्विजय भाग २ और उर्दू पुस्तक रद्दबुतलान पृ० ७७ ।

निकल कर चैन करना ही देश के लिए भेट हो जाना है ? ऐसा करने के लिये तो हर कोई उद्यमी हो सकता है, हम पूछते हैं कि स्वामी जी ने देश के लिए क्या कुछ खोया ? त्यागी होने से पहिले क्या कुछ पास रखतेथे जो देशको भेट किया? अकेली जान के लिए पराए ठगे हुये द्रव्य से आनन्द सुख भोगने में उन्होंने कुछ भी कमी नहीं की, खाने पीने की वस्तुओं को तथा शारीरिक भोग विलासों को छोड़ कर और यह भी विचार कर कि जब उनको बड़े २ राजा महाराजाओं से मिलने का बहुधा काम पड़ा और उस समय नंगा रहना कुछ भला न था, ठीक है, और इसी को मान भी लिया जाय तो कह सकते हैं कि एक सीधी सादी पोती (पोशाक) काफी थी। नाना रंग के दुशाले और अनेक पशमीने कलाबतूनके चुगों की कौनसी आवश्यकता थी, प्रथम तो सन्यासधर्म्म, दूसरे कलाबतूनी रेशमी ऊनी कपड़े और तिरेपन वर्ष से अधिक अवस्था, धन्य महाराज ! सब सन्यासी ऐसे ही होते है, यदि स्वामी जी अपने निज द्रव्य से भी ऐसा करते तो अयोग्य था और यह तो वह धन था जो एक एक पैसा कर के देश सुधार धर्म के नामपर या मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें * आदि के नाम से लिया गया था, बहुधा आर्य-समाजी कहते हैं कि यदि मुन्शी इन्द्रमणि के चन्दे का कुछ रुपया स्वामी जी ने रख भी लिया तो क्या वे अपने साथ ले गये ? इसी देश के लिए छोड़ गए, अच्छा यही सही परंतु देखो तो सही और मनुष्य जो छल कपट द्वारा द्रव्य जोड़ते हैं क्या वे सब अपने साथ ले जाते हैं, हम सत्य कहते हैं कि यदि महात्मा जी के कोई आगे पीछे होता ‡ तो जो सहस्रों की पूँजी वह छोड़ मरे वह पिछलों ही की होती, जिस प्रकार बहुधा पादरी लोग नौकर हुये पीछे गप्प गप्प जुबानी जमा खर्च लपालप्प से काम लेकर चैन करते हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी चैन उड़ाया, और समयानुसार चाल चल कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में देशहितैषी जुदे कहलाए गए, परन्तु काठ की हाँडी बार बार नहीं चढ़ती शनै शनै दुग्ध का दुग्ध और पानी का पानी हो ही तो गया।

जब इनका चलन व्यवहार बदला तब उपदेश भी बदल गया, लगे मनमाने

* मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें का हाल आगे मिलेगा।

‡ अगर कोई अगला पिछला स्वामीजीके था उसको प्रकट नहींकिया जानकर छिपाया।

शब्द उचारने, और अनेक नास्तिक वादियोंके समान मतमतांतर के झगड़ों को झूठा समझ संसार में जन्म धारने का फल (शरीर को नाना प्रकार के पट आभूषणों से अलङ्कृत कर के) मन और इन्द्रियों की इच्छा पूर्ण होनां ही ऐसा निश्चय करके मानने लगे ।

(क) सम्भव होता है कि इस समय इनको यह बड़ा भारी पश्चात्ताप हुआ होगा कि मैंने लौकिक मतमतांतरके बखेडेमें पड़ कर क्यों अपना अमूल्यसमय बरबाद किया और सांसारिक नाना प्रकार के शारीरिक सुखों को त्याग कर अथवा उनसे वञ्चित रह कर तन पर विभूति मल लंगोटी बाँध नमकमण्डलिये कभी गंगा के वरले पार और कभी परले पार क्यों मन भटकाया ।

धन की इच्छा तो यहाँ तक रहती रही है कि आपमें वित्तैषणा का त्याग भी नहीं पाया जाता, धन की प्राप्ति में कैसे कैसे प्रयत्न किए थे, कि निज प्रेस जारी किया, पुस्तकों का मूल्य द्विगुण त्रिगुण नियत हुआ, हमारी पुस्तकों की कोई असल या नक़ल न छापे इस लिए उनकी रजिष्ट्री कराई गई, लोगों से धन आने और पुस्तक विक्रय के व्यवहार से कमाने पर भी व्याकरण की पुस्तक छपवाने को समाजोंमे धनकी सहायतानी और बहुत पण्डित नौकर रख कर वेदभाष्य की पूर्ति शीघ्र होगी इस बहानेसे पृथक् याचना की उपदेशक मण्डली के नामसे (१००००) एक लक्ष रुपया एकत्र करने में यथा शक्ति प्रयत्न किया गया परंतु अन्य भाँतियों के विवाद विषय के शांतिकारक व्यवहार में आपका विपरीत व्यवहार प्रकट होनेके कारण वह मनोर्थ पूर्ण नहीं हुआ । *

लाहौर में जब स्वामी जी ने हिन्दू लोगों के मतविरुद्ध अपने व्याख्यान देने प्रारम्भ किए तो रत्नचन्द के बाग से इनको उठा दिया गया और डाक्टर बृजलाल घोष रायबहादुर की और अन्य कई महाशयों की शिफारिश से डाक्टर रहीम खां खानबहादुर ने अपनी कोठी दे दी और स्वामी जी इस कोठी में रह कर व्याख्यान देने लगे । ‡

स्वामी दयानन्द सरस्वती के आधुनिक मत प्रचलित होने से जो जो हानि

---

* देखो दयानद मत परीक्षा पृष्ठ ९ पंक्ति १७ ।

‡ देखो इसी छलकपटदर्पण पुस्तक की भूमिका ।

प्राणी मात्र को हुई उसका वर्णन करने से पहिले हम उस वृत्तान्त का ही लिखना भला समझते हैं, जिससे यह निश्चय हो सके कि जब तक स्वामी जी का काम पूरा २ नहीं चला था तो उन्होंने क्या २ यत्न किये ।

जब तक लाहौर में इनका काम नहीं चला यह ब्रह्मसमाजके ही पूरे शुभचिंतक और सहायक बने रहे जिसके बदले में ब्रह्मसमाजियों ने इनका खूब ही आदर सत्कार किया, परन्तु जब कुछ मनुष्यों ने इनके चिकने चुपड़े व्याख्यानों से संतुष्ट हो इनका पक्ष ग्रहण करलिया तो स्वामीजी ब्रह्मसमाजियों को भी बुरा कहनेलगे ।

सो सत्य भी है कि जिस हांडीमें खाना उसी में छिद्र करना । ※

वैशाख सं० १९३४ में स्वामी जी अमृतसर पधारे थाना नारायणसिंह वकील अमृतसर वाले कोहेनूर अखबार लाहौर में लिखते हैं कि—

जब स्वामी दयानन्द सरस्वती अमृतसर आए तो उन्होंने अपनी राय से लेक्चरों में गुरु नानकदेव और गुरुगोविंदसिंह महाराज की, और सिक्खमत की बड़ी तारीफ की, सिक्खमतको अपने खयाल के मुताबिक जाहिर किया और हर एक मौके बातचीतमें सिक्खमतकी तारीफ करते रहे, लेकिन जिस वक्त अपनी गरज पूरी हो गई तो "सत्यार्थप्रकाश" में II झूठ मूठ गुरु नानक और गुरु गोविंदसिंह महाराज और सिक्खमतकी तोहीन (बुराई) छाप दी और बहुधा बातें मनघड़त बिना प्रमाण लिख दीं, इत्यादि० ।

प्रथम ही जब स्वामी दयानन्द सरस्वती लाहौर आए तो अपना जीवनचरित्र व्याख्यान की रीति पर कई दिन लगातार वर्णन किया था ।

यह पञ्जाब की यात्रा स्वामी जी को सफल हुई, और उनके चटपटे उपदेशों से बुद्धिमान हो कर लाहौर और अमृतसर * के पञ्जाबियों ने अपने २ स्थानों

※ परन्तु यह ब्रह्मसमाजियों को भी उचित न था जो स्वामी जी को अपने प्रतिकूल जान दिया हुआ उल्टा मांगा, इसबार ब्रह्मधर्म पुस्तक के पृष्ठ ७१ पर राधाकृष्ण महता लिखते हैं कि ब्रह्मसमाजियों ने स्वामी जी से वह रुपया उल्टा मांगा जो उनको जानकारके खर्च को दिया था सो दो चार मनुष्यों ने चन्दा करके अपने पास से दे दिया ।

II देखो अखबार कोहेनूर लाहौर ता० ११ दिसम्बर सन् १८८८ ई० ।

* अब स्वामी जी के लाहौर समाज की तीसरी और अमृतसर समाज की चौथी जयंती जाननी चाहिये ।

पर स्वामी दयानंद सरस्वती की आर्यसमाज स्थापित करा दी ।†

इस समय भी जो मनुष्य विद्या और बुद्धि तथा द्रव्यके कारण ब्रह्मसमाज में प्रसिद्ध थे उनको स्वामी जी ने देश सुधार के नाम से धोखा देकर अपने समाज में मिलाने का यत्न किया और एक विख्यात पुरुष को अपने समाज का प्रधान बनाने को कहा परन्तु उक्त महाशय ने स्वीकार नहीं किया, तब लाचार हो उन्होंने पजाबयूनिवर्सिटी के एक डिगरी पाये हुये को (जो इस समय से पहिले अपना विश्वास नास्तिकता पर लाकर नास्तिक विख्यात हो रहे थे) अपने ढग का जान कर लाहौर आर्यसमाज का प्रधान नियत किया।

यह जो लाहौरसमाजके प्रधान नियत कियेगयेथे, निश्चयमें नास्तिकविश्वासी थे, सो जब यह समाजकी उपासनामें आनेसे बचने लगे और उससे अपनीअरुचि विदित करी तब स्वामी जी ने उनको गुप्तरीति से यह कह दिया कि यद्यपि तुमको परमेश्वर पर विश्वास नहीं है, परन्तु देश की भलाई के लिये कुछ समय के लिये आपको समाज मन्दिर में आनकर नेत्रमूदकरके बैठ जाना ठीक है।

ब्रह्मसमाज के अनेक प्रतिष्ठित सभासदोंसे स्वामीजीने यह स्वीकार कर लिया है कि मुझको वेदों पर कुछ भी विश्वास नहीं है, केवल अपने कार्य्यकी सिद्धी के अर्थ यह—एक सहारा बना लिया है।

अभी जब कि कर्नलअलकाटसाहब * और उनकी सुसायटीसे इनकी मित्रता भग नहीं हुई थी तो पहिलीवार कर्नलसाहिबने लाहोर में आकर आर्य्यसमाज के मन्दिर में एक व्याख्यान दिया जिसमें अपनी सुसायटीके जन्मधारण करनेका वृत्तात कहकर यह वर्णन प्रारम्भ किया कि आर्य्यसमाज और उसके प्राणदाता से इस सुसायटी का क्योंकर सम्बन्ध हुआ और यह भी वर्णन उसी समय का है कि मुझको आर्य्यसमाजियों से मित्रता किये पहिले उनके दश नियमों का साराश विदित न था किंतु जब उनका अग्रेजी अनुवाद मेरे पास आया तो उसमें ईश्वरके उन गुणों

† जब स्वामी जी ने अमृतसर में समाज खोला, तो ब्राह्मण लोग मूर्खता पर उतरे भावार्थ—स्वामीजी पर छिप छिपकर पत्थर फेंकने लगे तब लाचार हो स्वामी जी को सरकार में रुपये देकर पुलिसका गार्डलगलेना पड़ा था।

* कर्नलअलकाट कौन था यह आगे चलकर लिखा गया है।

को देखकर जो उसको पुरुष रूपमानकर प्रकट किय हैं, यड़ा आश्चर्य्य हुआ। और यह शङ्का उत्पन्न हुई कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसे साकार ईश्वरको क्योंकर मानते होंगे। सो मैंने आर्य्यावर्तदेश में आकर उक्त स्वामीजी से मिलके और पर एकान्त में प्रश्न किया तो यह उत्तर मिला कि मेरा गुप्त विश्वास जिसपर है वह ईश्वर और ही है, जिसको मैं इस स्थानपर यथार्थ प्रकट करना नहीं चाहता और आर्य्य-समाज के दश नियमों में गर्भितईश्वर परमात्मा और है।

[क] आहा! कैसा उत्तम विषय है जिनके स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे गुरुहों उनके विद्या और बुद्धि तथा भाग्यकी बलिहारी है। कहा है कि—

श्लोक—गुरवो बहव: सन्तिशिष्यवित्तापहारका: ।
दुर्लभःसद्गुरुर्देवि शिष्यसंतापहारक: ॥१॥

द्वितीय ज्येष्ठ तथा आषाढ के महीने सम्वत् १९३४ में स्वामीजी का पं० श्रद्धारामजी फिल्लौर जिला जालन्धर निवासी से शास्त्रार्थ हुआ। ‡

इसी अवसर पर स्वामी जी को अख़बार वकील हिन्द और पंजाब यूनी वर्सिटी के लिखे लेखों से मालूम हुआ कि वेद भाष्य के प्रतिकूल कराकत्तो आदि अनेक स्थानों के विद्वानों ने लेखनी चलाई, इस पर स्वामी जीने निम्न लिखित लेख को अंग्रेजीमें अनुवाद कराकर उनके पास पठाया।

कई एक साहिबों ने मद्रचित वेद भाष्य पर प्रतिकूल अनुमति दी है, इस लिये मैं उनकी शङ्काओं का उत्तर क्रम से निवेदन करता हूं। प्रथम उन शङ्काओंका उत्तर है जो मिस्टर आर ग्रिफित एम ए प्रिन्सपिल बनारस कालिज ने की हैं। पांच हजार वर्ष के लगभग से वेद विद्या जाती रही महाभारत से पहिले इस देश में सब विद्या ठीक २ प्रचलित थी परन्तु पीछेसे पढने पढानेके ग्रन्थ तथा रीति बिलकु-ल बदल गई जब से अब तक वही अशुद्ध प्रणाली प्रचलित है, यद्यपि कहीं २ के

‡ पुस्तक सत्यामृतप्रवाह केकर्ता पंडित श्रद्धारामजी नवीन सांख्यमती थे जिन्होंने स्वामीजी की खूब खबर ली।

लोग वेदादिक सत्यग्रन्थों को कंठस्थ लेते हैं परन्तु उनके शब्दार्थ को कोई भी नहीं जानता न ऐसे कोई व्याकरणादि ग्रन्थ अर्थ सहित पढाये जाते हैं जिनसे वेदों का अर्थ हो सके आधुनिक जो महीधर आदिके बनाये हुये वेद भाष्य देखने में आते हैं वे महाभ्रष्ट और अन्धकार के बढाने वाले हैं उनके देखने वालों को मद्रचित भाष्य ठीक समझ में नहीं आता मेरा भाष्य शुद्ध वेदार्थ बोधक और प्राचीन भाष्यों के ठीक अनुकूल है यह तभी समझ में आवेगा जब लोग प्राचीन—भाष्यादिक ग्रन्थों की सहायता स्वीकार करेंगे मैंने प्रत्येक मन्त्र का अर्थ सत्यप्रतीत होने के लिये बहु प्राचीन आप्त व्याख्यानकारों का प्रमाण बहुतस्पष्ट पतेवार लिख दिया है, यदि—ग्रिफिथसाहब ने प्राचीन भाष्य वा मेरे लिखे प्रमाणों और उदाहरणों को पढ़ा होता तो कभी उनकी ऐसी विरुद्ध समति न होती जैसी कि उनने हाल में दी है, **उव्वट, सायण महीधर, रावण,** आदि के रचे हुए भाष्य प्राचीन भाष्योंमे समस्त स्थानों में विपरीतहैं, केवल इन्हीं भाष्योंका अनुवाद अंग्रेजीमें 'विलसन' और 'मेक्समूलर' आदिप्रोफेसरोंने किया है, इस लिए मैं इनके भाष्यों को भी शुद्ध और न्यायकारी नहीं कह सकता इन्हीं ग्रन्थों के कारण 'ग्रिफिथसाहिब' आदि लोग भी सन्देह मार्ग में पड़े हैं, और मुझको यह कहकर दूषित करते हैं कि स्वामी जी ने अर्थ पलटकर अपने प्रयोजन के सिद्धार्थ—दूसरे ही अर्थ नियत किए हैं, परंतु उनका यह तर्क सर्वथानिर्मूलहै, मैंने सर्वत्र 'ऐतरेय' और 'शतपथादि' नामक ब्राह्मण ग्रन्थ और निरुक्त तथा 'पाणिनीय' व्याकरणादिक सत्य ग्रन्थोंका प्रमाण देकर प्रत्येक मन्त्रका सत्य २ अर्थ लिखा है यदि'ग्रिफिथसाहिब' उसको देखते तो कभी ऐसा न लिखते, विचार करता हूं कि उन्होंने मेराभाष्यबिना ही, देखे भाले अपनी मनमानी अनुमति प्रकाशित कर दी है।

मैं नहीं समझता हूँ कि क्यों ग्रिफिथसाहब मेराभाष्यभ्रमसमझते हैं जबकि मेरेभाष्य के लेनेवाले हजारसे अधिकबडे २ सत्पुरुष हैं और प्रतिदिन नवीनजनोंके निवेदनपत्र मेरी पुस्तकलेनेके विषयमें बराबर चलेआते हैं, मेरे ग्राहकोंमेंसे बहुतसे अच्छे २ संस्कृतज्ञ और बहुतेरे अंग्रेजी और संस्कृत में पूरे २ विद्वान हैं "ग्रिफिथसाहबका" यहअन्तिम लेख कि वेदों की ऋचाओं से बहुत से देवताओं के नाम प्रकाशित होते हैं, सोउन की यह बात मुझको तब प्यारी लगे और विद्वानो के समीप प्रमाणीकठहरे जब वे

उस मतलबकी कोई ऋचा मुझको लिख भेजें ।

(A) यद्यपि वेदों को शीघ्रदृष्टिसे देखनेसे देवताओं के नाम बहुतसे प्रतीत होते हैं जिनकी स्तुति उनमें लिखी है, परन्तु पुराने व्याख्यात ग्रन्थों के अनुसार (जो ठीक आर्य्यधर्म के विषय के हैं) * व अनेक नाम देवता या मनुष्यों और पदार्थों के नहीं ठहरसकते, अर्थात् वेसब तीनदेवताओंहीके नामसे सम्बन्ध रखते हैं और फिर ये तीनों नामों के देवता भी पृथक् २ नहीं हैं, अर्थात् ये तीनों नाम एक ही परमेश्वर के हैं निघंटु अर्थात् वेदोंके शब्दकोशके अन्त में तीननामावली देवताओंकी हैं ॥ उनमें से पहिली में "अग्निके" दूसरी में "वायुके" तीसरीमें "सूर्य्यके" पर्य्यायवाचीनामहैं, निरुक्तके अन्तभागमें जिसमें केवल देवताओंका वृत्तान्तहै यहहीं वार कथनकियागया है कि देवता केवलतीन हैं। (तिस्रएवदेवता) इनसे अधिकतर अनुमान सिद्धान्त यह निकलता है कि केवल एक ही देवता है यह बात वेदके अनेकवाक्योंसेभी सिद्धहोती है, और यहीआशय निरुक्त और वेदके प्रमाण के अनुसार अतिसुगम और संक्षेपरीतिसे ऋग्वेद के सूचीपत्र में वर्णनकिया है इससे यह निर्णय होता है कि आर्य्योंके पुरानेधर्ममार्ग की पुस्तकें केवलएकहीब्रह्मको मानती हैं, और सूत्रोंसेभी ऐसाहीसिद्धहोता है ।

(B) वेदोंसेज्ञात होता है कि आर्य्यऋषियों का धर्ममार्ग केवल एक बड़े ब्रह्मके पूजन और श्रद्धा व भक्तिमें था जिसको वे सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ और सर्वव्यापक जानतेथे, और जिसके सम्बन्धी गुणोंको वेअत्यन्तपूजनीय वाक्यों में प्रकटकरतेथे, और वे सबधिगुण उसकी तीनप्रकारकीशक्तियां हैं, उनमेंसे प्रथम "उत्पादक" दूसरी "पालक" तीसरी "संहारक" नामसेवर्णनकीजाती हैं ।

(C) इनअतिसत्यव्याख्यानोंसे मुझेपूर्णविश्वास होता है कि चारोंवेदएकही ब्रह्मको मानते हैं, "जोसर्वशक्तिमानचिरस्थाई स्वयम्भू संसारका द्योतक" और पालकहै, मैं इसके संग एक और ऋचालिखताहूँ जिससे एकहीब्रह्म निश्चित होताहै, उससेआपकीशङ्कानिवृत्तिहोगी, खूब जानिये कि आर्य्यलोग स्वाभाविकबुद्धिसे सदैव अद्वैतसेवी अर्थात् केवल एक ईश्वरहीको मानतेथे ।

---

* आपतोचारवेदोंकेअतिरिक्त और किसी को सत्यनहीं मानते फिर यह पुस्तक क्या थे सो नहींलिखे ?

पादके ३२ वें सूत्रका प्रमाण देता हूँ उसको देखें तुष्ट होवें ।

अब रहे "पण्डित भगवानदास" असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत गवर्नमेंट कालिज लाहौर सो उनकी कोई नवीन शंका नहीं है इस लिये जो कुछ मैंने ऊपर कहा वही बहुत है वे भी इसी लेखपर संतुष्ट होवें ॥ इति ॥

पूर्वोक्त लेख की अनेक प्रति अंग्रेजी छपाकेर स्वामी जी ने वितरण कर दीं स्वामीजी लिखते हैं कि " मैं नहीं समझ सकता हूँ कि क्यों ग्रिफितसाहब मेरा वृथा श्रम समझते हैं जब कि मेरे भाष्य के लेने वाले हजार से अधिक बड़े २ सत्पुरुष हैं और प्रत्यहनि नवीनजनों के निवेदन पत्र मेरी पुस्तक लेनेके विषयमें बराबर चले आते हैं, मेरे ग्राहकों में से बहुत से अच्छे २ संस्कृतज्ञ और बहुतेरे अंग्रेजी और संस्कृत में पूरे २ विद्वान हैं ।

(क) इस पूर्वोक्तलेख से तो स्वामी जी ने उलटा उपहास जनक दृश्य दिखला दिया क्या उनके वेद भाष्य के अधिक ग्राहक होजाने से ही वह प्रमाणीक हो गये ।

जब सम्पूर्ण भारत में आपका सर्वोत्कृष्ट भाष्य बनाना प्रसिद्ध हुआ तो विद्यारसिक पुरुषों का ग्राहक होजाना कोई बड़ी बात नहीं है, चिलम, कली नय देखा हुआ पीने वाले ही खरीदते है, दूसरे नहीं फिर संस्कृत का पुस्तक भी तो वही खरीदेगा जो संस्कृत का जानकार हो, इसमें स्वामीजी व्यर्थ खुशी हुए कि हमारा वेद भाष्य विद्वानोंने खरीदा खुशी होना तो तबहीं ठीक था कि जितने ग्राहकों ने वेद भाष्य खरीदा उनमें से आधे भी उनकी सराहना करते, और अपना आनन्द भरा लेख सार्टीफिकेट के तौर पर स्वामी जी के पास भेज देते, जैसा कि अनेक विपक्षियों ने तर्क लिख लिख भेजा और स्वामी जी ने उसको जानकर छिपाया ।

——)(०)(——

श्रावण सम्वत् १९३४ में स्वामीजीने अमृतसर में रहकर एक "आर्योद्देश्यरत्नमाला" नामक पुस्तक बनाकर उसी स्थानके चशमएनूर छापेमें छपाई जिसका आदि श्लोक यह है, *

* सत्यार्थप्र० में स्वामीजी ने मरेपितृका श्राद्धकर्मा लिखाया उसके प्रतिकूल इस

४ ३ ६ १ नाम राजा
वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्यभूपते ।
श्रावण शुक्ल ७ बुध
नभस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्तिमगादियम् ॥१॥

इस पुस्तककी समालोचना भी हम द्वितीय भाग में करेंगे, इसमें स्वामी जी ने अनेक प्रकार के १०० शब्दों का मनमाना अर्थ और भावार्थ लिखा है, जो असत्य मिश्रित सत्य होकर भी त्यागने ही योग्य है, यथार्थ भेद द्वितीय भाग से देख लेना।

तारीख १२ सितम्बर सन् १८७७ ई० को स्वामीजी जालन्धर पधारे, सरदार विक्रमसिंह अहलोवालिया के मकान पर ठहरे, यह सरदारसाहब भी स्वामी जी की चिकनी चुपड़ी बातों में आनकर पूरे सहकारी बन गए। जालधर के मौलवी अहमदहुसैन से स्वामी जी की 'बहस' होने की तजवीज होकर २८, सितम्बर का दिन नियत हुआ, और नियत समय पर दोनों महाशय उक्त सरदार साहब के मकान पर एकत्रित होकर वादानुवाद में प्रवर्ते, जब मौलवी साहब से स्वामीजी का पक्ष प्रबल रहा तो मौलवी साहब हठ करते चले गए, और इधर स्वामी जी की आज्ञा से सरदार विक्रमसिंह साहब अहलोवालिया ने इस "बहस" सम्बन्धी पुस्तकें छाप कर बांटी थी।

पञ्जाब में स्वामी जी के समाजों के स्थापित होने से देश में क्या २ चर्चा चली और विद्वानोंने अपना क्या २ मत प्रकाशित किया सो वह कुछ निम्नलिखित लेख से ज्ञात होगा।

तारीख १०. सितम्बर सन् १८७७ ई० के छपे हुए मित्रविलास पत्रमें प्रकाशित हुआ राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन निवासी का पत्र इस प्रकार है—

श्रीयुत मित्रविलास सम्पादकेषु !

महाशय;

आपके पत्र से ज्ञात हुआ कि मान्यवर परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री स्वामी

पुस्तकमें यह लिख दिया कि (६४) पञ्चायतन पूजा॥ जीते माता पिता आचार्य्य अतिथि और परमेश्वर को जो यथा योग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है उसको पञ्चायतन पूजा कहते हैं।

दयानन्द सरस्वती महोदय, लाहौर और अमृतसर मे बडी धूमधाम से सुशोभित हुए, और इन दोनो स्थानों में उक्त महोदय ने एक एक "आर्यसमाज" भी संस्थापन किया । हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आर्य्यसमाजों की प्रतिदिन उन्नति हो, और वह बडे बडे नगर एवं छोटे छोटे ग्राम सर्वत्र संस्थापित हों, अथच आर्य जन उनमें परस्पर समवेत (इकट्ठे) होकर अपनी उन्नति का साधन विचारें, और उसका अनुष्ठान करें । विशेषत वह लोग जो देशहित में बद्धपरिकर (कमर बांधे) हैं इन समाजों की उन्नति करने पर अवश्य दत्तावधान हों, क्यों कि इनके स्थिति रहने से अशेषत्कृष्टावस्था (अच्छी हालत) की सम्भावना है, हम यह नहीं कहते कि समस्त भारतवर्ष की उन्नति केवल समाज संस्थापना मात्र ही से हो सकती है, पर यही कि ऐसे समाजों से अनेक विषयों में सहायता मिलेगी । इसके आविःकर्ता (जारी करने वाले) ने हम लोगों की उन्नतिके लिये जैसे जैसे परिश्रम और दुःख सहे हैं, उनके सुनने से एक बार पाषाण के समान हृदय भी द्रवीभूत हो जाता है, तो फिर क्या कारण है कि हम लोग अपने एक ऐसे शुभचिंतक का उपदेश नहीं सुनें ? और उससे मैत्री परिवर्तन (बदले) में शत्रुता करें ? मेरी बुद्धि में यह अत्यन्त अज्ञ का काम है । बुद्धिमान् मात्र तो निस्सन्देह उन्हें उत्साह दान करेगा । और देश को उनका चिरबाधित (कर्जदार) समझेगा । मूर्तिपूजनके विषयमें अवश्य अनेकों का इनसे मतद्वेष है, पर एक उस अंश को छोड कर और देशोपकारी कार्य्यों में भी बहिर्मुख होना अनुचित है, धर्म्म विषय में चाहे जो कुछ किसी का मत हो पर शुद्ध देशहित मे सब को एक मत हो जाना चाहिये ।

आपका मित्र—

राधाचरण गोस्वामी ।



पूर्वोक्तपत्र का उत्तर, मित्रविलास पत्रसंख्या १० खंड १ ता० १७–९–१८७७ ई०

श्रीयुत मित्रविलास सम्पादकेषु !

महाशय,

जो पिछले सप्ताह में आपने लिखा था कि लाहौर और अमृतसर में, साधु दयानन्द सरस्वती ने "आर्यसमाज" स्थापन किये हैं, इनसे लोगों की उन्नति होगी,

उस पर हम लिखते हैं कि यह समाज देश के हास का साधन है, उन्नति की सम्भावना तो कहां । लोगों के धर्म्मका नाश करना ही इनमें मुख्य उद्देश्य है, वेद, स्मृति, इतिहास, पुराणों में जो धर्म्म प्रतिपादित है, उसमें विचारे शास्त्रानभिज्ञ लोगों को हटाना ही उन सभाओं का मुख्य प्रयोजन है, और श्रीराम, श्रीकृष्णादि अवतारों की निन्दा, श्रीगंगादि तीर्थ और परमपावन देवक्षेत्रों का अपवाद, यज्ञ, ब्राह्मण निन्दा द्वारा देवताओं से और परमेश्वर से विमुख करना ही, वेद वाक्यों के उलटे अर्थ करना यहां निश्चित है । वेद का अर्थ तो उलटा किया है, निरुक्ता-दिकों का अर्थ भी विपरीत ही समझाया जाता है ।

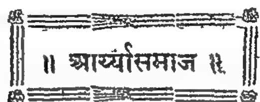
जब धर्मशास्त्रादिकों को ही अप्रमाण कहा, तो वर्णाश्रम धर्म कहां जब वेद के स्वेच्छानुरोधि अनर्गल अर्थ किये, तो फिर भला यज्ञ श्राद्धादिककर्म कब हुये । जब धर्म में ही च्युत हुए, उन्नति की आशा हो सक्ती है, पुरुष की उन्नति ऐहिक, पारलौकिक कर्मों से ही होती है, ईश्वरीय ज्ञान् का साधन कर्म है, जब अन्तःकरण शोधक कर्म ही न हुये, तो भला ईश्वर का यथार्थ ज्ञान कब और किस प्रकार प्राप्त हुआ । क्योंकि उपाय बिना उपेय की प्राप्ति का होना सर्व प्रकार असम्भव है । अतः हम परमेश्वर से यही मांगते हैं कि, हे परमेश्वर ! तू ऐसी २ कल्पित सभाओं को नष्ट कर, और श्रुतिस्मृत्युदित सनातनधर्मनिरूपक सभाओं की रचना में हमारे बन्धुओं के मन को लगा जिसमें व अपने धर्म पर सदैव स्थिर रहें ।

हमारा किसी के साथ विरोध नहीं, केवल श्रुति, स्मृति, पुराण विरुद्ध अज्ञलोगों के भ्रामक मत को देख में दयार्द्र होकर, इन लोगों को कहता हूँ । इस-में शत्रुता समझें तो उनकी परम अज्ञता है । जब मतभेद है, और मतभेद भी ऐसा है कि एक दूसरे के मत की और उसके आचार्य्यों की निन्दा करता है, तो देशोपकारी कार्य्यों में एक मत कब हो सक्ता है ? यद्यपि देशहितैषी होना बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु जब ऐसी २ धर्मनाशक सभायें रचित हुई तो एक मत होना बहुतही कठिन है ? धर्म्मसे अधिक कोईदेशोपकारीकाम नहीं, इसवास्ते प्रथम यथार्थ निरुक्तानुसार, श्रीमाधवाचार्य्यादिष्टत वेदार्थ को विचारकर सनातध-र्म्म में स्थितहोना चाहिये, पश्चात् देशहितैषी कार्य्योंमें भी स्थिति होगी । हमप्रार्थना

करतेहैंकि हेपरमात्मन इसदयानन्दसरस्वतीप्रणीत सर्वथानिष्फिमतसे, लोगोंकीबुद्धि को हटा, और सद्धर्म्ममेंप्रवृत्तकर ॥ अनम्।

लवपुर वासी } { आपकामिन्न
पं० मथुराम

मित्रविलास संख्या११खण्ड१तारीख२४सितम्बर सन्१८७७ई०मेंलिखाहैकि



॥ आर्य्यसमाज ॥

"सत्यबोलो" और "जोतुमकोसत्यप्रतीतहोताहै, वही करो" ऐसाकहना सहज है,परन्तु करनाकठिन। हमसबकिसी को यहीशिक्षाकरतेरहतेहैं कि, "भाइयो! झूठबोलनाबुरा है मद्यपान तथा वेश्यागमन प्रभृतिकर्म्म मनुष्यको उजाड़देते हैं"पर हमारा औरों को ऐसा कहना किसकामका, जब हम आपही इन कुकर्मोंमें मलितहैं। आर्य्यसमाजी लोग ब्राह्मणों की औरमूर्तिपूजा तथा श्राद्धादिककी निन्दा और प्रशंसा मुहसेतो करते हैं, परन्तु शोचकीबात यह है कि फिर भी अपने नियमों के अतिरिक्त चलते हैं जानबूझकर असत्य और मिथ्याकरना कैसा पाप है? पर तो भी वे ऐसा करते हैं।

सुनागया है कि, अभीकुछदिनहुये, उक्तसमाज के एकशिरोमणिसभासद्का विवाहथा, और यद्यपि वह ऐसाथा, तथापि उसने उन्हींब्राह्मणों से विवाह कराया जिनको वह सर्वदा पोपकहाकरताथा, उन्हींमूर्तियों का पूजनकिया जिनकी वहनिन्दा कियाकरताथा, और साराश उसने वही २ कर्म्मकिए, जो उसकी समझमें पाखण्ड कर्म्मथे, । वाह! स्पष्ट है कि ये लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ। हू हू हू हू! हमको उचित नहीं है कि एकही अपराधमें किसी को अपराधी बनावें, अतः हम यही योग्य समझते हैं कि इन कन्यागतके १५ दिवसोंतक ठहरें और देखेंकि ये लोग अपने नियमों परचलते हैं वानहीं और श्राद्ध करते हैं कि नहीं।

दूसरालेख इसीपत्र में

यहा के पण्डितलोग दयानन्दसरस्वतीके मत को खण्डन करनेके हेतु स्थान २

पर सभाएँ करहे है । आशा है कि इसबीजकाअंकुर शीघ्रही निकलेगा,

फिर मित्रविलास खंड १ सख्या १२तारीख१।१०।१८७७ई०मेंयहलिखाहै ।

श्रीयुक्ति मित्र विलास सम्पादकेषु,

महाशय !

मैंने जो १० सितम्बर के पत्रमे आर्य्यसमाज के विषय में लिखाथो, उसपर आप के नगर निवासी पण्डितनथूराम तर्ककरते हैं, और कहते हैं कि यह समाज देशकेह्रासकासाधक हैं । कदाचितपंडितजी का कथन सत्यहो, पर यह हमभली भाँति जानते हैं किइनसमाजो के अनुमँह से देशभक्ति शास्त्रानुराग ज्ञानालोचन, अवश्यहोसकता है, जिससे हमारे देशकु अतीव उपकार होने की सभावना है । धर्मकेविषयमे प्रथम एकमत करके पुन देशोन्नति करना भारतवासियोंसे असाध्य है, क्योंकिइस देशमें इतने मत प्रवृत्त है कि उनकीएकता होना अत्यन्त कठिन है, और यदि एकता भीहोजायतो फिर उनमे किसी एक मतको उत्कृष्टकहकर उसमें सबका प्रवेशकराना भी असम्भव है, क्योंकि शताब्दियो से परस्पर मतोका विवादचलाआता है, परतु उसमें आजतक भी कुछ निर्धारित न हुआ, और न सबमतनष्टहोकर किसी एकमत की प्रवृत्तिही प्रधान रूपमे हुई तो यह कौनकहसकता है किहमइसका भारलेतेहैं, और शीघ्र ही सबको एकधर्मकरसकतेहैं। यदि हमारे पण्डितजी इसविषयमे प्रतिज्ञा करते हों तो देश का बडासौभाग्यहो, पर जब बडे विद्वानआचार्य्यही न करसके तो यह विचार क्याकरसकते हैं ? किंतु इस समय में जब कि हमलोगों से अधिक अन्यान्यजन धर्मप्रचार में सयत्न हैं ।

आर्य्यसमाज के सभ्योंसे विनाकिसी मतका विचारकिये देशोपकारीकर्म्मो मेंमिलना,और निरर्थकवादविवादमें गालागाली नकरना, अथवा और मतानुयायियो केसमान इनमे भी कार्य्यमात्र सबंधरखना, एव परस्पर विरोध छोड देना ही मेरा आशयहै कुछ यह नहीं कि धर्म्मसबधी विवादकरना और नित्यश असभ्यवचनकर मारकूटतकपहुचना । यदि हमारे पण्डितजी विरोधाग्निको समय प्रति समय प्रज्वलितकरने और वाग्वज्रकेप्रहारसेही धर्म की पराकाष्ठा अथवा देश का उपकार सोचते हैं तो हम खेदकरते हैं ।

श्रुति, स्मृति,पुराण विरुद्ध लोगो के भ्रामक मतका निराकरणही यदि पण्डित जी का उद्देश्य है, तो वह उससमयकी निन्दा क्यों करते हैं जिसमें निस्सदेह अनिराकृ-

तिका प्रमाणमाना जाता है ? क्या स्वामीदयानन्द वेद और मन्वादि शास्त्रनहींमानते हम यह नहीं कहते कि वह सब कर्म्म वैदिकही करतेहैं, परनहीं वह वेदके ग्रंथ अनुयायी हैं । अब सकल वेदोक्त कर्म्मके करनेवालेतो चाहे हमारे पंडितजीही हों।

हमारे पंडित महाशय स्वामी दयानन्द को अज्ञ कहते हैं, इसकी विवेचनापाठक जन ही करलें, अर्थात् इन दोनों में कौन विज्ञ, और कौन अज्ञ है, हम से स्पष्ट न कहावें ।

आपका मित्र—
राधाचरण गोस्वामी ।

फिर देखो मित्रविलासपत्र खड १ संख्या १४ ता० १५–१०–१८७७ ई० ।
श्रीयुत मित्रविलास् सपादकेषु ।

महाशय,

आपके पत्र में पण्डित नत्थूराम का एक पत्र छपा है, जिसे देख कर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ हू । कारण यह है कि, हमारे परम मित्र श्रीयुत राधाचरण गोस्वामी, यद्यपि लिखते हैं कि, दयानन्द के 'समाज' से हम देशहितका साधन समझते हैं, परन्तु हमारी दृष्टि में यह उक्त महाशय का केवल भ्रममात्र है, क्योंकि 'आर्यसमाज' वाले केवल देश को भ्रष्ट करने मात्र ही पर बद्धपरिकर हैं । उनकी दृष्टि देशहितैषिता की ओर नहीं है । यदि हम दयानन्दीय, मत के प्रत्यक्षर का खण्डन करें तो, महाभारत सरीका एक ग्रन्थ बन जाय, परंतु हम स्थूल विचार का प्रारम्भ करते है कि, प्रथम उक्त संन्यासी क्या प्रमाण मानता है ? वेद इतिहासमें अमुकामुक स्थल प्रक्षिप्त है, और अमुक प्रमाण है, इसमें क्या प्रमाण है ?

उक्त सन्यासी जब यहा आया था तब मैंने भी उससे आलाप किया था । वह किसी पक्ष पर आरूढ नहीं रहता । जब उससे कुछ उत्तर नही बनता, तब वह हाहाकर हसता है । फिर ऐसे मनुष्यो से कुछ सहायता पायेंगे, यह केवल बुद्धिविपर्य्यास है । अलम्

वृन्दावन] [छबीलेलाल गोस्वामी ।

मित्रविलासपत्र सख्या १५ खड १ ता० २२–१०–१८७७ ई० में संपादक ने लिखा है कि—

इन दिनों लाहौर में दयानन्द सरस्वती आये हुए हैं, और शास्त्रोंके विषय में प्रति संध्या को आर्यसमाज मे व्याख्यान दिया करते हैं । हम आशा रखते हैं कि लवपुरीय पंडित लोग अब इनमे शास्त्रार्थ करके अपनी मनोकामनायें पूर्ण करने को अवश्य चेष्टा करेंगे ।

फिर देखो मित्रविलासपत्र सख्या १६ खण्ड १ तारीख २९।१०।१८७७ ई० में लिखा है ।

श्रीयुक्तमित्रविलाससंपादक महोदयेषु ।

महाशय ।

आपके १५ अक्टूबर के पत्र में हमारे मित्र छबीलेलाल गोस्वामी ने हम पर बडी कृपा की है । और उसका विशेष कारण यह है कि हमने आर्य्यसमाजको देशहितैषी बतलाया । हम उनसे अतीवनम्र होकर जिज्ञासा करते हैं कि क्या आपने कोई आर्य्यसमाज की ऐसी नियमावली देखी है, जिसमें देश के भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा है ? या आपने घर में बैठे २ ही अनुमान मात्रसे सवतत्व निश्चय कर लिया ? और अपने नीचस्वभाव से निष्प्रयोजन सत्पुरुषों की निन्दा मे प्रवृत्त होगये ? हम आपसे ही पूछते हैं कि यदि स्वामी दयानन्द देशहितैषी नहीं हैं तो क्यों भारतवर्ष के चतुर्दिक् मे सन्निमित पर्य्यटन करते हैं ? और लोगों को उसी भांति का उपदेश देते हैं ? अथच नूतननूतन ग्रन्थ प्रचार, पाठशाला स्थापन, समाजनियोजन, सविस्तृतवक्तृता वितरण प्रभृति उन्नतिसाधक उपायों में संयत्न रहते हैं ॥ । क्या स्वामीदयानन्द अनेक अज्ञों के इतने दुराचार और यन्त्रणा सहने पर भी देश हितैषी पदके योग्य नहीं ? वा वह अष्ट प्रहर देशमंगलार्थ अविचलश्रम, और लोकोत्तर उत्साह करने पर भी हो सकै तब देश भक्तिसे मुक्त नहीं ? मित्र महाशय आर्य्यसमाज के तो यह शुद्ध नियम हैं जिन्हे आपने मदृश दो चार दोषैकदर्शी और कलुषितान्तःकरणों के वि * (अपराधक्षमा) आपने अपने पवित्र शरीरसे कितना देशोपकार किया ।

दयानन्दीय मतके प्रत्युत्तर का खण्डन करने को कौन अवरोध करताहै, यदि आपको कुछ शिक्षा और बुद्धि और बल है तो सब छोटे औरबडेपर प्रकट कीजिये

* जहाँ जहाँ ऐसे चिन्ह बनादियेगयेहैं वहाँकाकुछ लेखनष्ट होगयामिला नहीं ।

परन्तु हमें यह सोचकर बड़ा हास्य आता है कि आप प्रथम दयानन्द का मत तो जानते ही नहीं खण्डन क्या धूल कीजियेगा ? ।

दयानन्दीय मत के प्रत्यक्षर का खण्डन तो एक ओर रहा आप अ-ने तर्क से तो खण्डन कर चुके इत्यादि, आपको इतनी शक्ति नहीं है, जैसा कि इरादा करते हो। दयानन्दीय मत के प्रत्येक अक्षर का खण्डन करना, महाभारत के समान ग्रन्थ बनाना अभिमानोक्ति और मूर्खता है। कुछ दयानन्दी का मत स्वतंत्र नहीं है, यह इन पूर्वोक्त ग्रन्थों को ही आश्रय करके उपदेश, वक्तृता इत्यादि करते हैं।

स्वामी दयानन्द उन ग्रन्थोंको प्रमाण मानते हैं, जिन्हे परम्पर निर्विवमानभी आर्यगण समस्वरसे सत्कार सहित स्वीकार करते हैं, और जिनके प्राचीन होनमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं। परन्तु आप उन ग्रन्थोंको न मानते हो तो निस्सन्देह साधुसमाज बहिष्कार्य, नास्तिक और वेदनिन्दक हैं! वेदेतिहास में प्रक्षिप्तस्थलों के विषय जो आप प्रमाण चाहते हैं सो प्रथम यह जानना चाहिये कि वह किस किस स्थलको प्रक्षिप्त बतलाते हैं ?

स्वामी दयानन्द अपने पक्षपर कैसे आरूढ़ हैं, इस बातको प्राय: सब लोग जानते हैं, और विशेषत: उनका क्रियाकलाप ही समुचित साक्षी देता है। पर आपने किसी प्रश्न का उत्तर न देकर वह छुपने लगे, यह कदापि सत्य नहीं। क्यों कि कहाँ उनका देश विदित पाण्डित्य, और कहा आपकी अल्पसार बुद्धि ? किञ्च उनसे जो कुछ देश को सहाय मिला है, और आगे मिलेगा, उसके लिये हम कृतघ्न और हताश नहीं हो सकते, आप चाहें जितना शोक कीजिये।

(राधाचरण गोस्वामी *)

——(०)——

- मित्रविलासपत्र संख्या २७ खण्ड १ तारीख ५ ११, १८७७ ई० में फिर लिखा है।
श्रीयुत श्रीमित्रविलास सम्पादकेषु !

महाशय,

आपके अक्टूबर २६ के पत्र में श्री राधाचरण गोस्वामी कहते हैं कि दयानन्द सरस्वती नूतन ग्रन्थ निर्माण कर भारतवर्ष में फिरते हैं, और उपदेश करते हैं,

* जब तक स्वामी दयानन्द सरस्वती जीवित रहे यह गोस्वामी जी इनके शुभचिंतक रहे, लेकिन स्वामी दयानन्द के मरते ही उनके द्वेषी हो गये, देखो देशहितैषीपत्र संख्या ५ खण्ड ४ पृष्ठ ६६ अगहन सम्वत् १९४०।

समें हमारा विचार यह है कि, उनका देशोपकार किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता, क्योंकि ये मत और उनका उपदेश केवल जगत् को भ्रष्ट करने को ही है । आप ही बताइए क्या मनु आदि स्मृतियों में इन्द्रादि देवताओं का पूजन नहीं लिखा ? अथवा वेदों में नहीं लिखा ? आपकी समझ में भी क्या जीवित माता पिताका ही श्राद्धादि विदित है ? यह सन्यासी अपने "सत्यार्थप्रकाश" में तो लिख चुका है कि, मृत पित्रादिकों का श्राद्ध तर्पण करना तथा देवता पूजन करना मनुष्य को योग्य है । परन्तु अब वही सन्यासी अपने पूर्व कथनको आपही तर्क करके लिखताहै कि मृतकों का श्राद्ध सर्वथा अयोग्य है, और देवता कोई नहीं, विद्वान् मनुष्य ही देवता हैं । इस विषय में सहस्रों श्रुतियें उसकी उक्ति को तिरस्कृत करती हैं । यद्यपि विद्वान् मनुष्य को देवता सदृश कहा है, परन्तु इससे यह नहीं निकलता कि- देवता हैं ही नहीं । भला यदि ऐसा ही है, तो "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" इसश्रुति के अनुसार उसके मत मे परमेश्वर का भी "अमात्र" ही कहना चाहिये ।

यह सन्यासी जिस सायण माधवाचार्य को, कहता है वेद नहीं आता, उसके तुल्य तो शत जन्म पढ़ता रहे, तो भी सम्भावित नहीं उन जैसा हो जावे । दयानन्द वेदों का नाम लेता है, परन्तु निःसन्देह उसको वेदार्थ नहीं आता । कुछ व्याकरण यद्वा तद्वा अवश्य पढ़ा है, किन्तु पंडित हम उसको नहीं कहते । यह तो केवल श्रेष्ठ भोजनाच्छादनवाहनादि अथवा अपनी प्रसिद्धि के वास्ते ही फिरता है । कोई विद्वान् तो उसके मत को स्वीकार नहीं करता, आपके बिना । जो अंग्रेजी पाठक होकर अपने सच्छास्त्रों से सर्वथा विमुख हैं, अथवा मद्य मांसादि राक्षस भोजनों के इच्छुक होकर अपने धर्म को गुप्त प्रकार छोड़ बैठे हैं, ऐसे मनुष्य उसके मत को ग्रहण करते हैं । उसके उपदेश से पहिले ही उनका यही मत है, जब कुछ आश्रय मिला, तो फिर क्या ?

पण्डित जी ! उन यवन की शुद्धार्थ अग्निहोत्रादि कहां वेद मे उल्लिखित है ? श्रीगंगादि तीर्थ और ब्राह्मण देवताओं की निन्दा कहां वेद स्मृति रामायण भारतादि ग्रन्थों में लिखी है ? इससे स्पष्ट है कि वह निराकार और वेदों के ब्राह्मण भागों से विरुद्ध वेदों का अर्थ लोगों को समझाता है । उक्त सन्यासी से शास्त्रार्थ करके उसको सत्पथ पर लाने के हेतु लाहौर तथा अमृतसर में पण्डित

लोगों ने मिलकर सभाएभी कीं और नोटिस भी बांटे, परन्तु वह उनमें से एकमभा में भी न आया। इस जगह भी फुगवाड़ा नगरनिवासी प० गोविंदराम, जो यहाँ की सरकारी पाठशालाके अध्यापक हैं, उन्होंने भी "दयानन्द मतमर्दन" ग्रंथ रचा है। पंडित जी उसको शीघ्र ही मुद्रित कराके प्रकाशित करेंगे। आशा है उसको पढ और घोष कर आप अवश्य मान जावेंगे कि दयानन्दमत वास्तव में ही निषिद्ध है। यदि आपको उसका उत्तर कुछ देना हो और गालीप्रदान पर न आना हो तो हम उसका कोई थोड़ा सा विषय लिख भेजते हैं, न्याय करना विद्वान् लोगों का काम है, यह विद्या किसी पाठशाला में पढ़ाई नहीं जाती जहां से हम भी सीख लेते। गोस्वामी छबीलेलाल सच कहते हैं, कि सब विद्वान् लोग उसके मत का खण्डन करते हैं, देखो। सस्कृतज्ञ अंग्रेजों ने दयानन्द के ग्रन्थ का तिरस्कार ही लिखा, तथा काशी के प्रोफेसर ग्रिफिथ साहब ने तथा इसको छोड़ कलकत्ता और बम्बई के किसी पंडित ने इसके मत को भला नहीं कहा। वहां भी अनेक पुस्तकें इसके खण्डन में छपी हैं। आप उनको देख सकते हैं। दयानन्द शास्त्रार्थ में मध्यस्थ नहीं मानता। यदि आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय करें जिससे वह मध्यस्थ को अंगीकार कर ले तो, उसके साथ हम शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं। और ऐसा करनेसे सत्यासत्य बिना किसी अनायास के प्रकट होजावेगा।

महाराज गोस्वामी जी! अबकलिकाल है। इससे पाखण्ड धर्म बहुत प्रवृत्त होते हैं श्रीमद्भागवत के १० स्कन्ध में लिखा है कि

निशामुखे च खद्योता-स्तमसा भान्तिनग्रहाः।
यथापापेन पाखण्डा न हि वेदा. कलौयुगे ॥१॥

(लवपुर) (आपकामित्र प० नत्थूराम)

फिर देखो मित्रविलासपत्र संख्या२० खण्ड १ तारीख २६-११-१८७७ई०में लिखा है

श्रीयुत मित्रविलास सम्पादकमहोदयेषु।

महामहिम!

आपके २६ अक्टूबर के पत्र में परममित्र श्रीराधाचरण गोस्वामी ने जो कोप प्रकट किया यह उनका सर्वथा अनुचित है हम दयानन्द के मत का खण्डन करते थे, कुछ आपके मत का नहीं। जो आप इतने चिढ़े आप तो खासे वैष्णव कठीमाला ऊर्द्धपुण्ड्रधारी हैं, परन्तु आपके इस चिढ़ने से ज्ञात हुआ कि आप उस

मतमेंनहीं जिसमें आपके पिता हैं क्योंकि देश हित करना सब अच्छा जानतेहैं परन्तु धर्म्म भ्रष्ट होकर देश हित कोई नहीं चाहता यदि आपके लोगों की परिपाटी यही है कि देशहितैषिता को कलङ्क लगाते हैं, आपभी तो देश हित करते हैं फिर राह कागज खराब करते हैं क्यों न हो दयानन्द अकैतव देश भक्त है तुमभी तो निष्कपट देश हित करते हो श्रीमधुसूदन गो० पत्र न देना श्रीसोमनाथ गो० कवित्त न लिख देना यह निष्कपट देशहितैषी लोग करते हैं तुम दयानन्द के मतमें होकर जैसे निष्कपट हो तुमारे आचार्य भी ऐसे निष्कपट देश भक्त होंगे। हमतो नीच बुद्धि हैं पर आपतो गंभीरबुद्धि हैं जो सत्पुरुषों की निन्दा नहीं करते कौन जाने आप किस वश में हैं यह सन्देश होगा आपके दादा जीभी दयानन्द के नामसे कर्णमूल्य के राधे राधे करतेहैं न जाने उनको तुम आर्य्य धर्म्म क्यों नहीं बताते हमतो खल "आभास" उनके उदाहरणहैं पर आप तो घरकेपूतक्वारेडोलें पारोसीकेफेरे" इसका उदाहरणबनते हैं, ॥ दोहा ॥ पण्डितजन का धरमरम जानत हैं मतधीर ॥ जैसे बाझ न जानती तन प्रसूत की पीर ॥ १ ॥ हमने तो ग्रन्थ देखेभी नहीं पर आपने तो सब पढे हैं इत्यादि० ।

(वृन्दावन) (श्रीछबीलेलाल गोस्वामी)

सम्वत् १९३४ के भादों मास में स्वामी जी की पंचमहायज्ञविधि भावार्थ सन्ध्योपासनादि दूसरीवार काशीलाजरस प्रेस में मुद्रित हुई, और स्वामी जी रावल पिंडीमें पधारे। और कलकत्ता संस्कृत कालिज के बड़े अध्यक्ष पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न नामी विद्वान ने जो स्वामीजीकी वेद भाष्यभूमिकादि पुस्तकोंपर तर्क किये थे उनके उत्तर में "भ्रांतिनिवारण" नाम पुस्तक लिखो जिसके प्रारम्भ का दिन कार्तिक शुक्ला ७ सम्वत् १९३४ है।

रावलपिंडी रहते रहते ही वेदभाष्य भूमिका पूरी हो गई तब स्वामी जी ने मार्गशीर्ष शुक्ला०६ भौमवार से ऋग्वेद भाष्यका आरम्भ किया जैसा कि इन निम्न लिखित श्लोक से विदित होता है।

विद्यानन्दं समवतिचतुर्वेदसमस्ता बनाया
संपूर्ण्येशं निगमनिलय सद्गुणस्याथकुर्वे ।
वेदत्रयङ्केविधुयुतसरेमार्गशुक्लेऽङ्कभौमे च-

ग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम्॥१॥*

स्वामी जी रावलपिंडी में समाज स्थापन करके वजीराबाद में चले गये॥ पौष शुक्ला १३ बृहस्पतिवार से यजुर्वेदभाष्य का आरम्भ हुआ था। देखो श्लोक,

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणीश्वरस्तं
नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यःसुबोधाय च॥ ऋग्वे-
दस्य विधाय वेगुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं भा-
ष्यं काम्यमथोक्रियामययजुर्वेदस्यभाष्यं मया ॥१॥
चतुरक्षयङ्कैरङ्कैरवनिसहिते विक्रमसरे। शुक्लेपौषे
मासेसितदलभविश्वोन्मिततिथौ ॥ गुरोर्वारे
प्रातःप्रतिपदमतिष्टं सुविदुषां। प्रमाणैर्निबद्धं
शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥ २ ॥

वेदभाष्यभूमिका अंक ११ जो माघ सम्वत् १९३४ में प्रकाशित हुई उसके टाईटिल पेजपर निम्नलिखित विज्ञापन मुद्रित कराये थे।

॥ विज्ञापनपत्र पहिला ॥

सब सज्जनोंको विदित हो कि आगे भूमिका केअंकनम्बर १२.१३ १४ छपनेको शेषरहेहैं, सो फाल्गुण चैत्र और वैशाखमें छपचुकेंगे। इसकेआगे ज्येष्ठमहीनेसेलेकर अंक१ऋग्वेद और अंक १यजुर्वेदके मंत्र भाग के छपा करेंगे, इसमें एकएक अंकका १ वर्षमें डाक महसूलसहित रुपये ४)रहेंगे, जो एकऋग्वेद काअङ्कलियाचाहेंसो४) रुपये लाजरसकम्पनी काशी वा स्वामीदयानन्द सरस्वतीजीके पास भेजदेवें। और जोकोई यजुर्वेदकाही अंकलिया चाहें सो ४) गतवर्ष केऔर ४) अगले वर्षके भेजदेवें। उनको आरंभसेआजपर्य्यन्त और विक्रम सं० १९३५के माघपर्य्यन्त प्रतिमास एकएकअंक मिलताजायगा, और जोदोनो वेद को लिया चाहें वे ८) रुपये भेजदेवें। परन्तु जो ऋग्वेदका अंक लेते हैं और दूसरे यजुर्वेदकाभी भूमिकासहितलिया चाहें, वे १२) रुपये आगेके वर्ष के भेजदेवें ऐसे ही जो दो अंक वेदके नवीनग्राहक हों वेभी ८) रुपयेदो

* ऋग्वेद भाष्यके छपने का आरम्भ सम्वत् १९३५ के आश्विनमास से हुआ था।

नोंलन के भेजें। और जो भूमिका पकनथा मंत्रभाग दोनोंलेवें वे ११) रुपये भेजदेवें। और जो भूमिकासहित दोनों भाग लिया चाहें वे दोनों वर्षके १६) रुपयेभेजें। और जो केवल भूमिकामात्रलिया चाहें वे ४॥०) देकर लेवें, ऋग्वेदके १० सूक्तपर्य्यन्त और यजुर्वेदके एक अध्याय पर्य्यन्त का भाष्यसम्वत् १९३४ महीनामाघकृष्ण १३ गुरुवार तक बनचुका है और भूमिकाभी बनकरतय्यार होगई आगेप्रति दिन मंत्रभाग बनाया जाता है।

॥ विज्ञापन दूसरा ॥

जिन ग्राहकों ने पुस्तक लेकर अबतक दाम नहीं भेजे हैं उनको उचित है कि शीघ्र भेज देवें नहीं तो उनके पास दाम लेनेके लिये पत्रवाला मनुष्य भेजके लियाजायगा। और उसको मार्ग खर्च भी उनसे लियाजायगा इससे उचित है कि वे शीघ्र भेजदेवें। आगे जैसा कागज भाष्यमें अब लगायाजाता है। इससे भी उत्तम मंत्रभाष्यमें लगाया जायगा।

ऋग्वेदभाष्यभूमिका के पृष्ठ ३५७ में स्वामीजी ने लिखा है कितर्पणादिकर्म विद्यमान अर्थात् जीते हुए जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता मरे हुओं में नहीं,, *

फर्रुखाबादसे गुजरात होतेहुएस्वामीजी मुल्तान पहुंचे। और चैत्रकेमहीनेमें निम्नलिखित विज्ञापन छपवाकर वेदभाष्यभूमिका अंक१२ केटाइटिल पेजपर प्रकाशितकराया।

॥ विज्ञापन पत्र ॥

एक विज्ञापन जोगतमासके अंक ११ में मंत्रभाष्यके नियम विषयमेंदियाग-

* स्वामीजीने यह लेख प्रथम बार के छपे 'सत्यार्थ प्रकाश' पृष्ठ४२ के प्रतिकूल प्रकाशित किया है और पाठकगणको स्मरणरखनाचाहिये कि स्वामीजी ने प्रथमबार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश" में मरे पितृकेश्राद्धकरने का जो उपदेशदिया था उसको छापने वालों की भूलबताने और इसके सिद्ध करने का साहस कर अब से पहिले एक विज्ञापन बना बैठे थे। और उसका कुछ सारांश तो वेदभाष्यभूमिका अंक११ पृष्ठ २५२ पर और पूरा लेख ऋग्वेद भाष्य अंक २ के टाइटिल पेजपर मुद्रित करा याथा। और यह अंक वेदका मासआश्विन सम्वत् १९३५ में प्रकाशित हुआ था। परन्तु पञ्जाबनिवासी प्रतिकूल मनुष्यों को स्वामीजीने जुबानी कहना इस विज्ञापन का प्रारम्भ करदिया था जिसका भावार्थ पंडित नत्थूरामजी के पत्र में झलक रहा है असली विज्ञापन अपने उचित स्थानपर प्रकाशित कियाजायगा।

या था उसमें कुछ भाष्यभूमिका के नियमथे । परन्तु उससे बहुधा सज्जनोंको भ्रम होकर वे लोग इसभाष्यकारके आशयसे विरुद्ध कुछका कुछहीसमझगयेथे । अर्थात् यह जाना कियजुर्वेद की भूमिका पृथक् दूसरी होगी, इसशंकाके निवारणकरनेके अर्थ यहविज्ञापन फिर दिया जाता है, कि भूमिकाचारोवेदोंकी एक हीहै, जोकिछप कर १२ अंकों में ग्राहकों के पास पहुँचचुकी और शेषरहीहुई आगेवैशाखतक छ पकर सम्पूर्णहोजायगी । इसएक भूमिका की कदाचित्त कोई नवीन वा पुरानाग्राहक फिरलियाचाहे अपने किसी दूसरेविचारसेअथवा दोनोंवेदों में अलग अलगलगानेको सो उनके लिये मूल्यका नियमआगे को बदलदियागया है, दूसरी भूमिका नवीन। कोई नहीं बनती है, शेषनियम जैसे अक ११ के विज्ञापन में छपे हैं वैसेही ठीकठीक स मझलेना ।

सम्वत् १९३४ में लाहौर, अमृतसर, लुधियाना, शाहजहांपुर आदिकमें आर्यस माज स्थापितहोगये, पजाबदेशमेंस्वामीजी पूरे प्रसिद्धहोगये । वेदभाष्यकेसहायक ग्र न्थदानपुरुषभी मिलगये । चारोवेदभाष्य की भूमिका लाजरसकम्पनीप्रेस बनारस में छपनी प्रारम्भहोकर ११ अक मासिकपत्रके तौरपर प्रकाशितभी होगये, और इसी पजाबदेश की यात्रा करते समय आठदश दिन स्वामीजी मेरठ में भी रहगयेथे ।

अब स्वामीदयानन्दसरस्वतीजी के स्वकपोलकल्पित वेदभाष्य का नमूना और उसपर वर्तमानसमय के विद्वानों की जोकुछसम्मति है कुछथोड़ीसी नीचेप्रकाशकर ते हैं सो प्रथम हम स्वामीदयानन्दसरस्वती के स्वकपोलकल्पित वेदों के अर्थभाष्य का नमूने के तौरपर कुछभाग उनके ऋग्वेदसे उद्धृत करते हैं ।

॥ देखोऋग्वेदभाष्यका पृष्ठ ४७ ॥

अश्विनायज्वरीरिषोद्रवत्पाणी शुभस्पती ॥ पुरुभुजाचनस्यतम् ॥

स्वामीजी का किया हुआ इसमंत्र का कल्पित अर्थ इस प्रकार है,

हे विद्याके चाहनेवाले (मनुष्यो तुमलोग द्रवत्पाणी) शीघ्रवेगकानिमित्त पदार्थविद्या के व्यवहारसिद्धकरनेमें उत्तमहेतु (शुभस्पती) शुभगुणों के प्रकाशको पालने और (पुरुभुजा) अनेकखानेपीनेके पदार्थों के देनेमें उत्तम हेतु (अश्विना) अर्थात् जल औरअग्नि तथा (यज्वरी) शिल्पविद्या का सबधकरानेवाली (इष)

अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देने वाली कारीगरीकी क्रियाओं को (घन॰स्यन) अश्वके समान अति प्रीतिसे सेवनकरो ।

॥ इसपर हमारी शंका और तर्क

वेदकाकर्त्ता ईश्वर है, सो ईश्वरविना ऐसा उपदेश सामाजिक मनुष्यों को क्योंकर मिलसकता है, और ऊपर लिखेमन्त्र का और उसकेउसअर्थका जो (स्वामी जी का किया हुआ ज्यों का त्यों हमने) मंत्र के नीचे लिखदिया है । जो कुछ अंतर है, बुद्धिमानो से छुपाहुआ नहीं है ॥ फिर देखो !

॥ ऋग्वेदभाष्यका पृष्ठ ४९ ॥

अश्विनापुरुदंससानराशवीरया धिया ॥
धिष्ण्यावनतंगिर. २

स्वामीजी का किया हुआ इसमंत्रका अर्थइसप्रकार निम्नलिखित है ।

हेविद्वानो तुम लोग (पुरुदससा) जिनसेशिल्पविद्या के लिये अनेककर्म सिद्धहोतेहैं (धिष्ण्या) जोकिसवारियों में वेगादिकों की तीव्रताके उत्पन्न करनेप्रबल (नरा) उस विद्या के फल को देनेवाले और (शरीरया) वेगदेनेवाली (धिया) क्रिया से कारीगरी में युक्तकरने योग्य अग्नि और जल हैं वे (गिर) शिल्पविद्या गुणोंकी बतानेवाली वाणियो को (वनत) सेवनकरनेवाले हैं, इसलिये इनसे अच्छी प्रकार उपकार लेते रहो ।

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

वैदिकपरमेश्वर एकमंत्रमें अग्नि जल वायु आदिकेसहारे से शिल्पविद्याका उपदेश करके सतुष्ट नहीं हुआ जो बार बार इसी बात को दुहरायाजाता है असलमें इनमंत्रों में पूर्व ऋषियो ने केवल अग्नि, जल, वायुकोभी देवतासमझकर उनसे प्रार्थना की थी । परन्तु स्वामीजीने अग्नि और जलको शिल्पविद्याके सग मिश्रतकर दिया । परन्तु कहलावतप्रसिद्ध है झूठके जड नहीं यह नसमझेकि इसमंत्र में जब परमेश्वर हे विद्वानो ! ऐसा कहताहै तोयहसिद्धहोताहैकि जब ईश्वरने यहवेदरचे तब विद्वानमनुष्य विद्यमानथे जिनकोपरमेश्वरने " हे विद्वानो" ऐसा कहा, परन्तु दूसरी ओर स्वामीजीका यह उपदेश है कि सृष्टिकी आदिमें मनुष्यमात्र केवल अज्ञानी थ

परहीथे, उस समय ईश्वरने वेदरचेथे, और इसमंत्रसे पहिलेपहिले दसबारहमंत्र जो परमेश्वर सुनाचुकाथा उनके सुननेसे कोई विद्वान कहला नहीं सकताथा ॥फिरदेखो॥

ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ-२०३ ।

देवयंतो यथामतिमच्छाविदद्व सुगिरः ॥

महामनूषतश्रुतम् ६

स्वामीजी का कियाहुआ इसमन्त्रकाअर्थ निम्नलिखित है ।

जैसे (देवयन्त) सब विज्ञानयुक्त (गिरः) विद्वानमनुष्य (विदद्वसुम्) सुखकारक पदार्थ विद्यायुक्त (महाम्) अत्यंतबडी (मतिम्) बुद्धि (श्रुतम्) सबशास्त्रोंके श्रवण और कथनको (अच्छा) अच्छीप्रकार (अनूषत) प्रकाशकरते हैं, वैसे ही अच्छीप्रकार साधनकरने से वायुभी शिल्प अर्थात् सबकारीगरी को (अनूषत) सिद्धकरते हैं ।

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

अभीतो परमेश्वर ने केवल थोडेहीमन्त्र चारऋषियोंकोसुनाये थे यहइतनेविद्वान् सर्वशास्त्रोंके कथन तथाप्रकाशकरने वाले और कहांसेउत्पन्न होगये ? और "सब शास्त्र" ऋग्वेदकेयजैसेहीमंत्र प्रकटहोते ही कहां सेआगये ? फिरदेखो ।

॥ ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ १२४ ॥

ऐन्द्रसानसिंरयिंसजित्वानंसदासहम् ॥

वर्षिष्ठमूतयेभर ॥ १ ॥

स्वामीजीकाकियाहुआ इसमंत्रका अर्थ निम्नलिखित हैं ।

हे (इन्द्र) परमेश्वर आपकृपाकरके हमारी (ऊतये) रक्षापुष्टि और सबसुखोंकीप्राप्ति केलिये (वर्षिष्ठ) जोअच्छीप्रकार वृद्धिकरनेवाला (सानसि) निरन्तर सेवनेकेयोग्य (सदासह) दुष्टशत्रु तथाहानि वा दुःखोंकेसहनेकामुख्यहेतु (सजित्वान) और तुल्यशत्रुओंका जितानेवाला (रयि) धन है उसको (आभर) अच्छीप्रकार दीजिये ।

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

धर्मोन्नति और संसारके सम्पूर्णसुखदेनेमें द्रव्य (धन) भी मुख्यहै इसलिये स्वामीजी ने वेदपरमेश्वरकेमुखसेभी धनकीप्रशंसा और प्रार्थनाकरादी क्यों नहो रुपया

ऐसी होवस्तु है, जिसकी कीर्तिमालिकाकेदिन भारतवर्ष में प्रचुरपूजनहोता है, धन्य महाराज, धन्य!धन्य!! धन्य!!! ॥फिरदेखो॥

॥ ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ १२६ ॥

इन्द्रत्वोतासआवयवज्र घनाददीमहि॥
जयेमसंयुधिस्पृध॥३॥

स्वामीजीका किया हुआ इसमंत्रका अर्थ निम्नलिखित है ॥

हे (इन्द्र) अनन्तबलवान ईश्वर (त्वोतास) आपके प्रकाश से रक्षा आदि और बलको प्राप्त हुए (वय) हम लोग धार्मिक और शूरवीर होकर अपने विजय के लिये (वज्र) शत्रुओं के बलका नाश करने का हेतु आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और (घना) श्रेष्ठ शस्त्रों का समूह जिनको कि भाषा में 'तोप' 'बन्दूक' 'तलवार और धनुष्यबाण आदि करके प्रसिद्ध कहते हैं, जो युद्ध की सिद्धि में हेतु हैं उनको (आददीमहि) ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार हम लोग आपके बलका आश्रय और सेना की पूर्ण सामग्री करके (स्पृध) ईर्षा करने वाले शत्रुओं को (युधि) संग्राम में (जयम) जीतें।

॥ इसपर हमारी शंका और तर्क ॥

स्वामी जी धन की इच्छा इस लिये करते हैं कि उससे घोड़ों के रिसाले हाथियों के तोपखाने ऊंटों की फौज (सेना) भरतीकर शत्रुओं पर विजय पावे। इसी अभिप्राय से उक्तमंत्र में तोप, बन्दूक तलवार और धनुषबाण के लिये प्रार्थना की गई है।

सृष्टि की आदि में सचमुच तोप और बन्दूक अवश्य बनने लग गई होंगी। नहीं तो मंत्र देते समय ईश्वर ने मंत्रों के अनुसार आपही तोप बन्दूक आदि कभी बना कर और आपधारण करके निजप्रिय चारो ऋषियों को उनके स्वरूप का दर्शन करा बनाने की क्रिया भी अवश्य बतलादीहोगी। और आश्चर्य नहीं जो कुछ दारू भी बना कर उनका भरना चलानाभी बता दिया हो, और 'दनादन' तोप चला कुछ मनुष्यों को वध करके भी दिखलाया हो कि इस भांति शस्त्र चलाकर शत्रुओं को मारा करते हैं।

आहा ! वे परमेश्वर की अपने हाथ की बनाई तोप आज कल की योरप अमरीका चीन आदिक की बनी हुई तोपों से कैसी विलक्षण होंगी, हमारा विचार है कि पर्वतों की गुफा आदिक में खोज करावेंगे और यदि परमेश्वर की बनाई हुई कोई भी तोप मिल गई तो स्वामी जी का पक्ष हर्ष सहित ग्रहण करेंगे।

क्या आजकल के अनेक मूर्ख मनुष्य शीतला, वाराही, सैद, शाली आदिक से उपरोक्त प्रार्थना नहीं करते, परन्तु क्या उनकी प्रार्थना को कोई ईश्वर का वचन कह सकता है, ? बिल्कुल भूलकर भी नहीं।

प्यारे पाठकगण ! यह वेद मंत्रों का कल्पित अर्थ बनाकर स्वामी जी ने अपनी इन्द्रजाल विद्याका क्या ही उत्तम नमूना दिखलाया है, यदि यही मान लिया जावे कि प्रथम समय के आचार्यों का किया हुआ वेद भाष्य तो असंभव और स्वामी जी का किया हुआ यथार्थ है तो उस सर्व शक्तिमान परमेश्वरकी अपार महिमा और निर्मल गुणों को जो कलङ्क लगता है वह बुद्धिमानों से कुछ छिपा हुआ नहीं है।

यूरोपदेश के सुप्रसिद्ध विद्वान महामान्य डाक्टर मोक्समुलर ने जो चिट्ठी बम्बई के मिस्टर मलाबरी के नाम भेजी और तारीख २ फर्वरी सन् १८८२ ई० में यह चिट्ठी एक्सफोर्ड से रवाना हुई थी, उसमें और २ समाचार के अतिरिक्त यह भी लिखा था कि *

"मैं आपको दो प्रकार के उपद्रवों से बचाया चाहता हूं"

प्रथम यह कि पिछले समय से जो सनातन धर्म्म प्रचलित है उसका आदर करना या उससे घृणा करना जैसा कि आज कल के बहुधा उन तरुण हिन्दुस्तानियों का हाल है जो आधे यूरोपियन बन गये हैं।

द्वितीय धर्म्म और धर्म्म ग्रन्थों का आदर सत्कार भी अधिकता सहित करना अथवा उनके अर्थ बदलकर ऐसा अर्थ सिद्ध करना जिसका उनके कर्ता को स्वप्न में भी ज्ञान न था। और जिसका उदाहरण अत्यन्त हानिकारक दयानन्द सरस्वती का किया हुआ वेदभाष्य विद्यमान है।

वेदों का एक प्राचीन और ऐसा मनोहर इतिहास स्वीकारकरो कि जिसमें

* देखो उर्दू धर्म जीवनपत्र लाहौर तारीख ६ मई सन् १८८८ ईसवी नम्बर १८ जिल्द ६ पृष्ठ १४० में।

विषय शृङ्खलित हैं जो प्राचीन समय के सम दृष्टि और भोले भाले मनुष्यों के आचरणों से मिलते हैं, और फिर तुम उनकी यथार्थ प्रशंसा कर सकोगे। और उनमें विशेष कर उपनिषदों का पठन पाठन वर्तमान समयके लिये प्रचलित रख सकोगे। परन्तु इसके व्यतिरिक्त यदि इसमें से धुआ के अंजन तार, तोप, बन्दूक आदिक अंग्रेजी शिल्प का भावार्थ लोगे तो उनकी विख्यातता और सत्यता का नाश करोगे और ऐसा करने से इतिहास की वह मथी खण्डित होती है, जिसके द्वारा भूतकाल का सम्बन्ध वर्तमान से हो रहा है, भूतको सत्य समझ कर स्वीकार करो और उसका खोज करो, समझने का परिश्रम उठाओ जिससे भविष्य के पहचानने में अधिक कठिनाई न पड़े।

स्वामीदयानन्द सरस्वतीके शिष्य गोपाल शास्त्रीजीने जो दयानन्द दिग्विजयार्क पुस्तक छपवाई उसके द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ४० में यह लिखा है।

अब वेदों के नित्यत्व विचार के उपरान्त वेदों में कौन २ विषय किस २ प्रकार के हैं इसका विचार किया जाता है वेदों में अवयवरूप विषय तो अनेक हैं परन्तु उनमें चार मुख्य हैं (१) एक विज्ञान अर्थात् सब पदार्थों को यथार्थ जानना, (२) दूसरा कर्म, (३) उपासना, और (४) ज्ञान है विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से लेकर तृण पर्य्यन्त पदार्थों का साक्षाद्बोध का होना उनसे यथावत् उपयोग का करना इससे यही विषय इन चारों में भी प्रधान है, क्योंकि इसी में वेदों का मुख्य तात्पर्य्य है सो भी दो प्रकार का है, एक तो परमेश्वर का यथावत् ज्ञान और उसकी आज्ञा का बराबर पालन करना और दूसरा यह।कि उसके रचे हुए सब पदार्थों के गुणों को यथावत् विचार के उनसे कार्य्य सिद्धि करना अर्थात् ईश्वर ने कौन पदार्थ किस २ प्रयोजन के लिए रचे हैं, और इन दोनों में से भी ईश्वर का जो प्रतिपादन है सो ही प्रधान है इसमें आगे कठवल्ली आदि के प्रमाण लिखते हैं, [सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ कठोपनी० वल्ली० २ मन्त्र १५ ॥] परमपद अर्थात् उसका नाम मोक्ष है, जिसमें परब्रह्म को प्राप्त होके सदा सुख में ही रहता जो सब आनन्दों से युक्त सब दु:खों से रहित और सर्वशक्तिमान

परब्रह्म है, जिसके नाम (ॐ) आदि हैं, उसी में सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है, इसमें योगसूत्र का भी प्रमाण है (तस्यवाचक प्रणवः योगशास्त्रे । अ० १ पा० १ सू० २७) परमेश्वरही का ओंकार नाम है, (ॐ खंब्रह्म यजु० अ० ४०) तथा (ओमितिब्रह्मतैत्तिरीयारण्यके । प्र० ७ अनु० ८॥) ओं और ख ये दोनों ब्रह्म के नाम हैं और उसी की प्राप्ति कराने में सब वेद प्रवृत्त हो रहे हैं, जिसकी प्राप्ति के आगे किसी पदार्थ की प्राप्ति उत्तम नहीं है क्योंकि जगत् का वर्णन दृष्टान्त और उपयोगादि का करना ये सब परब्रह्म को ही प्रकाशित करते हैं तथा सत्यधर्मके अनुष्ठान जिनको तप कहते हैं वे भी परमेश्वरकोही प्राप्ति के लिये हैं ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम के सत्याचरण रूप जो कर्म हैं वे भी परमेश्वर की ही प्राप्ति कराने के लिए हैं जिस ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छा करके विद्वान् लोग प्रयत्न और उसी का उपदेश भी करते हैं । नचिकेता और यम इन दोनों का परस्पर यह संवाद है कि हेनचिकेतः जो अवश्य प्राप्ति करने के योग्य परब्रह्म है उसी का मैं तेरे लिये संक्षेप से उपदेश करता हूं और यहां यह भी जानना उचित है कि अलंकार रूप कथा से नचिकेता नाम से जीव और यम से अंतर्यामी परमात्मा को समझना चाहिए (तत्रापरा ऋग्वेदोयजुर्वेदःसामवेदोऽथर्ववेद शिक्षाकल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दोज्योतिषमिति । अथपरायया तदक्षरमधिगम्यते॥ यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रंतदपाणिपादंनित्यं विभुंसर्वगतंसुसूक्ष्मंतदव्ययं यद्भूतयोनिंपरिपश्यन्ति धीराः ॥ २ ॥

मुण्डके १ खण्डे १ म० ५ । ६ ॥] वेदों में दो विद्या हैं एक अपरा दूसरी परा इनमें अपरा यह है कि जिससे पृथ्वी और तृण से लेकर प्रकृति पर्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञानसे ठीक २ कार्य सिद्ध करना होता है, और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान ब्रह्म की यथावत प्राप्ति होती है, यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल परा विद्या है । और मैं इस विषय में ऋग्वेद का प्रमाण है कि (तद्विष्णोः परमंपदंसदापश्यन्तिसूरयः । दिवीवचक्षुराततम् ॥ १ ॥ ऋग्वेदे । अष्टके १ अध्याये २ वर्गे ७ मन्त्र ५ ॥ इ स्यायमर्थः) (विष्णु) अर्थात् व्यापक जो परमेश्वर है उसका (परम) अत्यन्त उत्तम आनन्द स्वरूप (पद) जो प्राप्ति होने के योग्य अर्थात् जिसका नाम मो

उसको (सूरय) विद्वान् लोग (सदापश्यन्ति) सब काल में देखते हैं वह
ता है कि सब में व्याप्त हो रहा है, और उसमें देशकाल और वस्तु का भेद नहीं
अर्थात् उस देश मे है, और इस देश में नहीं तथा उस काल में था और इस
ल म नहीं उस वस्तु में है, और इस वस्तु में नही इसी कारण से वह पद सब
गह मे सब को प्राप्त होता है क्योंकि वह ब्रह्म सब ठिकाने परिपूर्ण है, इसमे
दृष्टान्त है कि (दिवीवचक्षुराततम) जैसे सूर्य्य का प्रकाश आवर्ण रहित
आकाश में व्याप्त होता है और जैसे उस प्रकाश मे नेत्र की दृष्टि व्याप्त होती है
सी प्रकार परब्रह्म पद भी स्वय प्रकाश सर्वत्र व्याप्तवान् हो रहा है उस पद की
प्ति से कोई भी प्राप्ति उत्तम नहीं है, इस लिए चारो वेद उसी की प्राप्ति कराने के
ए विशेष करके प्रतिपादन कर रहे हैं इस विषय में वेदांतशास्त्र म व्यास मुनि के
सूत्र का भी प्रमाण है (ततुसमन्वयात्) सब वेद वाक्यो में ब्रह्म का ही विशेष
र के प्रतिपादन है कहीं २ साक्षात् रूप और कहीं २ परपरा से इसी कारण से
ह परब्रह्म वेदों का परमअर्थ है, तथा इस विषय में यजुर्वेद का भी प्रमाण है कि
यस्मान्नजा०) जिस परब्रह्म मे (अन्य) दूसरा कोई भी (पर) उत्तमपदार्थ
जात) प्रकट (नास्ति) अर्थात नहीं है (यआविवेशभु०) जो सब विश्व अर्था-
सब जगह मे व्याप्त हो रहा है, (प्रजापतिप्र०) वही सब जगत् का पालन-
र्त्ता और अध्यक्ष है जिसने (त्रीणिज्योतीᳪषी) अग्नि सूर्य और बिजली इन तीन
योतियों को प्रजा के प्रकाश होने के लिए (सचेत) रच के सयुक्त किया है और
जिसका नाम (षोडशी) है अर्थात् (१) ईक्षण जो यथार्थ विचार (२) प्राण जो कि
सब विश्वका धारण करनेवाला (३) श्रद्धा सत्यमें विश्वास (४) आकाश (५)वायु(६)अग्नि
(७) जल (८) पृथ्वी (९) इंद्रिय (१०) मन अर्थात् ज्ञान (११) अन्न (१२)
वीर्य्य अर्थात् बल और पराक्रम (१३) तप अर्थात धर्मानुष्ठान सत्याचार
(१४) मन्त्र अर्थात् वेदविद्या (१५) कर्म अर्थात् सबचेष्टा (१६) नाम अर्थात दृ-
श्य और अदृश्य पदार्थों की सज्ञा येही सोलहकला कहाती हैं, ये सर्वईश्वर होवेची-
नमें हैं इससे उसको षोडशी कहते हैं, इनषोडशकलाओंका प्रतिपादन प्रश्नोपनिषद्के
छठेप्रश्नमें लिखाहै इसमेंपरमेश्वरही वेदोंका मुख्यअर्थ है, और उससेपृथक् जोयह
जगत है सोवेदों का गूढ अर्थ है और इनदोनोंसे प्रधानका ही ग्रहण होता है
इस से क्या आया कि वेदों कामुख्यतात्पर्य्य परमेश्वरहीके प्राप्तिकराने और प्रतिपाद-

में वेदो के कर्ता त्रिकालदर्शी ईश्वर ने भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालोके व्यवहारों को यथावत् जान के कहा है कि वेदों को पढ के जो विद्वान् हो चुके हैं, वा जो पढ़ते हैं वे प्राचीन और नवीन ऋषि लोग मेरी स्तुति करें, तथा ऋषिनाम "मंत्र" "प्राण" और तर्क का भी है, इससे ही मेरी स्तुति करनी योग्य है, इसी अपेनासे ईश्वर ने इस मन्त्र का प्रयोग किया है, इससे वेदों का सनातनपन और ईश्वरपन तो सिद्ध होता है किंतु उन हेतुओं से वेदो का नवीन होना किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता। इसी हेतु से डाक्टर मोक्षमूलर साहब का कहना ठीक नहीं।

इसमें विचारना चाहिये कि वेदों के अर्थ को यथावत् बिना विचारे उनके अर्थ मे किसी मनुष्य को हठ से साहस करना उचित नही क्योंकि जो वेद सब विद्याओं से युक्त हैं अर्थात् उनमे जितने मन्त्र और पद हैं वे सब सम्पूर्ण सत्य विद्याओं के प्रकाश करने वाले हैं, और ईश्वर ने वेदोंका व्याख्यान भी वेदो से ही कर रक्खा है क्योंकि उनके शब्द धात्वर्थ के साथ योग रखते हैं इसमे निरुक्त का भी प्रमाण है जैसा कि यास्क मुनि ने कहा है (तत्प्रकृतीत०) इत्यादि वेदों के व्याख्यान करने के विषय में ऐसा समझना कि जब तक सत्य प्रमाण सुतर्क वेदों के शब्दो का पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरण आदि वेदाङ्गों, शतपथ आदि पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों और शास्त्रान्तरों का यथावत् बोध न हो और परमेश्वर का अनुग्रह उत्तम विद्वानों की शिक्षा उनके संगसे पक्षपात छोड के आत्मा की शुद्धि न हो तथा महर्षि लोगों के किये व्याख्यानों को न देखें तब तक वेदों के अर्थ का यथा वत् प्रकाश मनुष्यों के हृदय मे नहीं होता। इसलिए सब आर्य्य विद्वानोका सिद्धान्त है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे युक्त जो तर्क है वही मनुष्योंके लिए ऋषिहै इससे यह सिद्ध होता है कि जो सायणाचार्य्य और महीधरादि अल्प बुद्धि लोगोंके व्याख्यानो को देख के आजकल के आर्य्यावर्त और यूरुप देश के निवासी लोग जो वेदों के ऊपर अपनी २ देश भाषाओं मे व्याख्यान करते हैं वे ठीक २ नहीं हैं और उन अनर्थयुक्त व्याख्यानों के मानने से मनुष्यो को अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है इससे बुद्धिमानो को उन व्याख्यानो का प्रमाण करना योग्य नहीं तर्क का नाम ऋषि होने से सब आर्य्य लोगों का सिद्धान्त है कि सब कालो में अग्नि जो परमेश्वर वही उपासना करने के योग्य है।

तथा उसी दिग्विजयके पृष्ठ २४ पर दयानन्दजी वेदों की उत्पत्तिका समय इस प्रकार लिखते हैं कि—

एक वृन्द छियानवे करोड आठ लाख बावन हजार नौ सो छिहत्तर अर्थात् (१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं और यह सम्वत् १९३३ सतहत्तरवां वर्ष वर्त रहा है।

(प्रश्न) यह कैसे निश्चय हो कि इतने ही वर्ष वेद और जगत् की उत्पत्ति मे बीत गए हैं ?

(उत्तर) यह जो वर्तमान सृष्टि है इसमे सातवें (७) वैवस्वत मनु वर्तमान हैं, इनसे पूर्व छ मन्वन्तर हो चुके हैं, स्वायम्भुव (१) स्वारोचिष (२) उत्तम (३) तामस (४) रैवत (५) चाक्षुष (६) ये छ तो बीत गये हैं, और सातवा वैवस्वत वर्त रहा है, और सावर्णि आदि ७ मन्वन्तर आगे आवेंगे ये सब मिल के १४ मन्वन्तर होते हैं, और इकहत्तर चतुर्युगियों का नाम मन्वन्तर रक्खा गया है। और ४३२०००० वर्ष को एक चतुर्युगी होती है, इस संख्या को प्रथम ७१ से फिर ६ से गुणा करने से जो हो उसमें २७ चौकडी और १ सत्ययुग १ त्रेता १ द्वापर और चलते हुए कलियुग की गई वर्षों को जोड देने से वेद और सृष्टि की उत्पत्ति का ठीक काल निकल आवेगा और ४३२००० वर्ष का कलि इससे दूना द्वापर तिगुना त्रेता चौगुना सत्ययुग होता है, और विक्रमी स० १९३७ के समाप्ति पर ४९८२ वर्ष हाल के अर्थात् २८ वें कलि की गुजर चुकी क्योंकि यह दिग्वजय स० १९३८ मे बना है इससे जो अध्यापक विलसन साहब और अध्यापक मोक्षमूलर साहब आदि यूरोपखण्ड के वासी विद्वानों ने बात कही है कि वेद मनुष्य के रचे हैं किंतु श्रुति नहीं हैं उनकी यह बात ठीक नहीं है, और दूसरी यह कि कोई कहता है (२४००) चौबीस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए कोई (२९००) उनतीस सौ वर्ष कोई (३०००) तीन हजार वर्ष और कोई कहता है (३१००) इकतीस सौ वर्ष वेदों को उत्पन्न हुए बीते हैं, उनकी यह बात भी झूठी है, क्योंकि उन लोगों ने हम आर्य्य लोगों की नित्यप्रति की दिनचर्या का लेख और सकल्प पठन विद्या को भी यथावत् न सुना और न विचारा है नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उनको नहीं होता इससे यह अ-

वश्य जानना चाहिए कि वेदो की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है, और जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदो और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं इससे वृथा सिद्ध हुआ कि जिन २ ने अपनी २ देशभाषाओं में अन्यथा व्याख्यान वेदो के विषय में किया है, उन २ का भी व्याख्यान मिथ्या है क्योंकि जैसा प्रथम लिख आए हैं जब पर्यन्त उतना काल व्यतीत हो चुकेगा, तब पर्यंत ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्तमान रहेंगे ।

इस पर आर्य्यतत्वप्रकाश व्याख्यान पहिला पृष्ट ७ पंक्ति७में यह लिखा है।

वेदों की प्राचीनता के विषय में विचार करने के पहिले हम उन पुस्तकों की सूचना लिखते हैं जिनको पंडित दयानन्द ने सच्चा माना है, और जिन पर उन्होंने आर्य्यमत की नीवडाली है । इस लिये हमारे विवाद की नीव भी उन्हीं पुस्तकों पर होगी और जहा कहीं आवश्यकता होगी वहा उन्हीं पुस्तकों की बातें हम भी सग्रह करेंगे ।

अब हम उन पुस्तको के नाम लिखते हैं ।

(१) पहिले चारवेद अर्थात् १ ऋग्वेद २ यजुर्वेद ३ सामवेद ४ अथर्ववेद जिन्हे आर्य्य लोग ईश्वर का वचन और अनादि मानते हैं ।

(२) चार ब्राह्मण १ ऋग्वेदका ऐतरेय २ यजुर्वेदका शतपथ ३ सामवेदका ताण्ड्य महाब्राह्मण ४ अथर्ववेद का गोपथ ।

(३) ग्यारह उपनिषद अर्थात् १ ईश २ केन ३ कठ ४ प्रश्न ५ छान्दोग्य ६ बृहदारण्यक ७ मुण्डक ८ माण्डूक्य ९ श्वेत १० तैत्तरीय ११ ऐतरेय ।

(४) छ अग १ शिक्षा २ कल्प ३ व्याकरण४निरुक्त ५ छन्द ६ ज्योतिष ।

(५) पाचवाँ मनुसहिता ।

(६) छ दर्शन अर्थात् १ न्याय २ वैशेषिक ३ साख्य ४ पातजलि ५ पूर्व मीमामा ६ उत्तरमीमासा ।

सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द जी ने इन पुस्तको को सत्य माना है, तो सब उनके अनुयायियों को भी ऐसा ही जानना चाहिये । उन्होंने वेदों पर अपनी टीकामें भी बहुधा इन्हीं पुस्तको की बातों का संग्रह किया है ।

अब हम उन प्रमाणों का वर्णन करते हैं, जिन्हें आर्य्य लोग वेदों की प्राचीनता में देते हैं, और उनके खंडन में प्राचीन बड़े बड़े नामी पण्डितों की बातों को हम वर्णन करेंगे जो दो हजार से अधिक वर्ष बीता होगा कि वे वर्तमान थे जिससे आर्य्य लोग यह न समझें कि हमने आपकी गढंत की है। और इसी लिये हम उन बातों को यहा वर्णन नहीं करते जिनको अन्य देशीय लोगों ने निर्णय करके अपनी पुस्तकों में लिखी हैं हम केवल इसी भारत देश की नामी और उत्तम प्रसिद्ध पुस्तकों ही की प्रामाणिक बातें लिखेंगे।

दयानन्द जी ने मनुजी के वचनों से बहुत समह किया है और उनको बड़ा प्रमाणिक ठहराया है। इस कारण अब यह प्रश्न हो सकता है कि मनुजीकी बातें विश्वासयोग्यहैं वा नहीं। वह अपनी संहितामें लिखतेहैंकि जब पहिले सतयुगके १० हजार वर्ष बीत गये थे और भादों मास के पन्द्रह दिन बीत गय तब हमने यह धर्म्मशास्त्र समाप्त किया और ब्रह्मा की आज्ञा से यह बनाया।

इस प्रकार मनुसंहिता को बनाए हुए बहुत ही वर्ष बीते हैं, परन्तु यह आश्चर्य्य की बात है कि उस पुस्तकमें उन राजाओं और ऋषियों का वर्णन है जो कि बहुत थोड़ा ही समय बीता होगा कि इस संसार में वर्तमान थे। राजाओं में तो ययाति नहुष पृथुइत्यादि। ऋषियों में विश्वामित्र, अजीगर्त वसिष्ठ और भारद्वाजका वर्णन है।

आश्चर्य्य यह है कि उस पुस्तक में इन लोगोंके नाम लिखेहैं जो इस समय से जिसमें उनका लिखा जाना संभव था सैकड़ों वर्ष पीछे रहे हैं। जब पण्डित दयानन्द जी आश्चर्य बात का संभव होना नहीं मानते तो यह क्योंकर हो सकता है आर्य्यों को इस अद्भुत बातको मानना अथवा मनुजीका प्रमाण छोड़ना चाहिये। और यदि वह इस असंभव बात को मान लें तो उन्हें मनुजी की दूसरी आश्चर्य्य बातों को भी अंगीकार करना पड़ेगा। उनमें से एक उत्तम उदाहरण हिरण्य कश्यप नामक दैत्य है मनुजी इस दैत्य के विषय में इस प्रकार वर्णन करते हैं कि वह ऐसा ऊंचा था कि उसकी कमर सूर्य्य के बराबर पहुंचती थी और उसका शेष शरीर सूर्य्य से आगे निकल जाता था। मनुजी के वचनों का प्रमाण तो बस इसी में प्रकट हो गया।

बिना किसी दूसरे दृढ प्रमाण के वेदों की साक्षी अपने निज विषय में नहीं मानी जा सकती । मनुजी ने वेदों के बहुत पीछे अपनी संहिता लिखी है भला वह वेदों के विषय में क्योंकर प्रमाण दे सकते हैं क्योंकि वह आपही उसके आरम्भ में नहीं थे कि जो कुछ हुआ सो देखते । सम्पूर्ण प्रमाण जो आर्य्य लोग देते हैं वह केवल वेदों और मनुजी से ही है । कोई और प्रमाण वे नहीं दे सकते हमने उनका उत्तर तो ठीक दे दिया है ।

वेदों की अत्यन्त प्राचीनता के विषय में आर्य्य लोगों के प्रमाण और तथा के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि वह समय जो आर्य्य लोग कहते हैं अनुमान से विरुद्ध और इतिहास से विरुद्ध है ।

वेदों में से सबसे प्राचीन ऋग्वेद है और तीन वेद उससे पीछे हुए हैं और यथार्थ में उन तीन वेदों के बहुत स्थानों में उसीमेंसे लिये गयहैं इसकारण अबहम ऋग्वेदकी प्राचीनता पर विचार करते हैं । इस वेद का पहिलामन्त्र विश्वामित्र के पुत्र मधुछन्दस्‌का रचित है और अन्तकामन्त्र अघमर्षण नामक ऋषि का बनायाहुआहै । इसकारण ऋग्वेद उससमयका रचाहुआहै जबकि मधुछन्दस् और अघमर्षण वर्त्तमानथे क्योंकि आदिमन्त्र और अंतकेमन्त्रके यही रचनेवाले हैं ।

बीचके भाग बहुतसे ऋषियोंके बनायेहुयहैं । हमअन्तमें उनके नाम और वेदोंकेमन्त्रोंकी सूचनालिखेंगे * जिसने जो बनाया सो प्रकट करदेनेके लिये ।

मधुछन्दस्‌ऋषि जिसने पहिलामन्त्र बनाया रामचन्द्रजीके समय वर्तमान थे । इसकारण ऋग्वेदके आरम्भकासमय प्रकट होगया । रामचन्द्रजीसे सुमित्रतक ५६ पीढ़ियाँ और ११२० वर्षका समय निकलता है । इसमें विक्रमादित्यसे आजतक का समय अर्थात् सम्वत् मिलानेसे विदित होताहैकि अबतक ३०६२वर्षहोतेहैं जबकि ऋग्वेदका आरम्भ हुआथा । ऋग्वेदके दूसरेभागमें पराशरऋषिके मंत्र हैं और यहबात जाननाकि वह किससमयमेंवर्तमानथे बहुतही सहज है क्योंकि व्यासजी एकबड़ेनामी विद्वानहुए हैं । व्यासजीने एकअतिउत्तम और बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थबनायाहै जिसकानाम वेदान्तदर्शन है । व्यासजीने अपनी पुस्तक में ऐसी— मुख्य बातोंका वर्णन किया है जिससे हमको ठीक ठीक विदित होजाता है कि वह किस समय में थे ।

वेदांत दर्शनके दूसरेअध्याय पाद २ सूत्र ३३ से ३८ सूत्रतकमें व्यासजीने बौ

* यह नाममाला दूसरे भागमें छपेगी ।

इमनकी बातोंका वर्णन किया हैं। अबहम जानते हैं कि बुद्धजी विक्रमादित्य के सम्वत्से ४७५ वर्ष पहिले हुए हैं और ईशामसीहसे ६३२ वर्ष पहिले। उस समय राजा चन्द्रगुप्त राज्यकरताथा। इसप्रकार हम बुद्ध जीका समय जानकर व्यासजीकी ओरचलते हैं हम कहते हैं कि वह बुद्धजीके पीछे हुए हैं क्योंकि उन्होंने बौद्धमत का खण्डनलिखा है। पतञ्जलि ऋषिने एकपुस्तक बनाई है जिसका नाम ,योगदर्शन है उसमें उन्होंने पाणिनि के व्याकरणके अध्याय २ पाद ४ सूत्र २३ पर टीकाकरतेहुए कहा हैंकि राजाको ऐसी सभा नियुक्त करनी चाहिये जैसी राजा चन्द्रगुप्त ने की है। यों हम देखते हैंकि पतञ्जलिने अपने योगदर्शन में राजा चन्द्रगुप्त की चर्चा की है और फिर व्यासजीने इसी पुस्तक पर व्याख्या लिखी है इसकारण इसीसे अत्यन्त प्रगट होता है कि व्यासजी बुद्ध और राजा चन्द्रगुप्तके पीछे हुए हैं परन्तु उनके पिता पराशरऋषि ठीक उससमयके लगभग वर्तमानथे। अब ऋग्वेद के अन्त भाग में पराशर के मन्त्र हैं इसकारण ऋग्वेद का समय लगभग उससमय के ठहरता हैं अथवा कन दूसरे शब्दोंसेभी वही समय सिद्धहोता है जिनके अर्थ उसी प्रकारकेहैं। यदि आज-तक हम वहवर्ष जो विक्रमादित्य से लेकर अबतक बीते हैं इकट्ठा करके लेखा लगावें तो निश्चित होता हैकि उससमय से लेकर जबकि ऋग्वेदके अन्तभागके मन्त्र लिखेगये २४१७ वर्ष होते हैं।

इससेप्रगट होताहैकि ३०६२ वर्षमें ऋग्वेदका आरम्भ हुआ हैऔर २४१७ में समाप्त हुआ है। ऋग्वेद एकऋषिका बनाया हुआ नहीं हैं किन्तु ६४५ वर्ष के अन्तर में बहुत ऋषियों ने उसको समाप्त किया है। आर्य्यलोग कहतेहैं कि वेद के जो ऋषि प्राचीन हैं बनानेवाले न थे वे केवल उसके माननेवाले थे।

यहएक और वर्णनहै जोआर्य्यलोग उनपुस्तकोंकी जिनकोकि वे धर्मपुस्तक मानते हैं शिक्षा के विरुद्ध कहते हैं। क्योंकि वेदों में ऋषियों की दो प्रकार की सर्वत्र चर्चा है अर्थात् एक तो जिन्होंने वेदों को बनाया और दूसरा उनका जिन्होंने उसे माना वर्णनहै। जैसा कि यजुर्वेद के तैतरीय ब्राह्मण के मन्त्र २२ में यह लिखा है कि मैं उन ऋषियों को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने वेदों को बनाया है। एक दूसरे स्थान में यह लिखा है कि मैं उन ऋषियों को धन्यवाद दे-ताहू जिन्होंने वेदों को माना अर्थात् उनको अभ्यास और विश्वास किया। और भी बहुतसे भागोंमेंऐसाही लिखा है कि वे ऋषि जिन्होंने वेदोंको बनाया और जिन्होंने वेदों को माना सदाकाल मेरी ओर रहेंगे। फिर भी लिखाहै कि मैं उन ऋषियोंको जिन्होंने वेदोंको बनाया और जिन्होंने माना नहींछोड़ूगा।

वेद तपही आर्य्यलोगोंके इस वर्णनकी भूलको प्रकट करतेहैं। यदि उन्हें अपनी धर्मपुस्तकोंमें पूर्ण प्रवीणता होती तो ऐसी प्रत्यक्ष भूलकी बातोंका वर्णन नकरते।

हमवेदोंका आरंभ और प्राचीनताके विषयमें आर्य्यलोगोंका वर्णन सुनचुके हैं कदाचित् उनसे अधिक निर्मूलबातोंका वर्णन और कहीं नमिलेगा। यह आश्चर्य की बातहैकि किसप्रकार बुद्धिमान मनुष्य उनबातोंको युक्तियुक्त और मत प्रसिद्ध करते हैं। वेदोंकीशिक्षा और उनके प्रमाणोंकेविषयमें हम आगेके व्याख्यानोंमें वर्णन करेंगे।

* हम अपने पढनेवालोंको स्मरण कराते हैं कि जैसाहमने पहिले व्याख्यानमेंकहा हैकि स्वामी दयानन्दजी ग्यारह उपनिषद और छःदर्शनोंको वेदोंके तुल्य मानते हैं। इनपुस्तकोंके नाम हम पहिले व्याख्यानमें वर्णन कर चुके हैं। स्वामी दयानन्दने इन पुस्तकों को पवित्र अंगीकार कर लिया है और सत्यता में वेदों के तुल्य ठहराया है और उन पर आर्य्यमत की नीवडाली है। वह सिखाते हैं कि परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार ऋषियोंने इन पुस्तकों को वेदोंसे बनाया है और इन पुस्तकों के द्वारा मनुष्य को परमेश्वर का ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है। और उनकी यह भी ममता है कि ये पुस्तकें एक दूसरी से मिलती हैं केवल मिलती ही नहीं वरन एक दूसरे को प्रकाश देती और प्रमाणित करती हैं।

जैसा वैशेषिक दर्शन में वस्तुओं के रूप, न्याय दर्शनमें उनके भेद, सांख्य में उनके तत्व और पातञ्जलिमें इन पुस्तकों की शिक्षा समझने के विषय में लिखाहै। जैमिनीय अर्थात् मीमांसा में विश्वास और विश्वासियों का वर्णन है और वेदान्त दर्शन में निस्तार और निस्तार प्राप्त करने का वर्णन है।

यह स्वामी दयानन्द जी के मतका व्यवहार है यदि यह सत्य है तब विरुद्धता तो दूर रही परन्तु एक पुस्तक के न होने से औरोंका समझना कठिन होगा जैसा कि ताला विना कुंजी किसी कामका नहीं। परन्तु जब हम उनको पढते हैं तो विदित होता है कि उनका वर्णन एक दूसरे से बहुत विरुद्ध है इस कारण या तो ये पुस्तकें वेदों को नहीं मानतीं अथवा वेद आपही विरुद्धता पर हैं। विशेष बात तो यह है कि जो कुछ स्वामी दयानन्द कहते हैं यह सम्पूर्ण मिथ्या है। क्योंकि यदि मनुष्य इन पुस्तकों को ध्यान लगाकर पढे तो उसको प्रकट हो जायगा

*यह लेख अध्यात्मप्रकाश व्याख्यान में पृष्ठ ११ पंक्ति १० से प्रारंभ कियागयाहै।

कि यह परस्पर बहुत विरुद्धता रखती हैं। जैसा व्यास जी वेदान्तदर्शन के शारीरिक अध्याय १ पाद १ सूत्र १ म ४ में इनने मतका वर्णन करते हैं। फिर वह साख्यदर्शन को खण्डन करते हैं और कहते हैं कि वह वेदोंके विरुद्ध है देखो शारीरिक अध्याय १ पाद १ सूत्र ५ मे अततक। अब फिर निश्चय करते हैं कि यह बुद्धि के विरुद्ध है देखो अध्याय २ पाद २ सूत्र १ से १० उसके साथ वह पातंजलिदर्शन का भी खण्डन करते हैं। फिर सांख्यदर्शन के वर्णनों का भिन्न २ विवाद किया है और उन्हें खण्डन किया है। और अध्याय २ पाद २ सूत्र १३ से १७ में उन्होंने वैशेषिक दर्शन के पुर्रे उड़ाये हैं। और सूत्र १७ से ३३ मे उन्होंने न्यायदर्शन को मिट्टी में मिलाया है। और अध्याय २ पाद २ सूत्र ३४ से ३७ मे कणाद का खण्डन किया है। पाद २ सूत्र ८ से ४१ मे शैवशास्त्र की चिरैंयाती उड़ाई हैं। अध्याय २ पाद २ सूत्र ४२ से ४५ मे नारद पञ्चरात्र की अच्छी खबर ली गई है। अध्याय २ पाद २ सूत्र ४३ से ४४ में जैमिनिकी बहुत निन्दा की है। यों हम देखते हैं कि यह सब पुस्तकें आपस मे मेल रखती हैं कैसा वेठिकाने का है।

इसके परे देखा जाता है कि इन पुस्तकों के आचार्य्य एक दूसरे को भली भांति गाली गलौज करते हैं जैसा न्याय वेदान्तदर्शन को नास्तिककी पुस्तक लिखता है वेदान्त उसके उत्तर में न्यायको कुत्तेके नाम से पुकारता है और साख्यदर्शन इन दोनों को शापित बतलाता है और पातंजल इन तीनों को रसिक और व्यर्थ पुस्तकें ठहराता है।

और मित्र विलास पत्र, लाहौर संख्या १७ खण्ड १२ ता० २४-९-८८ ई० में लिखा है

अब के लोग जो अल्पश्रुत हैं, वेदार्थ को नहीं जानते उन को पूर्वापर की कुछ खबर नहीं। इस जमाने में मन्दबुद्धि वेदोक्त कर्म्म जिन्होंने त्याग दिया है उन्होंने कुमार्ग को पकड़ लिया है। वर्णाश्रम धर्म्म की निन्दा करते हैं शिष्टाचार से भ्रष्ट होगये हैं, नहीं वो आस्तिक नहीं वो नास्तिकहै क्योंकि जो नास्तिक हैं, जैन बौद्ध मतवाले भी अपने परमेश्वर की मूर्ति का पूजन करते हैं, मन्दिरों में जो आस्तिक हैं सोतो सनातन शिष्टाचार से श्रुति स्मृति विहित भगवत्के अवतारोंकी मूर्ति

का पूजन करते हैं । परन्तु अब के लोग वेदों के अर्थ उलटे विपरीत अपने मन से कल्पना कर के लोगों के मन भ्रमाते हैं, जिन अर्थों में कुछ प्रमाण नहीं । वेदों से विरुद्ध अर्थ करते हैं, जो भाष्यकारों तथा शिष्टों ने प्रमाणित अर्थ किये हैं वेदों के, उन से विरुद्ध चलते है, और भगवत् के अवतार और मूर्ति की निन्दा करते हैं इन लोगों का दर्शन नहीं करना चाहिये क्योंकि जो निन्दक होते हैं सो महापापी हैं उनके साथ स्पर्श औरसभापण करना महापाप है समेत वस्त्र के स्नान किये जीव पवित्र होता है । ब्रह्म से लेकर कीट पर्य्यंत भगवत् की विभूतिमात्र सब जगत है । जीव मात्र की निंदा नहीं करनी चाहिये । ये लोग तो भगवत के अवतारों और मूर्तियों की निंदा करते हैं इस वास्ते पापियो में भी ये अधम पापी हैं, और क्या कहते हैं कि वेदो में मूर्ति का निरूपण नहीं है । यह बात किस तरह की है जैसे आकाश को कोई मन्दबुद्धि जिव्हा से लेपन करता है । और बडे अफसोस की बात है कि कोई एक शाखा वेद की देखकर कहते हैं कि इतना ही वेद है और वेद हो नहीं, जैसे कूपकामडूक जानता है कि कूपही समुद्रहै और समुद्र नहीं । प्रथम आप देखो कि एक हजार शाखा सामवेद की हैं । एकसौएक शाखा यजुर्वेद की हैं, एक विंशति शाखा ऋग्वेद की हैं ९ शाखा अथर्ववेद की हैं और पचम वेद जो अष्टादश पुराण हैं उनकी श्लोक संख्या ४ लक्ष है महा भाष्यकार पतंजलि जी ने महाभाष्य में प्रमाण समत किया है । इतने वेदों को और वेदो के जो भाष्य हैं और जो ३६ महा स्मृतिया हैं, और जो एक लक्ष पाच शास्त्र हैं, इतने शास्त्र को विना जाने और विना देखे से कह देना कि मूर्ति का पूजन कहीं नहीं जैसे जन्म का अंधा जो पुरुष है उसको सूर्य्य का ज्ञान नहीं और दर्शन भी नहीं तैसे इन लोगों का कथन है० ।

फिर मित्रविलास पत्र सख्या ११ खड १२ तारीख १ । १० ।१८८८ में लिखा है ।

इस भारत खड में आधुनिक पाखड मार्ग में अग्रसर वेद मार्गका दूषक जो दयानन्द हुआ है उसके अनुयायियों की भ्रष्ट बुद्धि पर जो अच्छे विद्वान् सज्जन लोग हैं वे बड़ा उपहास्य करते हैं । हम लोग जानते थे कि दयानन्द को व्याकरण ज्ञान कुछ नहीं और अल्पश्रुत तथा केवल शब्द मात्र से कोई शाखा वेद

की जान कर पंडितमानी हो गया था, वेदार्थ की उसको कुछ खबर नहीं थी, प्रमाण रहित उलटे अर्थ कल्पना करके अपने मन से लोगों के मन भ्रमाता था, कई लोग मन्द बुद्धि उसने भ्रष्ट कर दिये हैं, वर्णाश्रम धर्म से च्युत कर दिये, वेद, ब्राह्मण दूषक बहुत कर दिये । इत्यादि २

फिर देखो मित्रविलासपत्र संख्या १३ खंड १२ तारीख १५ । १० । १८-८८ ई० में लिखा है ।

"और भी एक बात सुनो, जो यथार्थ है कि, दयानन्द का जो गुरु था सो एक मथुरा में रहने वाला, नेत्रों से अंधा, दंडी सन्यासी था, इसका दयानंद शिष्य था, बहुत चिर उसकेपास पठन पाठन करता रहा * इस बात से क्या मालूम होता है कि अन्धे के शिष्य ने अन्ध मार्ग को प्रवृत किया है । जिसको नेत्र नहीं उसको शास्त्र की क्या खबर है ?"

श्रीमान् प० शिवचन्द्र जी निज रचित प्रश्नमालिका मे लिखते हैं,

"(२०) स्वामी जी आप लिखते हैं कि उक्त ऋषियों का पूर्ण पुण्य ऐसा ही था इसी से उनके हृदय में ४ वेद का ज्ञान प्रकट किया, सत्य है जब उक्त ऋषियों ने पुण्य किया होगा तो जगत्में ही किया होगा लेकिन वह कोई दूसरा जगत् होगा ? क्योंकि यह जगत् तो उसी वक्त ईश्वर ने बनाया था फिर मनुष्यों को ज्ञानोपदेश दिया इस वृत्तान्त से भी जगत् अनादि सिद्ध होता है ।

तथा उक्त महोदय निज रचित मूर्तिपूजा मंडन पृष्ठ १० पंक्ति १७ से आगे लिखते हैं कि समाजों की प्राचीनता किसी प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं मालूम हो सकती केवल वेद का आश्रय लेके उसकी आड़ से लड़ते हैं, उसमें भी उसकी ऋचा और उसके मन्त्रों के अर्थ अपने आशय के अनुकूल बदल दिये, केवल अपना प्रयोजन मुख्य समझा गया अर्थ के अनर्थ स भय नहीं हु आ ।

दयानन्द मत परीक्षा प्रथम भाग पृष्ट ७ पंक्ति १३ मे यह लिखा है कि—

"स्वामी जी ने केवल लज्जा ही का त्याग नहीं किया है उनको अपने प्रयो-

---

* सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ३२० पंक्ति १७ स्वामो जी मथुरा में एक विरक्त से मुलाकात होना लिखते हैं ।

जनानुकूल मिथ्या अर्थ बनाते हुए भय और शंका भी तो नहीं होती देखो (प्रजा पत्यानिम्पेष्टि) इसी श्रुति का कैसा विपरीत अर्थ किया है उनको यह किंचित् भय शंका न हुई कि विद्वज्जन मेरे पांडित्य पर हसेंगे, और बुद्धिमान मुझको क्या कहेंगे इसी प्रकार वेदों का वास्तविक अर्थ बिगाड़ रहे हैं, आर्यों की धर्मरूपी पुष्प वाटिका उजाड़ रहे हैं" इत्यादि० ।

श्रीमान् पण्डित सत्यानन्द जी अग्निहोत्री देव धर्म्म प्रवर्तक लाहौर निवासी भी अपनी बनाई एक "दयानन्दी वेदों में जिनाकारी की तालीम" नाम की छोटी सी उर्दू पुस्तक में स्वामी दयानन्द सरस्वती के मन गढ़न्त वेदार्थ पर अनेक तर्क करते हैं ।

पुस्तक "धर्म्माधर्म परीक्षा" में तर्क है कि जब स्वामी जी ब्राह्मण भाग को वेद नहीं मानते फिर नवीन सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ३३६ में यह कैसे लिख दिया कि वेद सुनने पढ़ने का अधिकार सबको है, देखो गार्गी आदि स्त्रियां और छान्दोग्य में जान श्रुति शूद्र ने भी वेद रैक्य मुनि के पास पढ़ा था ।

पादरी टी० विल्यम्स साहब रेवाड़ी स्थान के मिशनाध्यक्ष अपने एक लेख में लिखते हैं कि "दयानन्द का योग्य शिष्य गुरुदत्त अपने स्वामी के विषय में कहता है कि वह अपने समयका एक ही वैदिक पण्डित है । वरन मैं इसको भी मानने पर तैयार हूं अर्थात् इस कारण से कि दयानन्द ने वेद का मिथ्या अनुवाद कर के उस पर ऐसी अत्यन्त अनुचित शिक्षा का दोष लगाया है दयानन्द अपने समय में वेद का सब से महा शत्रु ठहरता है ।

रेवाड़ी ६ जून १८८९] [टी० विल्यम्स ।

पुस्तक मंगलदेव पराजय पृष्ठ १८ पंक्ति २० में लिखा है कि "यदि स्वामी जी में यह गुण होता कि दूसरे की सत्य बात को मानते और अपनी मिथ्या बात का पक्ष न करते तो उनका मत डमाडोल क्यों रहता, और उनके लेख पर आक्षेपों की वृष्टि क्यों होती उनकी बुद्धि पर बुद्धिमान् क्यों हंसते" इत्यादि० ।

श्री राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन निवासी (जो सन् १८७७ ई० में स्वामी दयानन्द के नाम पर न्योछावर होते थे) अपने भारतेन्दु नाम मासिक पत्र खण्ड ३ । ४ मास आषाढ शुक्ला १५ सं० १९४० पृष्ठ ३ में लिखते हैं कि—

॥ वेदोंका अर्थ ॥

"बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदोमामयम्प्रहरिष्यति"

हिन्दू लोगों का धर्म्म ग्रन्थ वेद है० वेद से बढ़कर और कोई ग्रन्थ हिन्दुओं को मान्य नहीं। वेद विरुद्ध यदि ईश्वर भी कहे तो उसकी बात कोई हिन्दू नहीं मानता वेद का नाम सुनते ही हिन्दू लोगो का चित्त श्रद्धा से पूरित हो जाता है फिर उसमे हेतुहेतुमद्भाव नहीं लगाते। परन्तु खेद का स्थान है कि भारत की दुर्दशा के साथ २ वेद की भी दुर्दशा हो गई, वेदके अनेक ग्रन्थ नष्ट हो गए, व्याख्यान सब उठ गए, कर्म्मकी श्रृंखलना जाती रही, अर्थ जाननेका रोग भूरा गया, नाना प्रकारके मत मतान्तरों के फैलने से वेद की चर्चा भी कम हो गई। यदि छुट्टी हुई परन्तु वेद वृक्ष की जड़ बड़ी दृढ़ है, इसी से अनेक आंधी बवंडर सह कर भी अब तक महा प्रलय में बचा हुआ है, पर अब बचना कठिन है, क्योंकि अब इसकी जड़ में तेल और पानी भरने वाले बहुत पैदा होगए। जो वृक्ष भारी बवण्डर से नहीं गिरा उसे अब छल बल कौशल से गिराने का उपाय हो रहा है। प्रथम इसके विनाशक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज हैं, इन्होंने वेद का वह गौरव उड़ा दिया, जो सनातन से सम्प्रदायानुसार पवित्र वाक्य चला आता था, आपने वेद के अर्थ का कुछ भी भाव न समझ कर व्याकरण का खड्ग हाथ में ले वेद रूपी महानगर का कतलआम कर दिया। रेल, तार, विमान बैलून, जहाज, कल आदि विलायत का सारा कारखाना बिचारे भोले भाले परमेश्वर की वाणी में भर दिया० दूसरा नाश वैदिक सद्धर्म सभा आगरे ने किया इत्यादि०।

फिर मेरो राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद के निवेदन की भूमिका इस प्रकार है।

मैंने श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जो कुछ चर्चा देश देशान्तरों में सुना, मन में आया कि जैसे किसी समय में विष्णु भगवान ने वेदोद्धार किया बतलाते हैं कदाचित् फिर भी इस कलिकाल में स्वामी जी दयानन्द जी ने अवतार लिया हो। दैवसंयोग से एक दिन मैं किसी मेम * और साहब के देखने को गया

* ए, पी, मेडम ब्लवटस्की और कर्नल ओल्काट साहिब जगरा दिरयास से मिक

था तो वहां उस बाग में पहिले दयानन्द जी महाराज ही का दर्शन हुआ, मैंने जिज्ञासा का कुछ उपदेश चाहा, प्रश्नोत्तर पूरे नहीं हुए साहब आ गए, और और बातें होने लगी, मैं घर आया पर जितना महाराज जी के मुखारविंद से सुना था बड़े संदेह का कारण हुआ, निवृत्यर्थ पत्र लिखा महाराज जी ने कृपा करके उत्तर दिया, उसे देख मेरा संदेह और भी बढ़ा, महाराज जी के लेखानुसार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मगा के पृष्ठ ९ से ८८ तक देखा विचित्र लीला दिखाई दी, आधे आधे वचन जो अपने अनुकूल पाए ग्रहण किए हैं और शेषार्ध जो प्रतिकूल पाए परित्याग कर दिए, उन आधे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उनके अर्थ पलट दिए, मनमाने लगा लिए, मैं घबराया कि छापे का अशुद्धता है व मेरी समझ और आखों का दोष, फिर पत्र लिखा उसका जो उत्तर पाया तो जाट और खाट मुगल और कोल्हू की कहावत याद आई श्रीमत्पण्डितवर बालशास्त्रीजी जो बाहर गए हैं परम पूजनीय जगद्गुरु श्रीस्वामी विशुद्धानन्दजी के चरणों में पहुचा, पत्र और उत्तरों को देख कर बहुत हंसे और पिछले उत्तर पर जिसमें इन दोनों महात्माओं का नाम है कुछ लिखवा भी दिया, अब मैं महाविकट विस्मय में पड़ा हूं न तो यह कह सकता हूं कि स्वामी दयानन्द जी संस्कृत शब्दों का अर्थ नहीं समझते और न यह अपने मन में ला सकता हूं कि आप तो समझते हैं दूसरों के बहकाने और भुलाने को यह अर्थाभास रचा है क्योंकि ऐसा काम सत्पुरुषों का नहीं, है जो हो, मैंने अपने पत्र और स्वामी दयानन्द के उत्तरों का इसमें छपवा देना बहुत उचित समझा कि जो सज्जन आर्य लोग उनकी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को देखते हैं अपनी बुद्धि को कुछ काम में लावें और दूसरे पण्डितों से भी सम्मति लेवें ऐसा न हो कि "अन्धेन नीयमाना यथान्धा" के सदृश केवल दयानन्द जी के भाष्य और भूमिका ही की लाठी थामे किसी अथाह गढ़े व नरक कुण्ड में न जा गिरें क्योंकि किसी पारसी कवि ने कहा है कि—

अगर बीनम के नाबीना वचाहस्त । वगर खामोश बनशीनम गुनाहस्त ॥ *

ने फो गये थे ।

* फारसी का अर्थ यह है कि जो अन्धे को कुये के पास देख चुप बैठूं तो पाप है, शिवप्रसाद का और हाल आगे देखना ।

श्रीसम्वेगी साधु आत्माराम (आनन्द विजय) जी अपने बनाये अज्ञान तिमिर-भास्कर नाम ग्रंथ पृष्ठ ३४ पंक्ति १३ से लगा पृष्ठ ३५ पंक्ति १८ तक इसप्रकार लिखते हैं।

दयानन्द सरस्वती जी का कहना एक सरीखा नहीं; इसका तात्पर्य यही है कि ब्राह्मण पुराणादिकों में अनुचित लेख देख के प्रतिवादियों के भय से दयानन्द जी ने अन्य पुस्तक सब वेद चार संहिता के सिवाय मानने छोड़ दिये हैं और पूर्व के अर्थों में लज्जायमान होकर स्वकपोल कल्पित नवीन अर्थ बनाये हैं। सो जिसको अच्छे लगेंगे सो मानेगा। और हम तो दयानन्द सरस्वती के बनाये अर्थों को कदापि सत्य नहीं मानेंगे, क्योंकि दयानन्द सरस्वती ने अपने बनाये 'सत्यार्थप्रकाश' के बारहवें समुल्लास में 'जैन मत की बाबत बहुत झूठी बातें लिखी हैं।

ऐसा ही उनका बनाया वेद भाष्य होगा। दयानन्द सरस्वती ने जो मत निकाला है सो ईसाइयों के चाल चलन और मत के साथ बहुत मिलता है। परंतु चार वेद ईश्वरके कहे हुए हैं, और अग्नि, सूर्य्य, पवन रूप ऋषियोंको प्रेरके ईश्वरने वेद मन्त्र कहा है, और मुक्त हुआ जीव फिर जगत् में आकर उत्पन्न होता है, और मुक्ति वाला जहां चाहता है वहां उड़के चला जाता है, और ईश्वर सर्वव्यापी है, जीव और परमाणु अनादि हैं, घी, सुगन्धी के होमने से बर्षा होती है, हवा सुधरती है, मुक्ति व स्वर्ग कोई स्थान नहीं, इत्यादि बात तो ईसाई मत से नहीं मिलती हैं, शेष बातें प्राय तुल्य ही हैं, बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि प्राचीन ब्राह्मणों के मत को छोड़ के अन्य मत वालों के शरणागत होना और जो कुछ अंगरेजो ने बुद्धि के बल से तार, रेल, धूँये के जहाज आदि कला निकाली हैं, उन्हीं कलाओं को मूर्खों के आगे कहना कि हमारे वेदों में भी इन कलाओं का कथन है, दयानन्द सरस्वती इस यजुर्वेद के मन्त्र से सूर्य्य स्थिर और पृथ्वी भ्रमण करती सिद्ध करता है।

आयंगौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः पितरं च प्रयन्त्स्वः।

यजुर्वेद अध्याय ३ मन्त्र ६ तथा उस मन्त्र से तार (टेलीग्राफ) की विद्या कहता है।

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः

आदि पाये कि जाहर पतन और बाद पण और बुद्धि नाशक हैं उनपर विश्वास लाने वाले लोग भी बहुत बुरा रीति व नापवित्रता में फाजेल करते हैं और यह भी देखा गया है कि पारसी लोग मसाई व नसाई को नाक में बन्द कर देओं प्रक्षिप्त और गेरा का माफ करदेत हैं। जो कि उनकी यह सब हालतें इन बुरा के मनुष्यमात्र का शरीर बिना [illegible] वाला इत्तिफाक हुआ जाने सलाजे जुदे हुए कर रहना यान के लिये हिन्दुस्तानाभिमुख होते हैं, इनसे अपने लड़की नुकसान पुकार कर इसाई मत का नुकसान सिद्ध कर दिखाने इधार इन पाताल व माहात्म्य का देश सब का नजर हमारा तर्फ से फिर गई अर्थात् बड़े बड़े महरगे [illegible] रफार लोग (जिनकी बुद्धि पर इन्सानी शक्ति प्राप्त है और [illegible] भिन्न मत जाना न [illegible]) हमको धिक्कार देते और झूठे से कहत व [illegible] मार करते हैं हमने १८ महीने पेशतर के मध्य में आर्यों की लाश (लाल) का कार्य [illegible] यह पुराना पुरुषा वाच्य आर्यों की शक्ति नजाहिर हम केवल [illegible] सहायता नहीं चाहते बल्कि उनकी चाहते हैं कि जो कि हाल और नामनिहादे उन लिये हम आपके चरणों में इस तरह गिर गये हैं जैसे कि बच्चे मा बाप के पैरोंपर गिरते हैं, और कहते हैं कि आप हमारे शुभ हमारे [illegible] और [illegible] कि [illegible] और हमको अपनी शिक्षा व [illegible] जानता था पाप [illegible] लाना आदमी ज्ञानरहित विषयासक्त मूर्ख [illegible] अन्धकार में पड़े हुए हैं और इतने पर भी उन शुभराजों को सन्तोष हुए सो नहीं [illegible] लोभी [illegible] व अति निन्द्य उन्हें ने अपना धन खर्च कर जाहिल आदमियों को अपना गुरु मत कबूल कराने में तत्पर हैं हमारी इसाई पादरियों तक [illegible] है उनके द्वारा इस वैदिक मत के मही मही स्थानान्तर तमाम ईसाई मुल्कों में फैला देना चाहते हैं, और जिन लोगों ने इस ईसाई मतपूर्ण बतलाकर अपने मत में [illegible] हैं [illegible] उनसे ईसाई मतकी खद्योत व मिथ्यात्व [illegible] [illegible] हमारा [illegible] हो, इसी तरह आर्यावर्त के प्राचीन ग्रन्थ [illegible] का अनुष्ठान विपरीत अर्थ स्थापित किया वह अब हम सत्यसत्य [illegible] चाहते हैं और [illegible] स्पष्ट करना चाहते हैं, अगर आप हमारी समाज [illegible] सनद [illegible] हमको पूरी तरह और इज्जत मिलेगा

और आपकी न्याय संगतदानी और सहायता से इसका नतीजा जोर पकड़ेगा। हम अपने यहाँ आपके शिष्य गणों को स्थापित करते हैं जिस प्रान्त ग्राम में आप सम्मिलित हैं शायद आपको भी इसमें कुछ सहायता पहुंचे। पहुंच क्योंकि हमारा मैदान उस कन्या कुमारी से हिमालय तक फैला हुआ है, अर्थात् सारे हिन्द में जो हम चाहें सो कर सकते हैं। स्वामी जी महाराज आप अपने मनशील के स्वभाव को खूब पहचानते हैं इस लिए निश्चय है कि हमारे दिल का भी हाल आप पर खुल रहा होगा हम बारम्बार प्रार्थना करते हैं कि आप स्वामि-वत्सल कृपा व दया दृष्टि से निहारें। हम सच कहते हैं कि हम आपके शरणागत आपकी आज्ञा पर बन कर आते हैं न किसी अहंकार व कपट से हमारी यह दीक्षा है निश्चय जानिये कि हम आपकी शिक्षा लाभ और उस कर्तव्य के करने को मुस्तैद व उपस्थित हैं जिसकी कि आप हमको आज्ञा करें। या आप हमको एक पत्र लिखने का अवसर देंगे कि हम ठीक ठीक क्या विश्वास रखते हैं निश्चय है कि जो हम चाहते हैं वह आप हमको जरूर अर्पण करेंगे। १८ मई सन् १८७८ *

(आप का परम प्रतिष्ठित सान्निध्य में हेनरी एस आलकाट ईश्वर एक ज्ञानसमाज के सभापति यह पत्र सभा की तरफ से आपको बड़ी नम्रता पूर्वक लिखता हूँ इति)

अथ सं० १९३० में स्वामी जी लाहौर व अमृतसर चले आए और वेदभाष्यभूमिका के अङ्क २५ व २६ में निम्नलिखित विज्ञापनपत्र मुद्रित करा के छपाए +

॥ विज्ञापन पत्र पहिला ॥

आगे सब विचार किया जाता है कि संस्कृत विद्या की उन्नति करनी चाहिए, सो बिना व्याकरण के नहीं हो सकती, जो आजकल कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और आशुबोध आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं उनमें न तो ठीक ठीक बोध और

* यह चिट्ठी दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग पृष्ठ ६०-६१ से नकल की गई है इस में यदि कहीं शब्द सार्थक नहीं है तो अनुवादकों की ही भूल समझना चाहिये।

+ वेदभाष्यभूमिका का अङ्क २५ व २६ इकट्ठा निर्णयसागर प्रेस बम्बई में छपकर नियत समय से कुछ दिन पीछे प्रकाशित हुआ था।

न वैदिक विषय का ज्ञान यथावत् होता है, वेद और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के ज्ञान से विना किसी को संस्कृत विद्या का यथार्थ फल नहीं हो सकता, और इसके विना मनुष्य जन्म का फल होना दुर्घट है, इसलिए जो सनातन प्रतिष्ठित पाणिनि अष्टाध्यायी महाभाष्य नामक व्याकरण है, उसमें अष्टाध्यायी सुगम संस्कृत और आर्य भाषा में वृत्त बनाने की इच्छा है, जैसे वेदभाष्य प्रति मास २४ पृष्ठों में १ अंक छपता है, इसी प्रकार ४८ पृष्ठ का अंक बम्बई में छपवाया जाय तो बहुत सुगमता से सब लोगों को महा लाभ हो सकता है, इसमें हजारों रुपये का खर्च और बड़ा भारी परिश्रम है, इसका मासिक मूल्य जो प्रथम देगा उससे ।।=) के हिसाब से ७।।) रुपये लेने का है, उधार लेने वालों से ।।।=) आना के हिसाब से ११।) लिये जाय, निश्चोत्साही सब सज्जनों की सम्मति प्रथम ही जानना चाहता हूँ सो सब लोग अपना २ अभिप्राय जनावें इति ।[1]

॥ विज्ञापन पत्र दूसरा ॥

सबको विदित हो कि चारों वेदों की भूमिका पूरी होगई है, इसकी अंक १५ । १६ में समाप्ति हुई है, इसकी जिल्द जिनको इच्छा हो बंधवा लेवें, जो एक वेद लेते हैं उनके पास आषाढ़ में ऋग्वेद का अंक नहीं आवेगा, क्योंकि यह दो अंक आए हैं, इसके आगे श्रावण से लेकर एक लेने वालों के पास एक २ और दो लेने वालों के पास दो २ ऋग्वेद के और यजुर्वेद के अंक आया करेंगे, देखो करो कि बम्बई में बहुत अच्छा काम चलेगा यह पहिला महीना था इसलिए थोड़ी देर हो गई आगे बराबर मिती वार पहुँचा करेगा ।

एक महीने के लगभग स्वामी जी अमृतसर में रहकर सहारनपुर चले आये और कुछ दिन रहकर एक समाज स्थापित कर अगस्त सन् १८७८ ई० के अन्त में रुड़की पहुँचे । और मौलवी मुहम्मद कासिम से * मुबाहिसा करने के लिये पत्र व्यवहार किया परंतु बात अधूरी रह गई, और २६ अगस्त सन् १८७८ ई०

[1] यह कार्य्य स्वामी जी का धन की प्रचुर इच्छा से भरा हुआ पाया जाता है ।

* यह मौलवी मुहम्मद कासिम अली वही हैं जिनका हाल मेले चान्दापुर में लिखा है ।

स्वामी जी मेरठ चले आये। और इनके चले आने पर १ ली सितम्बरको [illegible]की में और आश्विन शुक्ल० ३ तारीख २९ सितम्बरको मेरठ में नवीन आर्य्य-समाज स्थापित हुये।

आश्विन मास के अंत तक स्वामी जी मेरठ ही मे रहे, इस समय तक वेद-भाष्यभूमिका के पूर्ण १६ अङ्क छपकर प्रकाशित हो चुके थे। अब वेदभाष्य छपने का आरम्भ हुआ। सो ऋग्वेद भाष्य व यजुर्वेदभाष्य के जुदे २ प्रथम और द्वितीय अङ्क बम्बई निर्णयसागर यन्त्रालय में छपाकर प्रकाशित किये। जिनके टाइटिल पेज पर सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी निम्न लिखित एक विज्ञापन छपाया था।

॥ विज्ञापन पत्र ॥



सबको विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थों मे गृह्यसूत्र व मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं। वे उन २ ग्रन्थो के मतो को जानने के लिये लिखे हैं, उनमें से वेदार्थके अनुकूलका साक्षिवत प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं, जो जो बात वेदार्थ से निकलती हैं उन सबको प्रमाण करता हूं, क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है। और जो जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्य्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं। और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ट और ७५ पंक्ति में पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे, और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे। तथा पृष्ट ४७ पंक्ति २१ में मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करना है। इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान मे ऐसा समझना चाहिए कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा कर के नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है, और जो जो मर गए हों उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा [illegible]

जीव पुत्रादि के दिए पदार्थों को ग्रहण कर सकता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि को प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं इस विषय में वेद मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अङ्क के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहां देख लेना ।

(क.) हमारी समीक्षा ! प्यारे पाठकगण ! देखो स्वामी दयानन्द सरस्वती की चालाकी । आप लिखते हैं कि यह सब लिखने और शुद्ध करने वालों की भूल से छप गया है । यह भूल केवल स्वामी जी ही स्वीकार कर सकते हैं, किसी विषय को लिखते या अक्षर २ टाइप । योजना करते समय भूल तो अवश्य हो सकती है, जो कोई अक्षर अथवा शब्द इधर से उधर हो जाना सम्भव होता है, परन्तु यह आज ही सुना है कि सात आठ तर्क वितर्क से भरा हुआ पूरा तीन पृष्ठों में समाया हुआ लेख अशुद्ध हो कर किसी पुस्तक में मिल जाय । तथा इस पुस्तक में शुद्धाशुद्ध पत्र भी लगा हुआ है, जिसमें एक २ शब्द की शोध कर दी गई है, फिर क्यों कर सम्भव हो कि पूर्वोक्त भूल यदि यथार्थ होती तो शुद्ध करने से रह जाती । कई वर्ष तक यह पुस्तक छप कर बिकती रही परन्तु स्वामी जी ने कभी भी इसकी अशुद्धता पर ध्यान नहीं दिया, केवल जब नई रोशनी के मनुष्य उनके समाजों में सभासद् होकर श्राद्ध तर्पण को व्यर्थ समझने लगे तो स्वामी जी ने भी यह छापने और शुद्ध करने वालों की भूल स्वीकार कर लिया, यदि सत्य सत्य यही कह देते कि पहिले मेरा विश्वास ऐसा ही था पर अब नहीं रहा तो इसमें कुछ हानि नहीं थी । परन्तु यह युक्तियें जो तो स्वामी जी घर से चले तब ही से ग्रहण किए हुए थे उसको क्योंकर भूल सकते थे?

"मंगलदेव पराजय" पृष्ठ १९ पंक्ति १६ में यों लिखा है कि "स्वामी जी ने पूर्व 'सत्यार्थप्रकाश' में तीन पृष्ठ पर विस्तार पूर्वक युक्ति सहित 'मृतक पुरुषों के श्राद्ध और तर्पण' की विधि लिखी, फिर जब कि उसका खण्डन करने लगे और लोगों ने आक्षेप किया कि आपने अपने पुस्तक में क्या लिखा है, व्याख्यान क्या कहते हो तब 'वेदभाष्य अंक ७' के टाइटिल पर झूठा विज्ञापन दिया कि 'सत्यार्थ प्रकाश' में तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और

सोचने वालों को मूल से छपा गया है।

स्वामी जी ने लाला रामशरणदास की सहायता से आश्विन मास मेरठ ही में पुस्तक देहली को प्रयाण किया, इस समय तक ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेद भाष्य के दो दो अङ्क प्रकाशित हो चुके थे। कार्तिक के महीने में दोनों वेदभाष्य के तीसरे अङ्क पृथक् २ प्रकाशित हुए, ऋग्वेदभाष्य अङ्क ३ के दूसरे, कवर टाइटिल पेज पर स्वामी जी ने निम्न लिखित विज्ञापन छपाए थे।

विज्ञापन पत्र पहिला ।

विदित हो कि 'सत्यार्थप्रकाश' के १०७ पृष्ठ पंक्ति १८ में रोहिणी वसुदेव की स्त्री की जगह स्थान मे रोहिणी बलदेव की माता और वसुदेव की स्त्री ऐसा जानना ।

विज्ञापन पत्र दूसरा आर्यदर्पण शाहजहांपुर ।

इस नाम का एक मासिक पत्र उर्दू भाषा में आर्यसमाज शाहजहांपुर की ओर से प्रकाशित होता है, इसमें वेदादि सच्छास्त्रानुकूल सनातन धर्मोपदेश विषय के व्याख्यान और आर्यसमाज के नियमादि प्रकाशित होते हैं यह पत्र मेरी समझ में बहुत अच्छा है ।

कार्तिक शुक्ला १३ सं० १९३० को ही स्वामी जी अजमेर पधारे, जहाँपर पादरी ग्रेि साहब तथा डा० हसबंडसाहब पहिले से मौजूद थे, स्वामी जी ने एक इश्तहार में तौरेत, इञ्जील, कुरान की कुछ अशुद्धियाँ विदित की तब पादरी साहब ने कहा ऐसा मत करो, सवाल लिख कर भेज दो जवाब दिया जायगा, इसको स्वा० जी ने भी स्वीकार किया; और अगले दिन साठ शङ्काओं का एक पत्र पं० भागराम सा० एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर अजमेर द्वारा पादरी साहब के पास भेजा गया। ५ दिन पीछे पादरी साहब ने उनको स्वीकार किया तो एक दिन उनके उत्तर के लिये नियत हुआ, विज्ञापन दिये गये, सरदार बहादुर मुन्शी अमीरचंद साहब जज, पं० भागराम साहब एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर सरदार भक्तसिंह साहब इञ्जीनियर आदि अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों ने स्वयं पधार कर दोनों का उत्साह बढ़ाया, पादरी साहब के साथ में डा० हसबंड साहब और स्वामी दयानन्द सरस्वती चार बजे लगकर सुशोभित हुए प्रश्नोत्तर हुआ। लग, भग अनुमान लिखने को बैठाये गये

॥ विज्ञापनपत्रमिदम् ॥

सब सज्जन लोगो को विदित हो कि ठिकाना जिला अलीगढ़ परगने मोटथल ग्राम छलेश्वर ठाकुर मुकुन्दसिंह, ठाकुर मुन्नासिंह, रईस तथा ठाकुर भोपासिंह रईस को हमने वेद भाष्य और सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकों के मूल्य वसूल करने को अधिकार दिया है, अर्थात् इनके नाम मुखतार नामा रजिष्ट्री करा दिया है, इनमें से ठाकुर मुन्नासिंह के नाम पूर्वोक्त ठिकाने वेदभाष्यादि पुस्तकों का मूल्य भेजें वे ग्राहकों के पास रसीद भेज देवेंगे, जो कोई पुस्तक लिया चाहे वह भी मुन्नासिंह के नाम पर भेजें, और जो अंक ५ में उमेरावसिंह के नाम नोटिस दिया था वह अब नहीं रहा अब मैं सब ग्राहकों को प्रीति पूर्वक सूचना करता हूं कि जैसी प्रीति से इस काम में पुस्तक लेकर सहाय करे हैं वैसे मूल्य भेजने में भी विलम्ब न करें, क्योंकि अब जो मुखतार किये गये हैं वह जिस उपाय से मूल्य वसूल होगा वह २ उपाय करके रुपया वसूल करेंगे।

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती के)

जब कर्नल अलकाट और मैडम बिल्वस्तकीको तार पहुँचा तो रेल में सवार होकर सहारनपुर आये। आर्य्यसमाज सहारनपुर ने यथायोग आदर किया तारीख १ मई सन् १८७९ ई० को स्वामी जी भी सहारनपुर में आये और कर्नल अलकाट साहब से मिले, फिर इन दोनों को साथ लेकर तारीख २ मई सन् १८७९ ई० को स्वामी जी मेरठ पधारे। आर्य्यसमाज वालों ने यथा योग दोनों का आदर सत्कार किया, ५ दिन तक कर्नल अलकाट और मैडम बिल्वस्तकी दोनों बाबू शिवनारायण गुमास्ते कमसरियटकी कोठी में रहे और उसके निकट ही स्वामी जी पंडित जगन्नाथ साहिब के बंगले पर विराजे, कर्नल साहिब और स्वामी दयानन्द सरस्वती के मध्य खूब प्रेम प्रीतिका बर्ताव हुआ, अलकाट साहब ने कहा हम केवल अपना देश त्याग कर आपके दर्शनाभिलाषी आये हैं बड़ा खेद है कि भारत वर्ष के मनुष्य आपके यथार्थ गुणको नहीं जानते आप बड़े योग्य पुरुष हैं। तब तो स्वामी जी ने भी कर्नल साहिब की प्रशंसा में कोई शब्द शेष नहीं रक्खा। तारीख ७ मई को कर्नल अलकाट साहिब और मैडम् बिल्वस्तकी तो बम्बई को चले गये, परन्तु स्वामी जी मेरठ ही में रहे, और इन्हीं दिनों में नानौटा के रईस

वाले मौलवी मुहम्मद कासिम (जो स्वामी जी से रुड़की में भी मिले थे और इनके साथ स्वामी जी का मेला चान्दापुर में भी समागम हुआ था) भी मेरठ में आये और मेरठ के बहुधा मुसलमानों को अपना सहायक बना स्वामी से जा भिड़े। और धर्मचर्चा की बात होने लगी, मुसलमान लोग कहते थे जो कुछ सवाल जवाब हो, सब जुबानी हो, स्वामी जी कहते थे प्रश्न और उत्तर लिख २ कर दिये जावें, इसप्रकार बहस तो न हुई परन्तु सारांश यह निकला कि दोनों दल अपनी २ विजय मानबैठे, और मुसलमानों ने उर्दू अखबारों में स्वामी जी की पराजय और अपनी विजय प्रकाशित कराई, इधर एक सहीक हुसैन नामी नवीन मुसलमान ने स्वामी जी की बहुत ही कुछ प्रशंसा निज लेखनी से लिखी जो दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम भाग मयूरप्रेस में मुद्रित हुई है, परन्तु हम तो ऐसे लेखकका लिखना भी यथार्थ और सत्य नहीं समझ सकते। क्योंकि यदि वो सत्य भाषी होता तो प्रथम ही अपना अमूल्य हिन्दू धर्म रत्न क्यों नष्ट करता।

स्वामी जी के मेरठ रहते रहते ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, भाष्यका जुदा जुदा सप्तम अङ्क प्रकाशित हुआ जिनके टाइटिल पेज पर निम्न लिखित विज्ञापन छपाया था।

॥ विज्ञापन ॥

सर्व आर्य्यसमाजी और अन्य लोगों को प्रकट किया जाता है कि पहिले बम्बई के आर्य्यसमाज के प्रधान बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणि थे, वे समाज सम्बन्धी कितने अयोग्य कामों के करने से चैत्र शुक्ल १, सम्वत् १९३६ से प्रधान के अधिकार से उतारे और आर्य्यसमाज से सर्वथा पृथक् कर दिए गए हैं, अब पीछे कोई भी मनुष्य आर्य्यसमाज सम्बन्धी व्यवहार उनके साथ न करे। हम अति हर्ष और आनन्द पूर्वक प्रकट करते हैं कि आर्य्यसमाज के प्रधान प्रतिष्ठित महाशय रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख चिंतामणि व्याइट जज नासिक नियत हुये हैं। अब पीछे जिसको आर्य्यसमाज से पत्र व्यवहार करना हो तो निम्न लिखे ठिकानों पर पत्र भेजे। मिस्टर सेवकलाल कृष्णदास उपमन्त्री आर्य्यसमाज बाहरकोट पायधूनी पर गौड़ी जी की चाली घर बम्बई इत्यादि०।"

आषाढ सम्वत् १९३६ में स्वामी जी का नवीन आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद मे खोला गया, और दोनो वेद भाष्यों के जुदे जुदे अष्टम अंक प्रकाशित हुये थे।

श्रावण में स्वामी जी मुरादाबाद में रहे वेद भाष्य नवम अंक के टाइटिल पेज पर भी एक निम्न लिखित नवीन विज्ञापन मुद्रित कराया।

॥ विज्ञापन पत्र मिदम् ॥



सबको विदित हो कि ठाकुर मुकुन्दसिंह और मुन्नासिंहजी के नामका ६ अंकमें विज्ञापन दिया गया था, और मुन्नासिंह जी ने परोपकार बुद्धि से ग्राहकों से उधारका रुपया लेने का काम स्वीकार किया था परन्तु उक्त ठाकुर को किसी विशेष कार्य्य के होने से ग्राहकों से रुपया जमा करने की फुरसत नहीं है, इस लिये सब स्थानों के ग्राहकों से तकाजा कर के रुपया लेने का अधिकार मुंशी समर्थदान प्रबन्ध कर्त्ता "वेदभाष्य कार्यालय" मुम्बई को दिया गया है। और इनके तकाजा करने पर भी ग्राहक लोग रुपया देने में हीला हवाला करेंगे तो उनसे रुपया समर्थदान के विदित करने से राजकीय नियमानुसार ठाकुर मुन्नासिंह जी ही लेंगे। अब पीछे सब ग्राहक मुम्बई में रुपया भेजा करें, वहा से सब के पास बराबर रसीद पहुंचेगी। हम ग्राहकों को सुगमता होने के लिये यह नियम भी लिखते हैं कि जिस २ स्थान के लोगों के नाम हम नीचे लिखते हैं उस २ स्थान के ग्राहक उनके पास रुपया जमा करा देंगे तो वे लोग सब के नाम पृथक् २ रसीद मुम्बई से मंगवा दिया करेंगे।

"मुंशी इन्द्रमणि जी प्रधान आर्य्यसमाज मुरादाबाद" "मुन्शी बख्तावरसिंह जी मन्त्री आर्यसमाज शाहजहांपुर" "लाला रामशरणदास रईस उप प्रधान आर्य समाज मेरठ" "लाला साईंदास मन्त्री आ० समाज लाहौर" "लाला मदनदास जी खजानची आर्यसमाज गुरुदासपुर" "चौधरी लक्ष्मणदास सभासद् आर्यसमाज अमृतसर बाजार माईसेवा" "बाबू रामाधार बाजपेयी तार आफिस रेलवे लखनऊ" "प० सुन्दरलाल रामनारायण पोष्टमास्टर जनरल आफिस इलाहाबाद" "बाबू माधो मन्त्री आर्यसमाज दानापुर बंगाल" "मुन्शी समर्थदान" और 'मुन्शी इन्द्रमणि'

जी के पास हमारे बनाए सब पुस्तक रहते हैं जिसकी इच्छा हो मगवाले।

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती)

मुरादाबाद से चल कर स्वामी जी बरेली पहुँचे और कुछ रह कर अपना मन्तव्य को प्रकट किया तब पादरी टी० जी० स्काट (T. G. SKOT) साहब ने बहस करने का इरादा किया, दिन नियत होगये सम्बन्ध और तमाशाई लोगों ने यह चर्चा सारे नगर मे फैला दी, तारीख २५। २६। २७ अगस्त सन १८-७९ ई० में यह वादानुवाद हजारों मनुष्यों के समारोह मे तीन दिन तक बराबर हुआ, प्रश्नोत्तर के लिखने के लिए तीन मनुष्य बिठलाए जाते थे, अन्त में यही फल हुआ कि पादरी साहब उठ कर चल दिए स्वामी जी की विजय प्रकट हुई, तथा स्वामी जी ने इस प्रश्नोत्तर सम्बन्धी एक पुस्तक भी बनाकर छपवाई जिसका नाम "सत्यासत्य विवेक" है, बरेली में उसी समय आर्यसमाज भी स्थापित हो गया, और स्वामी जी थोड़े ही दिन पीछे शाहजहाँपुर चले गए, और स्वामी जी के शिष्य पंडित देवीप्रसाद का शाहजहाँपुर के लक्ष्मण शास्त्री आदि से कुछ शास्त्रार्थ भी हुआ, इसका सविस्तार वर्णन आर्यदर्पण पत्र मास जौलाई सन् १८७९ ई० में छपा है।

मुन्शी बख्तावरसिंह से स्वामी जी ने कहा कि हम अपने घर का यन्त्रालय खोला चाहते हैं, और वह यन्त्रालय काशी में होना उचित है आप उसके कार्याध्यक्ष हो जाय तब मुन्शी जी ने कहा मैं सरकारी नौकर हूँ नौकरी छोड़ नहीं सकता, इस पर स्वामी जी ने कहा तुमको सरकारी नौकरी से अधिक वेतन दिया जायगा और पेंशन मिलने के बदले हम अपने वसीयतनामें मे इसका यथार्थ प्रबन्ध कर देवेंगे। इसका मुन्शी जी ने कुछ उत्तर नहीं दिया और स्वामी जी इलाहाबाद मे पधारे, और आश्विन मास उसी स्थान पर बिताया और वेदभाष्य दशम अंक जुड़े २ ऋग्वेद, यजुर्वेद के प्रकाशित किए। फिर दीनापुर बंगाल में पधारे और एक मास पूरा किया, यहाँ आर्यसमाज स्थापित हो चुकी थी इस लिए आप दीपमालिका के कुछ दिन पीछे ही काशीपुरी (बनारस) को चल पड़े और दोनो ऋग्वेद, यजुर्वेद, भाष्य के जुदे जुदे ग्यारहवें अंक प्रकाशित कराए जिनके टाइटिल पेज पर यह मुद्रित कराया कि एक पुस्तक आर्य निवारक, स्वामी

सत्यासत्य विवेक, स्वामी जी की बनाई "मुन्शी बखतावरसिंह मन्त्री आर्यसमाज शाहजहांपुर" के पास मिलती हैं।

स्वामी जी ने मुन्शी बखतावरसिंह को अपना नौकर बनानेके लिये अधिक दबाया तब लाचार उक्त मुन्शी जी ने स्वीकार कर कहा आप काशी में कार्यारम्भ कीजियेगा तब मेरी आवश्यकता हो और आप मुझे याद करेंगे मैं आजाऊंगा।

स्वामी जी ने काशी में पहुँच कर राजा विजयनगर के आनन्द बाग़ में डेरा जमाया, और यह इनका सप्तम बार का अन्तिम आगमन था।

कार्तिक शुक्ला १४ शुक्रवार को उक्त स्वामी जी के शिष्य प० भीमसेन जी शर्मा ने काशी नगर में निम्नलिखित एक विज्ञापनपत्र प्रकाशित किया था।

विज्ञापन पत्र।

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है, कि इस समय पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज काशीमें आकर जो श्रीयुत महाराजे विजयनगर के अधिपति का आनन्दबाग महमूदगंज के समीप है उसमें निवास करते हैं। वे वेदमत का ग्रहण करके उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते। किंतु जो २ ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव और वेदोक्त सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों का आचार और सिद्धान्त तथा अपने आत्माकी पवित्रता और उत्तम विज्ञान से विरुद्ध होनेके कारण पाषाणादि मूर्ति पूजा जल और स्थल विशेष पाप निवारण करने की शक्ति व्यास मुनि आदि के नाम पर छल से प्रसिद्ध किये नवीन व्यर्थ पुराण नामक आदि ब्रह्म वैवर्तादि ग्रन्थ परमेश्वर के अवतार ईश्वर का पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा करके मुक्ति देने हारको मानना उपदेश के लिये अपने मित्र पैगम्बर को पृथिवी परभेजना पर्वतोंका उठाना, मुर्दो का जिलाना, चन्द्रमा का खण्डन करना कारण के बिना कार्य्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना स्वयम् ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से व्यतिरिक्त वस्तु कुछ भी नहीं मानना जीव ब्रह्म को एक ही समझना, कण्ठी तिलक औररुद्राक्षादि धारण करना और शैव शाक्ति वैष्णव गाणपत्यादि सम्प्रदाय आदि हैं इन सबका खण्डन करते हैं, इससे इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, धार्मिक विद्वान को विरुद्ध जान पड़े। अपने मतका स्थापन और दूसरे के मत का

खंडन करने में समर्थ हो वह स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवस्थाओं का स्थापन करे । इससे विरुद्ध मनुष्य कभी नहीं कर सकता इस शास्त्रार्थ में वेद मध्यस्थ रहेंगे । वेदार्थ निश्चय के लिये जो ब्रह्मासे लेके जैमिनिमुनि पर्य्यन्तके बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ हैं वे वादी और प्रतिवादी उभय पक्षवालों को माननीय होनेके कारण माने जावेंगे । और जो उस सभामें सभासद हों वेभी पक्षपात रहित धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक ठीक जानने सत्य के साथ प्रीति और असत्यके साथ द्वेष रखने वाले हों, इनसे विपरीत नहीं दोनो पक्षवाले जो कुछ कहें उसको शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जावें । वादी और प्रतिवादी अपने अपने लेखके अन्त में अपने २ लेख पर स्वहस्ताक्षर से अपना अपना नाम लिखें । तथा जो मुख्य सभासद हों वेभी दोनों के लेखपर हस्ताक्षर करें । उन तीन पुस्तको में से एक वादी दूसरा प्रतिवादी को दे दिया जाय, और तीसरा सब सभाकी सम्मतिसे किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जावे कि जिससे कोई अन्यथा न कर सके । जो इस प्रकार होने पर भी काशीके विद्वान लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उनके लिये अत्यन्त लज्जाकी बात है, क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है कि सत्य और असत्यको ठीक ठीक जानके सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना, और औरों को भी रखना ।

इस विज्ञापन के प्रकाशित करने की विशेषावश्यकता यह थी कि कर्नेल अलकाट स्वामीजी से मिलने को यहा पधारने वाले थे, और इधर स्वामीजी को अपना निज यंत्रालय काशीमें खोलनेका फिक्र लग रहा था, सो जब छापेखानेका सब प्रबन्ध ठीक ठीक होना सम्भव होगया और पंडित भीमसेन के दिये हुये पूर्वोक्त विज्ञापन पर काशी में किसी ने कुछ ध्यान नहीं दिया तो शीघ्रता सहित एक निम्न लिखित विषयका विज्ञापन पुनः प्रकाशित किया

॥ विज्ञापनपत्र ॥

प्रथम विज्ञापन काशी के पंडित मात्र पर था इस कारण यदि पंडितोंने उस पर ध्यान देना उचित न जाना हो क्योंकि शिष्टातिशिष्ट ऐसे समेटके निमंत्रण

न जानेको अपनी कुछ अप्रतिष्ठा समझते हैं एतदर्थ काशी के सब पंडितों में शिरोमणि श्री स्वामी विशुद्धानन्दजी व पंडित बालशास्त्री जी अपना अपना पृथक् निमन्त्रण इस द्वितीय विज्ञापन द्वारा समक्ष कर मेरे प्रथम विज्ञापन में लिखे नियमानुसार मुझसे शास्त्रार्थ करनेको अवश्य और अति शीघ्र सन्नद्ध होवें ।

मार्गशिर सम्वत् १९३६ में कर्नल अलकाट बनारस पधारे जिनके मिलने को राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द रईस बनारस आनन्द बाग में आये तो प्रथम स्वामीजीसे ही भेंट हुई कुछ ज्ञान चर्चाभी रही* अतको राजा साहिब उक्त साहिब से मिलकर निजस्थानपर चले गये ।

कुछ दिन पश्चात तारीख २० दिसम्बर सन् १८७० ई० अर्थात् पौष सम्वत् १९३६ में कर्नल अलकाटने विज्ञापन प्रकाशित किया कि अमुक २ समय पर हम और स्वामी दयानन्द सरस्वती बंगाली स्कूल में व्याख्यान देंगे, जब वह समय निकट आया असंख्य दर्शकगण नियत स्थानपर एकत्रित होगये और स्वामी दयानन्द सरस्वती कर्नल अलकाट साहिब को साथ लेकर पधारे । इसी अवसर पर एक चपरासी मिस्टर वाल साहिब कलक्टर बनारस की चिट्ठी लेकर आया जिसमें लिखा था कि इस समय स्वामीजी कोई व्याख्यान नहीं देने पावेंगे, इस पर स्वामीजी तो चुप हो रहे परन्तु कर्नल अलकाट साहबने अंग्रेजीभाषा में बड़ा लम्बा चौड़ा व्याख्यान दिया और कुछ समय पीछे जब स्वामीजी को सरकार से आज्ञा होगई तो दोनों महाशयोंने दिल खोलकर निज मंतव्य प्रकट किया, और माघ शुक्ला २ तारीख १२ फरवरी सन् १८८० ई० को स्वामीने "आर्य्य प्रकाश" नामक एक नवीन यन्त्रालय (प्रेस) विजन बाग लक्ष्मी कुण्डपर खोला जिसकी रजिष्ट्री अपने नामसे कराई, और निज रचित पुस्तकें उसमेंमुद्रित करानी आरम्भ करदीं, इसका विशेष कारण यही था कि अपना भेद दूसरों पर नहीं खुलेगा ; जो रुपया छपाईमें देना पड़ता है उसकी बचत होगी, तथा यह अपने ही घर रहेगा, कार्य्य भी मनमाना उत्तम रीति से शीघ्रता सहित होता रहेगा ॥ इत्यादि० ॥

मुन्शी बख्तावरसिंह-शाहजहापुर स्वामी जी के विशेष आग्रह से तीन

* देखो इसी पुस्तक का पृष्ठ ८५ ‡ स्वामीजी को पुस्तकके छपने छपाने वा -ने के भय से, अनेक बार घटाने बढ़ाने की आवश्यकता सदा लगी रहती थी ।

महीने की छुट्टी लेकर बनारस चले आये और स्वामी जी ने उनको निज यन्त्रालय का प्रथम दिन से ही मैनेजर बना दिया था ।

जब स्वामीजी को यंत्रालयकी तरफका फिक्र मिटगया तो दोनों वेदभाष्यों के अंक १२ पर जुदा जुदा निम्न लिखित विज्ञापन पत्र मुद्रित कराया ।

॥ विज्ञापन पत्र ॥

सब सज्जनों पर विदित हो कि अब वेद भाष्य तेरहवे १३ अंक पर्य्यन्त मुम्बई में छपेगा, इसके आगे १४ वे अंक से लेकर आगे आगे काशी में आर्य्य प्रकाश यंत्रालय में सदा छपा करेगा । मैंने इस यंत्रालय मे अधिष्ठाता मुन्शी बखतावरसिंह मंत्री आर्य्यसमाज शाहजहाँपुर को नियत किया है, इस लिये सब ग्राहक और दूसरे सज्जनों से यह निवेदन है कि इसके आगे अब जो कुछ वेद भाष्यादि पुस्तकों के लेने के लिये पत्र और मूल्यादि भेजा चाहे सो उक्त यंत्रालय में उक्त स्थान पर उक्त मुन्शी जी के पास भेजा करे । और इसके आगे बाहर के लोग मुम्बई में मुन्शी समर्थ दान के समीप वेद भाष्य सबधी कार्य्य के लिये पत्र अथवा मूल्य आदि न भेजें क्योंकि १३ अंक छपे पीछे मुम्बई में इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा, किंतु मुम्बई के लोग दूसरा विज्ञापन दिया जाय तब तक सब व्यवहार मुम्बई मे ही रक्खें । (दयानन्द सरस्वती)

थोडे ही दिन व्यतीत हुए थे कि स्वामी जी को निज यंत्रालय का "आर्य्य प्रकाश" नाम प्यारा नहीं लगा और उसके बदलने के लिये शीघ्र ही यजुर्वेद भाष्य अंक १३ कैं टाइटिल पेजपर निम्न लिखित विज्ञापन छपाया ।

॥ विज्ञापन पत्र ॥

सब सज्जनों को विदित हो कि मुम्बई में १३ अंक छपने को था सो छप चुका, अब पीछे सब काम बनारस में रहेगा, और १२ अंक में काशी के यंत्रालय का नाम आर्य्य प्रकाश छपा था उसके बदले वैदक यंत्रालय नाम रक्खा गया है, इस लिये अब पीछे वेद भाष्य सम्बन्धी पत्र व्यवहार मुम्बई और बाहर के सब लोगों को मुन्शी बखतावरसिंह जी प्रबन्धकर्ता वैदिक यंत्रालय से करना चाहिये मुम्बई मे इसका कुछ काम नहीं है ।

इस अवसर पर स्वामी जी का बनारस पधारना अत्यंत लाभकारी हुआ कि चैत्रकृष्णा ११ शनिवार को इस भारत प्रसिद्ध पंडितों की राजधानी काशीपुरी में आर्य्य समाज स्थापित हो गया, और इस सम्वत् १९२६ के अन्त होने से पहिले २ संस्कृत वर्णोच्चारण १ संस्कृत वाक्य प्रबोध ३ व्यवहारभानु यह तीन पुस्तक निज रचित वैदक यंत्रालय काशी में छपाकर प्रकाशित कर दी और इन पुस्तकों को देखकर काशी में विद्वानों को भी क्लेश उत्पन्न हुआ, मन में विचारने लगे इसके चरण काशीपुरी में जम गये तो मिथ्य सनातन धर्म का गौरव धूल में मिल जावेगा, इसी आशयको लेकर चैत्र शुक्ल ११ सम्वत् १९३७ को राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द ने स्वामी जी को निम्न लिखित एक पत्र पठाया था जो स्वामी जी के उत्तर सहित प्रकाशित किया जाता है।

॥ काशी सम्वत् १९३७ चैत्र शुक्ला ११ ॥

श्री ५ मत्स्वामी दयानन्द सरस्वतीभ्यो नमोनमः ॥

जब दर्शन पाया कुछ बात हुई अधूरी रह गई इच्छा थी फिर दर्शन करू पन नहीं पड़ा सुना आप बाहर पधारने वाले हैं इस लिये उस दिन के अपने प्रश्न और आपके उत्तर अपने स्मरणानुसार नीचे लिखता हूं यदि भूल हो आप सुधार दें, आगे भी कृपा करके इसी पत्र पर कुछ उत्तर लिख भेजें।

(१) मेरा प्रश्न * आपका मत क्या है ?

(१) स्वामी जी महाराज का उत्तर † हम केवल वेद की संहिता मात्र मानते हैं एक ईशावास्य उपनिषद् संहिता है, और सब उपनिषद् ब्राह्मण हैं ब्राह्मण हम कोई नहीं मानते सिवाय संहिता के हम और कुछ नहीं मानते।

(२) यदि वादी कहे कि आप वेद के ब्राह्मण नहीं मानते तो हम वेद की संहिता नहीं मानते तो आप संहिता के मंडन और ब्राह्मण के खंडन का ऐसा प्रमाण दीजिये जिससे ब्राह्मण का मंडन और संहिता का खंडन न हो सके, वादी को आप अपना प्रतिध्वनि समझिये प्रमाण चाहे ४ मानिये चाहे ६ चाहे ८

जहाँ जहाँ * ऐसा चिन्ह है वह वचन राजा शिवप्रसाद का है।
जहाँ जहाँ † ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वती का है।

चाहे महर्षों सिवाय शब्द के और सबका सहारा प्रत्यक्ष है सो इसमें प्रत्यक्ष हो सकेगा नहीं और शब्द जो आपने ब्राह्मण ही को नहीं माना तो दूसरा कहा से लाइयेगा केवल आप के कहने से कोई कुछ क्यों मान लेगा ? ‡

(२) संहिता स्वय प्रकाश है अनुभव सिद्ध है। *

(३) वादी कहता है कि ब्राह्मण स्वय प्रकाश और अनुभव सिद्ध हैं ? *

आपका दास—शिवप्रसाद।

स्वामी दयानन्द जी का उत्तर।

ओ३म्

संवत् १९३७ चैत्र शुदी १२ गुरुवार। राजा शिवप्रसाद जी आनन्दित रहो। आपका चैत्र शुक्ला ११ बुधवार का लिखा पत्र मेरे पास आया देख कर आपका अभिप्राय विदित हुआ उस दिन आपसे और मुझसे परस्पर जो जो बातें हुई थी तब आपको अवकाश कम होने से मैं न पूरी बात कह सका और न आप पूरी बात सुन सके क्योंकि आप उन साहबों से मिलने को आये थे आपका वही मुख्य प्रयोजन था पश्चात् मेरा और आपका भी समागम न हुआ जो कि मेरी और आपकी बातें उस विषय में परस्पर होती अब मैं आठ दश दिनों में पश्चिम को जाने वाला हू इतने समय में जो आप को अवकाश हो सके तो मुझसे मिलिये फिर भी बात होसकती है और मैं भी आपको मिलता परन्तु अब मुझको अवकाश कुछ भी नहीं है इससे मैं आपसे नहीं मिल सकूँगा क्योंकि जैसा सन्मुख में परस्पर बातें होकर शीघ्र सिद्धान्त हो सकता है वैसा लेख से नहीं इसमें बहुत कालकी अपेक्षा है।

(१) आप का प्रश्न * आपका मत क्या है ?

(१) मेरा उत्तर ‡ वैदिक।

(२) आप वेद किसको मानते हैं *

(२) संहिताओं को ‡

(३) क्या उपनिषदोंको वेद नहीं मानते *

जहां जहां * ऐसा चिन्ह है वह वचन राजा शिवप्रसादका है,
जहां जहां ‡ ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वती का है,

(३) मैं वेदों में एक ईशावास्यको छोडकर अन्य उपनिषदों को नहीं मानता किन्तु अन्य सब उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं वे ईश्वरोक्त नहीं हैं †

(४) क्या आप ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते ॥

(४) नहीं क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है जीवोक्त नहीं जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वे सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत है जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मत के साथ स्वीकार करने के योग्य होता है वैसा जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं परन्तु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता, है वेद स्वत प्रमाण और ब्राह्मण परत, प्रमाण हैं इससे जैसे वेद विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मण ग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय ही हैं, †

अब रहगया यह विचार कि जैसा संहिताहीको ईश्वरोक्त निर्भ्रान्त सत्य वेद मानना होता है वैसा ब्राह्मण ग्रन्थों को नहीं इसका उत्तर मेरी बनाई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के नवमे पृष्ठ ९ से लेके ८८ अट्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति, वेदों का नित्यत्व, और वेद संज्ञा विचार विषयों को देख लीजिये वहां मैं जिसको जैसा मानता हूं सब लिख रक्खा है इसीको विचार पूर्वक देखनेसे सब निश्चय आपको होगा कि इन विषयों में जैसा मेरा सिद्धान्त है वैसाही जानि लीजियेगा ।

(दयानन्द सरस्वती काशी)

॥ राजा शिव प्रसादजी का दूसरा पत्र ॥

श्री काशी वाराणसी सम्वत् १९३७ चैत्र शुक्ल पूर्णमा ॥

श्री ५ मत्स्वामि दयानन्द सरस्वतीभ्यो नमो नम

आपका कृपा पत्र चैत्र शुक्ल १२ का पा अत्यन्त कृतार्थ हुआ ग्रीष्मका प्रचन्ड उत्ताप अवकाश नहीं देता कि आपके दर्शनानन्द से मन ठन्डा करूं तब तक आप कृपा करके पत्र द्वारा मेरे मन को सन्देह के ताप से बचावें ।

आपने लिखा "ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत है" वादी कहता है जो "संहिता ईश्वर प्रणीत है" तो ब्राह्मण भी ईश्वर प्रणीत

जहां जहां † ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वती का है ।

है और जो "ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत" हैं तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणी है आपने लिखा "वेद (संहिता) स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं" वादी कहता है जो ऐसा है तो ब्राह्मणही स्वतः प्रमाण हैं आप का संहिता परतः प्रमाण होगा (२) आपने प्रमाण एसा कोई दिया नहीं (३) जिससे जिज्ञासू की तुष्टि प्रश्न की पूर्ति और सिद्धान्त की आशा हो आपने लिखा कि "मेरी बनायी हुई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के नवमें पृष्ठ से (९ लेके ८८) अट्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति वेदों का नित्यत्व और वेद संज्ञा विचार विषयों को देख लीजिये" "निश्चय होगा" सो महाराज "निश्चय" के पलटे में तो और भ्रान्ति में पड़ गया मुझे तो इतना ही प्रमाण चाहिये कि आपने संहिता को "माननीय" मानकर ब्राह्मण का क्यों "परित्याग" किया और वादी तो संहिता जैसा ब्राह्मण को वेद मान जो आपने "वेद" के अनुकूल लिखा अपने अनुकूल और जो कुछ ब्राह्मण के प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल समझता है तो भी मैंने आपकी "भाष्य भूमिका" सग्रा के देखी पर इसमें क्या देखता हूँ कि पहले ही (पृष्ठ ९ पंक्ति ८) लिखा है "तस्माद्यज्ञात् ... अजायत" अर्थात् उस यज्ञ से (वेद) उत्पन्न हुए पृष्ठ १० पंक्ति २९ में आप शतपथ आदि ब्राह्मण का प्रमाण देकर यह सिद्ध करते हैं कि यज्ञ विष्णु और विष्णु परमेश्वर (४) और फिर पृष्ठ ११ पंक्ति १७ में आप यह लिखते हैं कि "याज्ञवल्क्य महाविद्वान जो महर्षि हुए हैं अपनी पण्डिता मैत्रेयी स्त्री को उपदेश

---

(२) मैं अपने पहले पत्रमें लिख चुका हूं कि "वादी को आप अपना प्रतिध्वनि समझिये ।

(३) स्वामीजी महाराज प्रमाण कुछ भी नहीं देते जो आप अपने मनमानी कह देते हैं उसी को चाहते हैं कि लोग विश्वास कर लेवें ।

(४) कैसा आश्चर्य है कि आपही तो संहिता "स्वतः प्रमाण" और ब्राह्मण को "परतः प्रमाण" लिखते हैं और फिर आपही संहिता के 'ईश्वर प्रणीत' होने के लिये परतः प्रमाण' शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण देते हैं जैसे किसी मुद्दई का गवाह गवाही दे कि मुद्दईका तमस्सुक सच्चा है पर मुद्दाअलैहकी रसीद भी सच्ची है रुपया चुक गया और मुद्दई कहे कि गवाह झूठा है इसलिये मान्य नहीं परन्तु रुपया तमस्सुक ठीक होने के प्रमाण में उसी गवाह को आगे लावे अथवा जज साहिब से प्रमाण (सबूत) मांगे तो कहे मैं कहता हूं मेरा दावा सच्चा है ।

करते हैं कि हे मैत्रेयि जो आकाशादि से भी बड़ा सर्व व्यापक परमेश्वर है उससे ही ऋग यजु साम और अथर्व ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं" परन्तु आपने याज्ञवल्क्यजी का यह वाक्य आधा ही अपना उपयोगी समझ क्यों लिया क्या इसीलिये कि शेषार्द्ध आपही का उपयोगी है ? वाक्य तो यही है-एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टं हुतमाशितं पायितमयंच लोकः परश्चलोकः सर्वाणिच भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि अर्थात् अरी मैत्रेयी इस महाभूत के यह ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोक सूत्र अनुव्याख्या व्याख्या इष्ट हुत खाया पिया यह लोक पर लोक सब भूत सब निश्वसित हैं (५) मुझे इस समय और कुछ तर्क वितर्क आवश्यक नहीं इतना कहना अलम् कि आपके इस प्रमाण से तो कि जो बृहदारण्यक ब्राह्मण का है जैसे वेद ईश्वर प्रणीत हैं वैसे ही उपनिषदादि सब ईश्वर प्रणीत हैं यदि इसका अर्थ यह कीजियेगा कि उपनिषद् जीव प्रणीत है तो आपके चारों वेद भी वैसा ही जीव प्रणीत ठहर जायेंगे आपने संहिता स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण को परतः प्रमाण लिखा और फिर संहिता के स्वतः प्रमाण सिद्ध करने को उन्हीं परतः प्रमाण ब्राह्मणों का आप प्रमाण लाते हैं सो इस व्याघात से छुटने के लिये यदि कुछ उत्तर हो आप कृपा करके शीघ्र लिख भेजें तब तक मैं आपकी भाष्य भूमिका आगे नहीं देखूँगा पृष्ठों को कुछ उलट पुलट किया तो विचित्र लीला दिखाई देती है आप पृष्ट ८१ पंक्ति ३ में लिखते हैं "कात्यायन ऋषिने कहा है कि मंत्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है" पृष्ट ५२ में लिखते हैं प्रमाण ८ हैं और फिर पृष्ट ५३ मे लिखते हैं चौथा शब्द प्रमाण "आप्तों के उपदेश" पांचवा ऐतिह्य "सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश" ता

(५) यह तो बड़ी हंसी की बात है कि स्वामी जी महाराज ने जिस वचन को संहिता "ईश्वर प्रणीत" होने के लिये प्रमाण दिया है उसमें चारों वेद का नाम ले लिया और वेदों के आगे जो उपनिषदादि का नाम लिखा है उसे सम्पूर्ण छोड मानो यह समझा कि हमारे सिवाय किसी ने बृहदारण्यक उपनिषद् देखा नहीं है।

आपके निकट कात्यायन ऋषि "आप्त" और सत्यवादी विद्वान" नहीं थे (६) पृष्ठ ८२ में आप लिखते हैं कि ब्राह्मण में जमदग्नि कश्यप इत्यादि जो लिखे हैं सो देहधारी हैं अतएव वह वेद नहीं और संहिता में शतपथ ब्राह्मण (।) के अनुसार जमदग्नि का अर्थ चक्षु और कश्यप का अर्थ प्राण है अतएव वेद है (॥) फिर आप उसी पृष्ठ में लिखते हैं कि "ब्राह्मणानीतिहासान्पुराणानिकल्पान गाथा नाराशंसी" (७) "इस वचन में ब्राह्मणानिसंज्ञी और इतिहासादि संज्ञा है" तो इस युक्ति से बृहदारण्यक का वचन जो मैंने ऊपर लिखा है उसमें भी क्या उपनिषद् संज्ञी और इतिहास पुराणादि संज्ञा है अथवा ऋग्वेदादि क्रमानुसार उनका संज्ञा वा संज्ञी है ? पृष्ठ ८८ पंक्ति १२ में आप लिखते हैं कि "ब्राह्मण वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं" यदि आप इतना और मान लें कि सम्पूर्ण ब्राह्मणों का प्रमाण संहिता के प्रमाण के तुल्य है अथवा पृष्ठ ४२ पंक्ति ७ में आप लिखते हैं "तत्रा परा ऋग्वेदो यजुर्वेद. सामवेदो ऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति अथ परायेया तदक्षरमधिगम्यते" इसका अर्थ सीधा सीधा यह मान लेवें कि आपके चारों वेद और उनके छओ अंग "अपरा" हैं जो "परा" उससे अक्षर मे अधिगमन होता है अपना विरुद्ध का अर्थ व अर्थाभास छोड़ दें (८) तो बड़ा अनुग्रह हो मेरा सारा परि-

---

(६) भाई ! आप ही कहो कि कात्यायन ऋषिजी को झूठ बोलने का क्या प्रयोजन था क्या कोई उनका भी मुकद्दमा किसी अंगरेजी अदालत या कचहरी में पेश था भला वह झूठ लिखते तो उनके सहकारी लोग उसे कब चलने देते पर जो हो दयानन्दजी ने कात्यायन जी को झूठा बनाया तो मैं पूछता हूं कि जब कात्यायन जी ही झूठे ठहरे तो अब दयानन्दजी की बात यों ही कौन मान लेगा ?

(७) इसका अर्थ बहुत स्पष्ट है अर्थात् ब्राह्मण (और) इतिहास (और) पुराण (और) कल्प (और) गाथा (और नाराशंसी परन्तु स्वामी जी महाराज ने पहिले (और) की जगह (अर्थात्) कल्पना कर लिया अर्थात् ब्राह्मण अर्थात् इतिहास पुराणादि ।

(८) स्वामी जी महाराज अपनी भाष्य भूमिका में (पृष्ठ ४२ पंक्ति ७) इसके अर्थ यों लिखते हैं "(तत्रापरा०) वेदों में दो विद्या हैं एक अपरा दूसरी

श्रम सफल हो जावे और आपके दर्शन का उत्साह बढ़े ॥ अधिकं शिवम् ।

आपका दास—शिवप्रसाद ।

स्वामी दयानन्द जी का पिछला उत्तर ।

राजा शिवप्रसाद जी आनन्दित रहो आपका पत्र मेरे पास आया देख कर अभिप्राय जान लिया इससे मुझको निश्चय हुआ कि आपने वेदों से लेके पूर्व मीमांसा (९) पर्यंत विद्या पुस्तकों के मध्य में से किसी भी पुस्तक के शब्दार्थ सम्बन्धों को जाना नहीं है इस लिए आपको मेरी बनाई भूमिका का अर्थ भी ठीक २ विदित न हुआ जो आप मेरे पास आ के समझते तो कुछ समझ सकते परन्तु जो आपको अपने प्रश्नों के प्रत्युत्तर सुनने की इच्छा हो तो स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती व बाल शास्त्री को खड़ा कर के (१०) सुनियेगा तो भी आप कुछ २ समझ लेंगे क्योंकि वो आपको समझावेंगे तो कुछ आशा है समझ जायेंगे भला विचार तो कीजिये कि आप उन पुस्तकों के पढ़े बिना वेद और ब्राह्मण पुस्तकों का कैसा आपस में सम्बन्ध क्या २ उनमें हैं और स्वतः प्रमाण तथा ईश्वरोक्त वेद और परतः प्रमाण और ऋषि मुनि कृत ब्राह्मण पुस्तक हैं इन हेतुओं से क्या २ सिद्धान्त सिद्ध होते और ऐसे हुए बिना क्या २ हानि होती है इन विद्या रहस्य की बातों को जाने बिना आप कभी नहीं समझ सकते । संवत्

परा इनमें अपरा यह है कि जिससे पृथ्वी और तृण से लेके प्रकृति पर्यंत पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक ठीक कार्य सिद्ध करना होता है और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल परा विद्या है" निदान स्वामी जी महाराज ने इतना तो लिखा परन्तु सीधा अर्थ व आशय नहीं लिखा कि चारों वेद (संहिता) और उनके छओं अङ्ग अपरा [illegible] परा उनके सिवाय अर्थात् उपनिषद् हैं ।

(९) जान पड़ता है कि स्वामी जी महाराज ने पूर्व मीमांसा ही तक देखा, है उत्तर मीमांसा नहीं देखा नहीं तो ऐसा न लिखते ।

(१०) तो, जहां जहां जिसके पास भाष्य भूमिका जाती है सब के पास स्वामी विशुद्धानन्द और पं० बालशास्त्री जी को जाना चाहिये अथवा उन सबको समझने के लिये दयानन्द जी के पास जाना चाहिये ।

१९३७ मि० वै० व० सप्तमी शनिवार। (दयानन्द सरस्वती *)

तत्पश्चात् वैशाख सम्वत् १९३७ में ऋग्वेदभाष्य अंक १४ यजुर्वेद भाष्य अंक १४ दोनों वैदिक प्रेस काशी में छपकर प्रकाशित हुए और स्वामी जी फर्रुखाबाद चले आये और यहां पहुँचकर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के निवेदन के उत्तर में आपने "भ्रमोच्छेदन" नाम पुस्तक रचा और छपाकर उक्त राजा साहब के पास भी पठाया जिसके बनाये जाने की मिती ज्येष्ठ शुक्ला २ गुरुवार निम्न लिखित श्लोक से विदित होती है।

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुक्रे मासेऽसिते दले।
द्वितीयायां गुरौ वारे भ्रमोच्छेदो ह्यलंकृतः ॥१॥

इस पुस्तक में राजा शिवप्रसाद जी के प्रश्नों का उत्तर लिखने के बदले स्वामी जी ने उनको अनेक कुवचन लिख मारे, जो आगे चलकर देखने में आवेंगे और उनको राजा साहब ने अपने दूसरे पिछले निवेदन में स्वत लिखा है।

स्वामी जी ने फर्रुखाबाद रहते रहते ही एक पत्र अपने शिष्य श्यामजीकृष्ण वर्मा को संस्कृत में लिख लंडन भेजा जिसका उल्था शुद्ध देवनागरी में निम्न लिखित है ॥

नमस्ते। विदित हो कि यद्यपि तुम बावजूद साबित कदमी तरीके वेद और अपनी विद्या के स्तुति योग्य हो परन्तु परम पश्चाताप की बात है कि तुमने अपने पत्र द्वारा बहुकाल से मुझको आनंदित नहीं किया अब मैं आशा करता हूं कि तुम अपने कुशल और नीचे लिखे विषयों के जवाब से मुझको बहु शीघ्र प्रमुदित करोगे।

इङ्गलिस्तान के रहने वाले लोग किस प्रकार के हैं? और उनकी प्रकृति और ढग व चलन कैसे हैं? वहां की पृथ्वी और वायु जल कैसा है? और सामान खाने पीने आदि आराम का वहां किसप्रकार मिलता है? जब से तुम यहां से गये हो तब से तुम्हारी शारीरक आरोग्यता की क्या दशा है? और इङ्गलिस्तान

* राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द अपनी निवेदन नाम पुस्तक में स्वामी दयानन्द जी के वै, व ७ के पत्र के अन्त पर लिखते हैं कि (स्वामी विशुद्धानन्द जी का लिखवाया) राजा साहब के प्रश्नों का उत्तर दयानन्द से नहीं बना ?

में तुम्हारी खास इच्छा पूरी भी होती है * वा क्या ? वहां के लोग किस प्रकार प्रेम रखते हैं और क्या क्या पुस्तकें तुमसे पढते हैं ? तुम्हारी मासिक प्राप्ति और व्यय क्या है ? और तुम्हारे अधीन ग्रन्थों के पूर्वापर अवलोकन करने व विचारने और दूसरों के पढाने का समय क्या २ नियत है ? इसका क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने में आर्य्यावर्त के अनुरूप अभीतक तुम्हारी प्रसिद्धि इङ्गलिस्तान में नहीं फैली? कदाचित् मेरी दूरस्थिति होने के कारण मुझको तुम्हारी प्रसिद्धि के समाचार न मिलते हों ? अथवा इस काम के करने का तुमको अवकाश न मिलता हो यदि इस का कारण द्वितीय है तो अब मेरी प्रबल इच्छा यह है कि जिस वक्त तुम पढाने से निश्चिन्त हुआ करो उस समय वैदिक मत की उन्नति में जिस प्रकार हो वहां खूब यत्न करो पश्चात् यहां चले आओ क्योंकि ऐसे सर्वोत्तम और सर्वोपकारी काम में अपनी प्रसिद्धि करना रुपया पैदा करने से विशेषतर उत्तम है । हमारे मित्र प्रोफेसर मोनियर **विलियम** और **माक्षमूलर** साहवों की वेद और शास्त्रों के विषय में तथा वहां के और विद्वानों की मेरे वेदभाष्यपर कैसी ? क्या ? सम्मति अर्थात् राय है। क्या यह सत्य है ? कि थ्यूसूफिकिल सोसाइटी ने कोई वेदमत की शाखा लन्दन में स्थापित करदीहै, कभी तुमने भरत खंडकी राज राजेश्वरी से भी सन्मान परिचय प्राप्त किया है और कभी पारलीमेंट में भी गये हो ? परम प्रीति पूर्वक इन सब प्रश्नोंका उत्तर अति शीघ्र भेजदो । और वे भी बातें लिखो जिनको तुम अपने निकट लिखने के योग्य समझो । प्रस्तुत मेरा इतनाही लेख बहुत है क्योंकि बुद्धिमानों को संकेत मात्र अपेक्षित होता है न विस्तार । इति । तिथि ज्येष्ठ शुक्ला० ७ मङ्गलवार सम्वत् १९३७ विक्रमी ।

इधर मुन्शी बख्तावरसिंह जी (जिन्होंने केवल ३ महीने की छुट्टी लेकर स्वामीजी का प्रेस चलाया था) काम से जुदा होनेपर उदासी हुये तो खबर पाते ही स्वामी जी ने अपनी निम्न लिखित सारांश की चिट्ठी द्वारा उनका उत्साह बढ़ाया ।

मुन्शी बख्तावरसिंह जी आप आनन्द पूर्वक काम किये जाइये सरकारी नौकरी छोड़ने में जो आपको पिन्शन का घाटा है, उसके पूरा करने का प्रबन्ध हम

* हम नहीं कहसकते कि वह खास इच्छा क्या थी ?

अपने वसीयतनामे में (जो शीघ्र लिखनेका इरादा है) पूरा पूरा कर देगें ।

इस वचन का मुन्शी जी को जब पूरा विश्वास न हुआ तो उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़देनी अनुचित जान और सात महीने की अधिक छुट्टी ले ली ।

जब मुन्शी बख्तावरसिंह जी की सात मासकी अधिक छुट्टी भी पूरी होने पर आई तो स्वामीजी ने एक मायायुक्त निम्न लिखित चिट्ठी निज कर कमलो से लिख निज शिष्य पंडित भीमसेन के पास पठाई ॥

" पंडित भीमसेन जी आनन्दित रहो ।:

अब तुमने ८ दिन पीछे चिट्ठी भेजना बन्द क्यों कर दिया ? बराबर आठ दिन पीछे चिट्ठी भेजाकरो और यह लिखा करो कि इस सप्ताह में इतनी पुस्तकें छपीं और यह यह काम हुआ, और अब क्या होता है ? आगे सप्ताह में कौन २ काम होने वाला है और जब २ चिट्ठी लिखा करो मुन्शी जी से पूछ देखा करो कि इन ८दिनों में कितनी पुस्तकें छपीं और जब २ छपकर तयार हुआ करें सब गिनकर संख्या लिखा करो और मुन्शीजी तो माहवारी आमदनी बिक्री के रुपयों के हिसाब की चिट्ठी लिखते ही हैं तथापि तुम भी बरावर २ सब पूछ लिया करो और मुन्शी जी से कहना कि तुमको कुछ भी शंका न करनी चाहिये आप इस्तीफा सरकारी नौकरी से दे दीजिये जब तक तुम काम करने वाले हो जब तक तुम्हारे शरीर में प्राण हैं और सामर्थ्य है तब तक आनन्द से काम किया करो और पश्चात् भी तुम्हारी सलाह से काम हुआ करेंगे और वसीयत नामा के सभासद सब आर्य्य समाज के हैं किसी प्रकार की हानि उनके लिये न करेंगे और निश्चय है कि मुन्शी जी भी ऐसे नहीं हैं कि धर्म विरुद्ध काम करें, और वसीयतनामे में यह अवकाश रक्खा है कि चाहे जसको रजिस्टरी जितने अधिकार वा धन देने आदि के लिये मैं करा दूगा उसका पूरा करना सभा को अवश्य होगा और अधिक न्यून अदल बदल वा दूसरा वसीयतनामा करनेका अधिकार मैंने अपना पूरा रक्खा है चाहे किसी सभासद को निकाल दूं वा किसी अन्य सभासद को भरती कर दूं इत्यादि नियम इसलिये रक्खे हैं कि जो चाहे सो हम कर सकते हैं ये सभासद मुन्शीजी के सुहृद ही हैं, और सब विद्वान

और धार्मिक हैं किसी के लिए अन्याय की वृत्ति नहीं करते तो क्या मुन्शी जी के लिये अन्यथा प्रवृत्ति करने को उद्यत हो सकते हैं, कभी नहीं क्योंकि धार्मिक लोग सदा धर्मप्रिय और अधर्म द्वेषी ही होते हैं, क्या मैं वा वे सभासद मुन्शीजी को परोपकार के लिये प्रवृत्त हुए नहीं जानते हैं इससे यह पत्र मुन्शी बख्तावर सिंह जी को एकान्त में सुना देना और इस पत्र को अपने पास रक्खा चाहे तो दे देना तुझको यह पत्र इसलिए लिखा है कि तू भी इसका साक्षी रहे और यह लेख मैंने अपने हाथ से इसलिए किया है कि यह बात गुप्त रहे और समय पर काम आवे । हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती*

इस चिट्ठीपर मुन्शी जी ने कुछ भरोसा नहीं किया और छुट्टी के पूरा होते ही स्वामी जी के वैदिक यन्त्रालय से पृथक् हो गये ।

पण्डित गोपालराम फर्रुखाबादी के नाम दयानन्द की एक चिट्ठी की नकल।

† पण्डित गोपालराम जी आनन्दित रहो । मैं आशा करता हूँ कि जो २ बातें करनी आपके लिये नीचे लिखता हूँ सो २ आप यथावत् स्वीकार करेंगे ।

(१) जो "मीमांसकीय सभा" नियत की गई है उसके ५ सभासद निश्चित किये गये हैं एक आप १ बाबूजी २ लाला जगन्नाथ ३ लाला रामचरण ४ आपके लाला निर्भयरामजी ५ और इनकी अनुपस्थिति में क्रमश यथा आपके लाला नरायण दास मुख्तार । लाला हरनारायण पुरोहित । मन्नीलाल । लाला कालीचरण और लाला निर्भयराम के कोई पुत्र अर्थात् तीनो मे से एक जो उपस्थित हो नियत किये गये हैं ।

(२) जहा तक बने और आप उपस्थित हों तो व्याख्यान भी समाज में दिया करें ।

(३) जो मासिक पुस्तक निकलता है वह भी आपके हाथ से बनेगा अथवा बने पर शुद्ध कर देंगे तो भी अच्छा होगा । इति । आषाढ कृष्ण० ८ बुधवार सम्वत १९३७ विक्रमी, (ह० दयानन्द सरस्वती)

---

* यह चिट्ठी आर्य्यदर्पण पत्र संख्या ५ खंड ७ मास मई सन् १८८६ ई० में छपी है ।

† स्वामीजी का मायाजाल और पृपञ्च इस चिट्ठी के लेख से ही विदित होता है।

अब स्वामी जी का भ्रमोच्छेदन पुस्तक काशीपुरी के विद्वानों ने देखा बड़े चकित हुये और स्वामी जी की विद्वत्ता पर परम उपहास्य किया, अनेक प्रकार के लेख पुस्तकादि इनके प्रतिकूल लिखे गये जिनमें से लोक रावण और प्रबोध निवारण इन दो पुस्तकों की भूमिका यहां प्रकाशित की जाती है, जिसके देखने से स्वामी जी की विद्या और बुद्धि का भी परिचय हो जायगा।

॥ लोकरावण भूमिका ॥



पन्यद्योतित आदि लिखे दस विशेषण विलसित अर्थात् वराह समान आकार और चरित्र का एक कोई भिक्षुक भेषधारी काशी में आया उसकी यह गजब धृष्टता और चाह कि यहां के विद्वान मुझसे शास्त्रार्थ करें। यह सुन भारत राजकुल रत्नायित आदि ६ विशेषण युत काशी नरेश ने कहा कि मेरी इस विदुष्मती काशी में आकर बैठा पंडितमन्य नास्तिक यदि यहां से विमुख गया तो मेरी बड़ी भारी अपकीर्ति होगी अतः सम्वत् २६ के कार्तिक शुक्ला १२ मंगलवार के दिन सायंकाल के समय घटिका द्वय मात्र में पंडितों से मुंडी के प्रश्नों का उत्तर और करतालि दिलवा कर (जन करतालि बहुलो सभा विसर्जन कवत राजा) जीत बताते घर आये जनक समान राजा ईश्वरीप्रसाद नारायणजी ॥लिखित पाठ + *अन्धीत शास्त्र + अवशिष्ट साहसमा + गर्हणा पात्र + वेदूमेच्छता + मुद्रमुंडी द्वारा तो भी बाली के भांति देशान्तरों में घूमता अपनी जीत बताता हुआ वह अमरीका वालों के साथ फिर एक बार काशी में आया तहाँ किसी बाग में बैठा हुआ था कि इतने में वहाँ जगत् विख्यात् यश कर्नल अलकाट से मिलने चतुर शिरोरत्नायित राजा शिवप्रसाद गये। उन्होंने वहां इसके मत और मति की परीक्षा वेद व ब्राह्मण शब्दार्थ के बहाने से की, मुँडी की बात चीत बहुत भद्दी थी परन्तु प्रवचन प्रपञ्च चातुरी को लिये मदान्ध करे तो राजा शिवप्रसाद बोले कि यों मुझ मदमतों के समझ में विना लिखे नहीं आने की * मुंडी ने भी स्वीकार किया परन्तु पत्रोत्तर उसके कपट कौटिल्य, निंदा मात्सर्य और अभिमान से भरे हुये थे ‡ तो भी राजा नम्र

* राजा शिवप्रसाद का आदि निवेदन इस पुस्तक में प्रथम लिख चुके हैं,
‡ थोथा चणा बाजे घणा, अथवा अधूरे जल के घट छल ‡ अब तो स्वामी जी का

रहे और उन्होंने निवेदन नाम का पुस्तक छपवा कर उसके और सर्व आर्य्य समाजियों के पास भेजी इसने उसके उत्तर में भ्रमोच्छेदन (वस्तुत भ्रमोत्पादन) छपवाया । उसमें सपथ लिखी कि अत पर मैं कभी काशी के किसी विद्वान पंडित से शास्त्रार्थ न करूंगा * इसने यह उचित ही किया अब यह फारसी और अंग्रेजी पढ़े हुए मूर्खों को बहकाता फिरता है । मेरे चित्त को इसकी वेद प्रतारणा दुखाती है एतदर्थ मेरा यह सब उद्योग है अन्यथा मेरी इस क्षुद्र के साथ क्या महिमा थी, सिंह, शशक व मशकों से कभी नहीं भिड़ता, परन्तु उसका जातीय स्वभाव यह है कि वह विपक्षी को देख नहीं सकता तद्वत् भ्रमनिवारणार्थ इस वादानर्द के साथ मेरी यह प्रवृत्ति जानिये । इति लोक रावण भूमिका ॥ †

॥ अबोध निवारण की भूमिका ॥



बड़े आश्चर्य्य की बात है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत वाक्य प्रबोध नामक ग्रन्थ को केवल इसी प्रयोजन से बनाया है कि साधारण जनों को संस्कृत का बोध हो और कुछ बोल चाल आवे । पर उस छोटी सी पुस्तक में इतनी अशुद्धिया हैं कि कदापि सर्व साधारण लोगों का उपकार उसमे नहीं हो सकता, हा इतनी बात तो हो सकती है कि जिन लोगों को कुछ आता है सो भी भूल जायेंगे । जब कि यह पुस्तक उसी प्रयोजन से बनाई गई है और उसमें इतनी अशुद्धिया भरी हैं तो वेदभाष्यादि पुस्तकों की शुद्धता इतने ही से जान लेनी चाहिये । वेदों का नवीनार्थ तो स्वामी जी ने व्याकरण ही की सहायता से किया है और जब उसी की यह दशा है तो कैसे उनके अर्थों पर विश्वास हो सकता है ? अब इस पुस्तक में शब्दाशुद्धि अर्थाशुद्धि और अनुवादाशुद्धि इतनी हैं कि कोई कहा तक लिखे पर हमारे मित्र पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने कुछ थोड़ी बहुत यहा दिखलाई हैं, जिससे पाठक गणों को सम्पूर्ण ग्रंथ का भाव जान पड़ेगा पाठकों को उचित है कि पक्षपात और द्वेष भाव को छोड़ कर सत्यासत्य का विचार करें, तो

---

* काशीपुरी में आर्य्य समाज स्थापित होगया यन्त्रालय खुल गया सम्पूर्ण मनोकामना पूरी होगई बस अब काशी के विद्वानो से शास्त्रार्थ करके और क्या लेना है ?

† यह भूमिका दयानन्द दिग्विजय में छप चुकी है ।

शीघ्र ही स्वामी जी की विद्वत्ता प्रकट हो जायगी। भला मैं स्वामी जी से ही पूछता हूँ कि क्या इसी विद्या पर आप राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की निन्दा करते हैं * और वृथा अपनी प्रसिद्धि के लिये काशी के प्रसिद्ध पण्डितों से शास्त्रार्थ करने को ललकारते है ?

आपके बल का ज्ञान पंडितों को इतने ही से हो गया। बस इतना ही आपको कहते हैं कि यदि कुछ विद्या रखते हैं और अपने को पंडित लगाते हैं तो इसका प्रत्युत्तर देकर अपने लेख को शुद्ध ठहराइए और इस अकीर्ति को मिटाइए और यदि आप सच्चे देशहितैषी हों तो इन स्वरचित अशुद्ध पुस्तकों को नदी में फेंकवादीजिये अथवा अग्नि देवता को समर्पण कर डालिए जिससे उनके पढ़ने से संसार में दिनों दिन अबोध की वृद्धि न हो० अब आपको अधिक क्या समझावें आप स्वयं बुद्धिमान हैं। प्यारे पाठकगण ! मुझको आशा है कि स्वामी जी लोकोपकार में बहुत दृष्टि रखते हैं इस लिए लोकाबोध निवारक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी को (जिन्होंने उनके ग्रन्थ का शुद्धि पत्र बनाया) शतश धन्यवाद देंगे और कृतज्ञों की नाईं उनका परमोपकार मानेंगे। परंतु यदि दैवात् वे अपनी अशुद्धियों को व्याकरण से शुद्ध करने के अभिप्राय से कोई पत्र प्रकाश करें तो उनको उचित है कि जैसे मैंने इस लेख में स्वामी दयानन्द जी ऐसे ऐसे उत्तम शब्दों ही का प्रयोग किया है, वैसे ही वे भी उत्तम शब्दों ही को लिखेंगे। और यदि इतने पर भी वे गाली प्रदान करेंगे तो हम लोग समझ लेंगे कि (ददतु ददतु। गालीर्गालिमन्तो भवन्त) और यदि इस शुद्धाशुद्ध के विषय में स्वामी जी कुछ विवाद करना चाहें तो इधर से काशीस्थ संस्कृत पाठशालीय दर्शन शास्त्राध्यापक पंडित राममिश्र शास्त्री जी मध्यस्थ माने जाते हैं वे भी चाहे जिस पंडित को मध्यस्थ मान के लेख द्वारा शास्त्रार्थ करें उनके सब संदेह मिटा दिये जायेंगे। जो सच पूछिए तो वास्तविक और उत्तम बात तो यह है कि इस को देख कर दयानन्द जी कुछ शोक और लज्जा न करें क्योंकि हाथ ही तो है भूल गया मनुष्य ही तो हैं भूल गए उनका इतना ही लिखना बहुत है।

– कश्चिदपक्षपाती देशहिताभिलाषी–रामकृष्ण वर्म्मा।

* देखो भ्रमोच्छेदन की भूमिका।

पूर्वोक्त भूमिका ३ पृष्ठ पर समाप्त होकर पृष्ठ ५ से पृष्ठ १८ पंक्ति १८ तक प्रथम प्रकरण में व्याकरण की भूल दिखलाई है जिनको हम ग्रन्थ बढ़ जाने क भय से पूरा नहीं लिखते जिसको देखना हो भ्रमोधनिवारण नाम काशी भारत जीवन प्रेस का छपा पुस्तक देख ले। पृष्ठ १८ पंक्ति १८ से आगे पृष्ठ १९ पंक्ति ३ तक यह लिखा है।

पाठकगण ! अब आप लोग प्रथम प्रकरण तो देख चुके और इसमें स्वामी जी की विद्वत्ता निस्सन्देह आप पर प्रकट हुई होगी अब तनिक दूसरे प्रकरण की ओर भी दृष्टि दीजिए तो जान पड़ेगा कि स्वामी जी ने क्या क्या रंग दिखाए हैं"

पृष्ठ २१ से २२ तक दूसरा प्रकरण तथा २३ से २४ तक चितौनी उन की नकल इस प्रकार है।

दूसरा प्रकरण।



प्रथम प्रकरण में तो व्याकरण की अशुद्धिया दिखायी गई अब इस प्रकरण में अर्थाशुद्धिया और अनुवाद की अशुद्धिया कुछ थोड़ी सी लिखी जाती हैं क्योंकि प्राय सभी पृष्ठों में तो अशुद्धियाँ भरी हैं कोई कहाँ तक उनको दिखलावे। पाठकों को पढ़ते ही जान पड़ेगा कि कैसी विद्या और बुद्धि स्वामी जी ने अनुवाद करने में लगाई है। जैसे चार दो चावलों के देखने से थाली भर के चावलों का पता लगा लेते हैं, वैसे ही कतिपय अशुद्धियों को देख कर ग्रन्थ भर का वृत्तान्त सब कोई जान लेंगे देखिए—

१ ८, (शरीर शुद्ध कर के ईश्वर ज्ञान के लिये सन्ध्योपासन करो), इस की संस्कृत स्वामी जी लिखते हैं कि शौचादिक कृत्वा सन्ध्यामुपासीरन्) हा ! बड़ा आनर्थ है, देखिये तो "ईश्वर ज्ञान के लिये" इसकी सस्कृत क्या लिखी है ? कुछ नहीं, दूसरे आप ही लोग कहिये पाठकगण "उपासना करो" इसकी सस्कृत क्या यही है कि "उपासीरन्" ऐसे ऐसे विषय के स्पष्ट करने में लेखनी को बहुत परिश्रम देना व्यर्थ है, इतने ही में समझ जाइये कि जिसने लघुकौमदी भी पढ़ी होगी उसको भी इसका पूर्णतया विवेक होगा ॥

५, १६ (आजका) इस हिन्दी की सस्कृत (नित्य) लिखी है ॥

६, २ (शाक, दाल, कढी, भात, रोटी, चटनी आदि) इसका अन्था लिखा है कि (शाकसूपौदधिकौदनरोटिकादय) भला और जो गडबड है सो तो हो है चटनी कहां से निकाली ? हा ! यदि स्वामी जी ने आदय को आदी की चटनी समझा हो तो आश्चर्य्य नहीं ॥

१४,१ (गुड का क्या भाव है) इसकी संस्कृत (गुडस्य को भाव) लिखी है, वाह क्या उत्तम संस्कृत है । यदि मुझसे कोई पूछे कि गुडस्य को भाव, तो मैं तो यही कहूँगा कि गुडत्वम् ॥

१४,२ आने की संस्कृत आना लिखते हैं वाह इसी प्रकार लोटे की संस्कृत लोटा बना डालिये ॥

७५,१९ (ऊपर को श्वास चलने से) इसकी संस्कृत लिखते हैं कि (ऊर्द्ध-श्वासंत्रात) अहा ! हा !! हा !!! कोई कैसी भी चिता में बैठा हो इस उल्थे के सुनते ही हस पड़ेगा । मैं अब क्या लिखूं मेरी लेखनी तो इस समय हास्यरस में डूब रही है । समझ जाइये "किमज्ञात सुबुद्धीनाम्"

३४,६ (जले पात्रे चक्षुर्निक्षिप्य विनाशितम) इसको पाठक गण शुद्ध कर लेवें । इत्यादि ॥ । बहुत हुआ इतिशम ॥

॥ चितौनी ॥

स्वामी दयानन्द जी से विनय पूर्वक प्रार्थना है कि वे अपने इन अशुद्धियों के प्रकट किए जाने से कदापि अप्रसन्न न हों प्रत्युत उनको यह उचित है कि इन सब अशुद्धियों को व्याकरण से शुद्ध ठहरावें और न कि अपने वृथा विश्वासी शिष्यों के प्रचारणार्थ एक दो को मूठ मूठ रफू कर कोरा घोप मचावें । यह बात भी स्मरण रखने के योग्य है कि भक्षित्वा और चित्वा आदि अशुद्धियों का समाधान कहीं "चिन्नोति पठितव्ये इतिकरणाच्चिच, पाक्षिकत्वे लिङ्गम" से न करें नहीं तो मने ही शङ्खध्वनि हो क्योंकि यह सब समाधान तो सति शिष्ट प्रयोगनिर्वाहार्थ होते हैं और न कि मुँह से निकला लभति और आप आमद कर बैठे कि "अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्" और चर्मासिष्याम तो लिखें पर जब कोई टोके तो कहें कि पाणिनि जी ने भी तो "इक्गोगुणवृद्धी" लिखा है । यदि ऐसा ही हो तो आप यह भी कह देंगे कि जब द्रौपदी के पाच

पति थे तो आज भी स्त्रियों को दश पति होना चाहिये, और फिर आपको क्या, आप तो अपने ऋग्वेद के बकवाद में लिख ही चुके हैं कि प्राय एकादश पति होनेतक कुछ भी चिन्ता नहीं है, वाह !!! क्या कहना है आप ही की लेखनी तो है जब चली तब चली जो कुछ आया आख मूंद के लिख मारा। और यदि "प्रातः कुक्कुटा भुवन्ति" अथवा "हरयो हर्षन्ति" के समाधानमें आप धातूनामनेकार्थत्वम् कहें, तो फिर हम यों कहेंगे कि "स्वामिन शब्दायन्ते विद्वासश्च हसन्ति" का अर्थ यह है कि स्वामी जी व्याख्या देते हैं और विद्वान् लोग सुनके कृतार्थ होते हैं। हमारो यह प्रार्थना है कि जो कुछ वे उत्तर दें सो व्याकरण से हो और विद्वानों की नाई लिखें न कि "मुखमस्तीति वक्तव्य दशहस्ताहरीतकी" अथवा वेद की व्याख्या करते २ कहीं रेल जो याद आई तो बोले कि हव्य अर्थात् यान, वह वहति प्रापयतीति विद्युदादिभिर्युक्तोऽग्नि" *

॥ इत्यलमति पल्लवितेन ॥



तारीख ८ जौलाई सन् १८८० ई० को मेरठ आर्य्यसमाज के सभासदों की प्रार्थनानुसार स्वामी जी फर्रुखाबाद से चले और मेरठ पहुचकर मुन्शी राम शरणदास जी की कोठी में (जो छावनी मेरठ में है) डेरा जमाया और अपना एक "बसीयतनामा" + लिख रजिष्ट्री कराया, और उसमें मुन्शी बख्तावरसिंह का कुछ जिक्र नहीं लिखा, और यह समाचार सुनकर उक्त मुन्शी बख्तावरसिंह जी विचारने लगे कि भला हुआ मैने सरकारी नौकरी नही छोडी यदि धोखे में आनकर छोड देता तो इस समय कितना बडा कष्ट सहना पडता।

जब स्वामी जी मेरठ में विराजमान थे तो यह समाचार मिला कि मुन्शी

* इस अशेष निराकरण पुस्तक को देख स्वामी जी ने यह कहा कि यह पुस्तक (वाक्य प्रबोध) भीमसेन ने लिखा था और मैंने विना देखे छपा दिया इस कारण अशुद्धियां रह गई होंगी॥

+ इस वसीयत नामे की नकल सरकारी तौर पर तो अनेक यत्न किये गये मिली नहीं और समाजी वा अन्य किसी प्रकार के मनुष्यो के पासहै नहीं इसलिये हम यहां लिखने से लाचार रहे।

इन्द्रमणि प्रधान आर्य्यसमाज मुरादाबाद की बनाई * पुस्तकों से दुखित होकर मुसल्मानों ने २२ जौलाई सन् १८८० ई० के दिन मजिष्ट्रेट मुरादाबाद की कचहरी में नालिश की और मजिष्ट्रेट महाशय ने २४ जौलाई के दिन मुन्शी इन्द्रमणि को दोषी ठहरा कर पांच सौ रुपया जुरमाना किया और उन की रची पुस्तकें तल्फ (नष्ट) करा दी गईं । जब ये समाचार भारत वर्ष में फैले और उक्त मुंशी जी के इष्टमित्र तथा अन्यन्य हिन्दू लोगों तक पहुँचे तो उन को बड़ा दुःख हुआ तन मन धन तीनों द्वारा सहायता को उनमी हुये । इधर स्वामी दयानन्द जी ने भी समय को अनुकूल जान सम्पूर्ण आर्य्यसमाजों से लिख भेजा कि इस समय मुन्शी इन्द्रमणि जी की धन द्वारा सहायता करना सम्पूर्ण आर्य्य गण तथा हिन्दू मात्र का परम धर्म्म है और मुन्शी इन्द्रमणि जी को प्रथम तार (टेलीग्राफ) पुनः चिट्ठी द्वारा मुरादाबाद से मेरठ बुला कर कहा कि हमने आपके झगड़े में सहायता देने के लिये चन्दा एकत्रित करने का प्रबन्ध किया है, जो कुछ रुपया देशान्तर से आवेगा लाला रामसरणदास रईस मेरठ के पास जमा होगा और आप आवश्यकता होने पर उन से ले सकोगे, इस बात को मुन्शी जी ने भी स्वीकार किया और चन्दा खोला गया ।

इसी अवसर पर लाला ठाकुरदास भाभड़ा गुजरान्वाला निवासी ने स्वामी जी के "सत्यार्थ प्रकाश" द्वादश समुल्लास में लिखे हुए लेख से अप्रसन्न होकर एक चिट्ठी स्वामी जी के नाम आषाढ कृष्णा ११ सम्वत् १९३७ को लिख शहर आगरे पठाई जिसका सारांश यह है कि "आपने जो लेख निज रचित पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" के पृष्ठ३९६ से लेकर जैन धर्म्म सम्बन्धी लिखा है कृपा कर यह बतलाओ कि यह लेख आपने जैन धर्म्म के किस शास्त्र से लिया है ? क्योंकि यह लेख जैन के किसी भी ग्रन्थ में नहीं है, और मिथ्या लिखना विद्वानों को उचित नहीं, इस चिट्ठी का स्वामी जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब लाचार ठाकुरदास ने आषाढ़ शुक्ल १ को एक और चिट्ठी स्वामीजी के नाम आगरे पठाई । जिस में ये श्लोक लि

* मुन्शी इन्द्रमणि ने सन् १८८० ई० में समसाम हिन्द १ तुहमले हिन्द २ पादाश इसलाम ३ शाहरूल हिन्द ४ मजहए दीन अहमदी ५ यह पांच पुस्तकें छपाई थी । जिनमें झगड़े की जड़ हमले हिन्द ही थी ।

रखकर (जो स्वामी जी ने "सत्यार्थ प्रकाश" में जैन ग्रन्थों के बतलाये हैं यह भी लिखा था कि यह चिट्ठी बतौर नोटिसके है यदि मेरे प्रश्नका यथार्थ उत्तर न दियातो मुझको अदालत में तौहीन मजहब की नालिश करनी पड़ेगी जिसमें आपको विशेष क्लेश उठाना पड़ेगा इत्यादि० ।

पाया जाता है कि पूर्वोक्त दोनो चिट्ठी आगरे होकर स्वामी जी के पास मेरठ पहुँची जिनके उत्तर में स्वामी जी ने आनन्दीलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ के नाम से जो कुछ लिखवाया उसमे ठाकुरदास के किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं था किंतु विशेष यही भरा था तुम मूर्ख हो झगडालू हो तुमको लिखना पढना नहीं आता स्वामी जी ने जो कुछ लिखा सत्य लिखा है, खबरदार चुपके होजाओ यदि न मानोगे अदालत से सीधे करदिये जावोगे इत्यादि० ।

मिती श्रावण कृष्णा० ५ सम्वत् १९३७ *

जब मुन्शी इन्द्रमणि के झगडे की सहायता के लिये चारो ओर से द्रव्यका आगमन प्रारम्भ हुआ तो स्वामी जी की नियत बदल गई और उस सम्पूर्ण द्रव्य को निजाधीन कर लेने का विचार किया । और मुन्शी इन्द्रमणि जी ने अपील करने की गर्ज से छ सौ रुपये का एक बैरिष्टर वकील नियत कर उस के देने के लिये लाला रामसरणदास से कहा चार सौ रुपया मेरे पास हैं यदि आप आये हुये रुपये में से दो सौ दे देवें तो कार्य्यसिद्धि हो इस पर लाला रामसरणदास ने कहा "यहाँ से तो अभी तुमको कुछ भी नहीं मिलेगा मुरादाबाद से ही तदबीर कर के भेज दो ।

मुन्शी बख्तावरसिंह मेनेजर वैदिक यंत्रालय काशी अपने जौलाई सन् १८८० ई० के आर्यदर्पण में लिखते हैं कि अभी तक आर्य्यसमाज फीरोजपुर व अमृतसर व लाहोर व जेहलम व रावलपिंडी व कानपुर व प्रयाग व दानापुर वगैरह से करीब चार हजार के चन्दा मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमे के लिये जमा हो चुका है और बहुधा ग्राम नगरों में हो रहा है ।

इसी अवसर पर पण्डिता रमाबाई । जो दक्षिणी ब्राह्मणी और लंदनादि बड़े

---

* यह तीनों चिट्ठी पूर्ण रूप विस्तार सहित पुस्तक "दयानन्द मुखचपेटिकामें छपी हैं ।

बड़े शहरों में घूमकर प्रसिद्ध होगई है, संस्कृत विद्या में अच्छा योग्यता रखती है) स्वामी जी से मिलने को आई, बाबू छेदीलालकी कोठी पर ठहरी, स्त्री शिक्षा के विषय में चार पांच व्याख्यान बड़े समारोहके साथ दिये, दो सप्ताह के लगभग मेरठ में रहकर देहली होती हुई निज देश को चली गई, स्वामी जी ने निज रचित "सत्यार्थ प्रकाश"—"सन्ध्या"—"आर्य्याभिविनय", आदि अनेक पुस्तक और आर्य्य समाज से १२५) रुपये नकद और १०) रुपये का एक थान चलते समय भेंट किया था।

श्रावण सम्वत् १९३७ में ऋग्वेदभाष्य अंक १५ यजुर्वेद भाष्य अंक १५ ये दोनों छप कर प्रकाशित हो गये।

जो पत्र आनन्दीलाल मन्त्री आर्यसमाज मेरठ ने स्वामी जी की आज्ञा से श्रावण कृष्णा ५ को ठाकुरदास के पास भेजा था उसका उत्तर श्रावण शुक्ला १ सं० १९३७ को ठाकुरदास ने आर्यसमाज गुजरानवाला की मारफत भेजा जिसका खुलासा इस प्रकार है।

वाह जी ! खूब उत्तर लिखा दूसरे की बुराई अपनी बड़ाई लिखी सो तो ठीक परन्तु हमारे इस प्रश्न का भी तो कुछ उत्तर लिखा होता कि स्वामी जी ने "सत्यार्थप्रकाश" में द्वादश समुल्लास में किस जैन शास्त्र से लेकर लेख लिखा है, जैन की दिगाम्बर श्वेताम्बर दो प्रसिद्ध शाखाओं में से किस शाखा के जैनी से यह सुना था अथवा व्यर्थ कागज काले किये अथवा आपकी समझ में जैन की कोई और तीसरी भी शाखा है उत्तर के बदले व्यर्थ अभिमान की बात लिखना योग्य नहीं इत्यादि०।

जब मुन्शी इन्द्रमणि जी ने विचारा कि मेरे नाम से द्रव्य एकत्र कर स्वामी जी आप उड़ाया चाहते हैं। तब तो उन्होंने शीघ्रता के कितनेक समाचार पत्रों में यह छपा दिया कि जिन महाशयों को मेरी सहायता के लिये रुपया देना हो वह सीधा मेरे पास पठावें और स्थानों का भेजा हुआ द्रव्य मुझको नहीं मिलता।

इसके व्यतिरिक्त मुन्शी जी ने स्वामी जी को भी अनेक पत्र इस विषय के लिखे कि मुझको रुपया नहीं मिलता यह कार्य्य आपका अत्यन्त ही निन्दनीय है, इस पर कुछ सोच समझ स्वामी जी ने मुन्शी जी को निम्न लिखित पत्र पठाया था।

मुन्शी इन्द्रमणि जी आनन्दित रहो ।

आपके दो तीन पत्र आये हाल मालूम हुआ, पजाब के ढाई सौ या तीन सौ रुपये आपके पास स्यात् पहुचे होंगे । आज हम यहा के सभासदों से दरियाफ्त करेंगे कि रुपये भेजे या नहीं, अगर नहीं भेजे होंगे तो हम भिजवाते हैं. चार दिन हुये कि इसी वक्त हमने उनसे कह दिया था कि रुपये भेज दो अढाई सौ रुपए यहा हैं और सौ रुपये लाला शामेलाल के ओर पजाब और फर्रुखाबाद से भी आते हैं सब मिलकर सात सौ रुपए होगए खूब होशियारी से काम करना, मिती भाद्रपद कृष्णा ६ गुरुवार सम्वत् १९३७ स्थान मेरठ ।

(दयानन्द सरस्वती)

इसके अगले दिन आनन्दीलाल मत्री आर्य्यसमाज मेरठ ने दो सौ रुपए के नोट एक निज पत्र के साथ (जिस मे लिखा था कि यह द्रव्य आपके झगडे की सहायता के लिये है) मुरादाबाद मुन्शी जी के पास पठायें, परन्तु लिफाफा डाक में डाल देने के पीछे ही कुछ मन में कपट ने प्रवेश किया तो अगले दिन भावार्थ २८ अगस्त सन्, १८८० ई० को एक दूसरा पत्र इस विषय का लिखा कि दो सौ रुपये के नोट वेद भाष्य की सहायतार्थ फर्रुखाबाद भेजने थे, हमारी समाज के चपरासी की भूल से तुम्हारे पास चले गए कृपा कर उनको मेरठ ही भेज दो सो मुन्शी जी ने पत्र के पाते ही शीघ्र लौटा दिये ।

प्यारे पाठकगण ! टुक विचार करना चाहिए - चपरासी की भूल से इतना हो जाना तो सम्भव है कि फर्रुखाबाद के लिफाफे में मुरादाबाद का पत्र और मुरादाबाद के लिफाफे में फर्रुखाबाद का पत्र रख दे, परन्तु यह तो देखो कि उस लिफाफे में जो चिट्ठी थी उसमें यह भी क्या चपरासी ने ही लिख दिया था कि यह नोट तुम्हारे झगडे की सहायता में लाहौर से आए थे सो भेजे जाते हैं, ? इत्यादि० ।

सितम्बर सन् १८८०, ई० में कर्नल अलकाट साहब और मैडम ब्लिवटस्की शिमले जाते हुये मेरठ में स्वामी जी से फिर मिले तो मैडम साहब ने बहुधा प्रतिष्ठित मनुष्यों के सामने ईश्वर के मानने से इन्कार किया और स्वामी जी उनके खडन करने पर उद्यमी हुए थे परन्तु बात अधूरी रह गई, और खडन मडन

तो कुछ भी न हुआ किंतु स्वामी जी और कर्नल अलकाट के मध्य अप्रीति का अङ्कुरारोपण हो गया ।

स्वामी जी के मेरठ में रहते रहते मेरठ के आर्य्यसमाज ने एक निम्न लिखित विज्ञापन मुन्शी इन्द्रमणि जी के झगड़े सम्बन्धी प्रकाशित कराया था ।

विज्ञापन दिया हुआ आर्य्यसमाज मेरठ का ।

विदित हो कि जो विक्रम सम्वत् १९३७ तदनुसार सन १८८० ई० में मुन्शी इन्द्रमणि जी रईस मुरादाबाद का मुसलमानों से विवाद होकर मुन्शी जी पर ५००) मजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने जुरमाना किया तब उस पर आर्य्य जनों ने उस मामले को अपना समझ सहाय की थी वह मामला तभी हो चुका था परन्तु मेरठ में उस समय इसके लिये यह नियम नियत किया गया था कि मुन्शी जी के मुकद्दमें में जितना धन बचे वह अच्छे प्रतिष्ठित साहूकार के यहां ॥) ब्याज पर रक्खा जाय जब कभी ऐसा ही किसी अन्य वैदिक धर्मावलम्बी आर्य का अन्य मत वादियों से धर्म विषय का विवाद होके कचहरी में मुकदमा जाय तब उसकी सहायता इस धन से हो और मुन्शी जी ने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी आदि के सन्मुख मेरठ में स्वीकार कर लिया था परन्तु शोक का विषय है कि उक्त मुन्शी जी ने ऐसे उत्तम नियम को तोड़ा अब हिसाब नहीं देते और उलटा चोर कोतवाल को डाटे इसके सदृश लाला रामशरणदास रईस मेरठ और स्वामी दयानन्द सरस्वती पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं इसकारण मेरठ आर्य्यसमाज को आय व्यय का हिसाब प्रकाश करना पड़ा जिससे मिथ्या भ्रम जैसा मुन्शी जी को हुआ वैसा किसी अन्य आर्य्य पुरुष को नहो और मुन्शी इन्द्रमणि जी का सत्यासत्य यह हिसाब और मुन्शी जी के विज्ञापन को देखकर सब पर प्रकट हो जायगा, मुन्शी जी लिखते हैं कि बहुत आर्य्य जनों ने मेरे मुकदमे की सहायता में मेरठ समाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास धन भेजा था उसमें केवल ६००) रु० मेरे पास पहुँचे बाकी उनके पास रहे, परन्तु इस मेरठ के मितीवार क्रमानुसार हिसाब देखने से निश्चय होता है कि मुन्शी जी के पास यहां के मामले में ९६३॥।-)॥ मेरठ समाज से पहुँचे हैं न जाने मुन्शी

जी ने केवल ६००) रु० पाना क्यों अपने विज्ञापन द्वारा प्रकाश किये इस बात से तो मुन्शी जी की अति असत्यता प्रकट होती है, यदि मुन्शी जी का कथन सत्य है तो इन रुपयों के सिवाय लाला रामशरणदास वा स्वामी जी के पास किसी ने और रुपए भेजे होय और उनके पास उनकी हस्ताक्षरी सहित रसीद होय शीघ्र प्रकाश करें अथवा करायें क्योंकि साँच को आंच कहा और मुन्शी जी ने हिसाब के छपवाने में धोखा किया वा और ही कुछ राग गाने लग तो यह उनके लिये पूरा कलङ्क है इसके निवारणार्थ उनको अवश्य चाहिए कि जब जब जितना २ खर्च हुआ है यथावत् मितीवार छपवा देवें और शेष धन आर्य्यसमाज मेरठ में सर्वोपकारार्थ भेज दें पूर्व स्वीकृत नियम को भी सत्य करें तो बहुत अच्छी बात है नहीं तो रुपए गए हुए आ भी जाते हैं, परन्तु धर्मयुक्त कीर्ति गई हुई कभी नहीं आती (सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते) सत पुरुष को मरण से अपकीर्ति बहुत बुरी समझनी चाहिये, यदि हमारे आर्य्यजनों में विशेष कर उपदेशकों का आरम्भ से मृत्यु तक एकसा सत्याचरण रहे तो देश की बड़ी ही उन्नति हो। सर्वशक्तिमान परमात्मा आर्य्यावर्त देश पर कृपा करे जिस से हमारे आर्य्यावर्तीय उपदेशक अपने किये हुये उत्तम उपदेश को लोभादि दोषों से कलंकित न करके आद्योपान्त पर्य्यन्त शुभाचरण से देश की सुदशा बढ़ाया करें। अलमितिविस्तरेण बुद्धिमुद्वर्येषु ॥ पण्डितजीवनमानन्द ॥ विक्रमी सम्वत् १९३७ तदनुसार सं० १८८० ई० ।

नकल हिसाब जो कि मेरठ के समाज और मुन्शी इन्द्रमणिजी के विषयका है।

जमा चन्दा कुल रुपया १५१६) आर्य्यसमाज मुलतान ३०) मेम्बरान क्याम्मा १०५) आर्य्यसमाज लाहौर ११५) आर्य्यसमाज रुड़की १००) आर्य्यसमाज अमृतसर ५०) आर्य्यसमाज फीरोजपुर २२३॥≡) आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद १००) आर्य्यसमाज गुरदासपुर १५०॥–) आर्य्यसमाज जेहलम १००) लाला केवलकृष्ण ११) लाला रुकनराय व लाला मुरलीधर औरंगाबाद से १३८॥) पांडे रामदीन सेकिंडमास्टर दार्जिलिंग १३६।||) आर्य्यसमाज मेरठ २४५॥) इस रकम में मेरठ शहर के और मेरठ के जिला के तीन चार महापुरुषों का जो समाज के मेम्बर नहीं हैं चन्दा शामिल है, । खर्च कुल रुपया

९६३॥।=)॥। रजिष्टरी मुंशी इन्द्रमणि जी के पास भेजी ता० ७ अगस्त सन् १८८० ई० ।)॥ दिये मुन्शी इन्द्रमणि जी को मा० लाला श्यामसुन्दरलाल रईस मुरादाबाद के तारीख ७ अगस्त सन् १८८० ईसवी, ३००) किराया रेल गाड़ी मेरठ से मुरादाबाद तक चार आदमियों का तारीख १४ अगस्त सन् १८८० ई० ११।) किराया रेलगाड़ी का बरेली से मेरठ और बरेली से मुरादाबाद तक ६) लाला शादीराम के खत का महसूल जो इलाहाबाद से आया ।=) किराया गाड़ी जो हुल साहिब वैरिष्टर के पास मेरठ जाते समय दिया गया ता० १४।८।८० ई० ॥) मुकद्दमें पहिले में खर्च हुआ ७३) मुकाम मुरादाबाद इसका हाल मुन्शी जी को मालूम है, १७≡)। खर्च खानगी मेरठ से इलाहाबाद तक ता० ६ सितम्बर सन् १८८० ई० । ३०७) बजरिये नोट के मुन्शी जी के पास भेजे गए १।=) रजिष्ट्री खत का महसूल, ३००) बजरिए हुन्डी के मुन्शी जी के पास भेजे गए १॥) हुन्डियावन दिया गया ३०।१०।८० ई० ३॥) किराया रेल मन्दू नौकर मेरठ से अलीगढ़ तक मय वापिस खुराक के ≈) मुन्शी इन्द्रमणि जी के खत का महसूल, ५५२।=)। बाकी रहा, यह रुपया त्रैराशिक के हिसाब से ऊपर लिखे चन्दा देने वालों को मेरठ समाज ने उनकी इच्छानुसार फेर दिया।

ला० ठाकुरदास गुजरानवाला निवासी के श्रावण शुद्धा १ सम्वत् १९३७ के पत्र का उत्तर ७३ दिन तक कुछ नहीं मिला तो तारीख ३० अगस्त सन् १८८० ई० को एक और पत्र रजिष्ट्री करके दयानन्द के पास भेजा उसका सक्षेप विषय यह है कि आप हमारे प्रश्नों का यथार्थ उत्तर नहीं देते, प्रथम तो चुप बैठ जाते हैं जब अधिक लिखता हूँ तो दूसरों को भिड़ाते हैं यह उचित नहीं मैं आनन्दीलाल से कुछ नहीं पूछता हूँ जो कुछ उत्तर देना है सो आप खत देवें, इत्यादि, इत्यादि,

जब यह पत्र स्वामी जी को मेरठ में मिला तो इसका उत्तर भी स्वामी जी ने आनन्दीलाल मंत्री आर्यसमाज के तरफ से भिजवाया जिसका साराश यह है कि आपके लेखों को देख २ मुझे आश्चर्य होता है आप पुन पुन पिष्ट पेषणवत् श्रम क्यों करते हो इस समय गुजरानवाला में आत्माराम जी उपस्थित हैं उनको स्वामी जी के सन्मुख करो जिससे सत्यासत्य का निर्णय हो जायगा, आप

लोग अपने धर्मग्रन्थों को गुप्त रख कर अपने आपको संसार में निन्दनीय ठहराए हुए हो, उनका भाषामें अनुवाद कराकर क्यों नहीं प्रकाशित कराते वाममार्गियों के सदृश क्यों छिपाते हो ? पूर्वोक्त बदनामी दूर करने के आप दो उपाय कीजिये, एक स्वामी जी के साथ तुम्हारे मत के सर्वोत्तम विद्वान् का शास्त्रार्थ होना और दूसरे अपने सब पुस्तकों को अनेक देश भाषाओं में छपवा के प्रसिद्ध करना जब तक ऐसा न करोगे तब तक पूर्वोक्त कलंक दूर न होगा, प्रथम यत्न का उपाय इतने ही पर हो जावेगा कि आत्माराम जी का और स्वामी जी का शास्त्रार्थ हो जाय, स्वामी जी से जो हमने सम्मति कर ली है, तुम आत्माराम जी से पूछो कि इसको स्वीकार करते हैं या नहीं, दूसरे तीसरे पत्र का उत्तर इसलिए नहीं दिया कि प्रथम पत्र में हमने जो लिखा वही बहुत था, तुम इतना भी नहीं समझते कि "सत्यार्थप्रकाश" स्वामी जी ने नहीं छपाया किंतु राजा जयकृष्णदास मुरादाबाद निवासी ने छपाया था, शास्त्रार्थ के समय तुम्हारे पक्ष का पंडित यदि "सत्यार्थप्रकाश" के द्वादश समुल्लास को मिथ्या सिद्ध कर देगा तो स्वामी जी पुनर्बार के छपने पर उसको निकाल डालेंगे, इसलिए शास्त्रार्थ जितना शीघ्र हो सके करो हमारी तरफ से कुछ विलम्ब नहीं है, इत्यादि० । मिती भाद्रपद शुक्ल ८ रविवार सं० १९३७ आनन्दीलाल मंत्री आर्यसमाज मेरठ।

भाद्रपद में यजुर्वेदभाष्य अंक १६ व १७ प्रकाशित हुए उनके टाइटिल पेज पर कर्नल अल्काट और उनकी सोसाइटी के विषय में लेख है जिसको हम व्यर्थ समझ यहाँ संग्रह करने से वंचित रहते हैं।

१५ सितम्बर सन् १८८० ई० को स्वामी जी मुजफ्फरनगर में चले आए। और ऋग्वेदभाष्य अंक १६ व १७ सम्मिलित इकट्ठे प्रकाशित हुए और यजुर्वेदभाष्य अंक १८ व १९ इकट्ठे छपा कर उनके टाइटिल पेज पर यह विज्ञापन दिया था।

"मास अक्टूबर सन् १८८० ई० से यह दस्तूर जारी किया
इसी मास ऋग्वेद अंक १८ व १९ प्रकाशित किए गए, अगले
अंक १८ व १९ प्रकाशित होगा और फिर सदा
भाष्य [illegible] यजुर्वेद के प्रकाशित हुआ [illegible]

लाला ठाकुरदास ने एक पत्र आश्विन कृष्णा ९ सम्वत् १९३७ को स्वामी जी के नाम और पठवाया जिसका संक्षेप इस प्रकार है। "आप मेरे इस प्रश्न का साफ २ उत्तर क्यों नहीं देवे कि जो श्लोक आपने "सत्यार्थप्रकाश" में जैनों के नाम से लिखे थे जैन के किस ग्रन्थ के हैं अथवा किस जैनी से आपने सुने इसका ठीक २ उत्तर दो नहीं आपनी भूल बताकर हमसे मुआफी मांगो। इत्यादि०"।

यह पूर्वोक्त पत्र ठाकुरदास ने आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की मारफत भेजा था। इस पत्र का उत्तर स्वामी जी ने अपने हस्ताक्षर से तो नहीं दिया परन्तु आर्य्यसमाज गुजरान्वाला ने जो ठाकुरदास को लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है।

लाला ठाकुरदास जी नमस्ते।

जो पत्र आपने स्वामी जी के पास भेजने को इस समाज में पठवाया था, उसमें सर्वथा वे ही बातें भरी थीं जो पुरानी और व्यर्थ हैं इस लिये वह स्वामी जी के पास नहीं भेजा गया, क्योंकि स्वामी जी तो इसके उत्तर में लिखा चुके हैं, कि आत्माराम से हमारा शास्त्रार्थ हो तो सत्यासत्य का भली प्रकार निर्णय हो जाय, आपने प्रथम से ही अनुचित शब्दों का प्रचार किया यह विद्वानों को उचित नहीं आगे आपकी इच्छा, इत्यादि० ॥ नमस्ते ॥ आर्य्यसमाज गुजरान्वाले ने लिखा।

फिर कार्तिक ७ सम्वत् १९३७ का लिखा एक और पत्र गुजरान्वाला आर्य्यसमाज ने आत्माराम जी के नाम पठाया जिसमें लिखा था कि हमारे पास स्वामी दयानन्द जी का एक पत्र आया है, जिसमें लिखा है कि पंडित आत्माराम जी से एक पत्र उन सन्देह मान बातों का जिनको वे "सत्यार्थप्रकाश" में जैन विरुद्ध समझते हैं उनके हस्ताक्षर से हमारे पास भेजो तब हम विचार पूर्वक उनका उत्तर देंगे इस लिये आप हस्ताक्षर करके पत्र पठावें तब हम शीघ्र स्वामी जी के पास भेज देवें। इत्यादि०। हस्ताक्षर नारायणकृष्ण, आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की तर्फ से।

और आनन्दीलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ ने इसी विषय में अपने आर्य्य समाचार मेरठ पावस मास आश्विन संख्या १८ जिल्द २ पृष्ठ १२३-१२४-

१९५ में मनमाने कुवचन लाला ठाकुरदास को लिख अपनी योग्यता दिखलाई है, । उनकी नकल को हम व्यर्थ समझ और विस्तार के भय से यहां नहीं लिखते हैं ।

पूर्वोक्त पत्र के उत्तर में २५ अक्टूबर सन् १८८० ई० को ठाकुरदास ने जो पत्र दयानन्द सरस्वती को लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है ।

महाशय जो पत्र आपने आत्माराम जी के नाम भेजा उन्होंने देखते ही मुझको देदिया क्योंकि उनको वादानुवाद से कुछ काम नहीं पत्रका शिरनामा और ऊपर आत्माराम जी का नाम देखकर तो मैंने समझा था कि आर्य्यसमाज को भ्रम हुआ जो उन्होंने मेरे नाम के बदले आत्माराम जी का नाम लिख दिया परन्तु नहीं जब पत्र का आशय पढा तो यही प्रतीत हुआ कि आर्य्यसमाज ने जान बूझकर यह भ्राति की है, और इस भ्राति के मूल कारण आप हो क्योंकि आप ही के आदेश से आर्य्यसमाज ने ऐसा किया । प्यारे दयानन्द जी यह बुद्धि आपको किसने दी ? यह आपको किसने समझाया ? कि आत्माराम जी के नाम पत्र भेजो ? मैंने एक प्रश्न किया है उसके सम्बन्ध में पांच छ पत्र भेज चुका हूं आपके भी दो तीन पत्र मेरे ही नाम आये फिर आत्माराम जी के सामने वितण्डा बुलाये क्यों जापडे ? यह विद्वता आपने कहां से सीखी कि जो प्रश्न करे उसको उत्तर न देना और दूसरे से जा भिड़ना ? आप प्रथम मेरे साधारण प्रश्न का उत्तर दीजिये फिर आत्माराम जी से भिड़ना, आपने छोटे से प्रश्न का उत्तर तो न दिया और व्यर्थ चार महीने व्यतीत कर दिये अब मुझको अदालत करना अवश्य होगा । इत्यादि० ॥

तत्पश्चात एक पत्र गुजरानवाला आर्य्यसमाज ने आत्माराम जी की सही के लिये भेजा और ठाकुरसाद ने आत्माराम के हस्ताक्षर कराकर समाज वालों के पास भेज दिया ।

तारीख ७ अक्टूबर सन् १८८० ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वती मुजफ्फरनगर से देहरादून पधारे और इस नगर के अनेक ब्राह्मण वैश्य मुसलमान ईसाइयों से वर्त्तालाप हुआ परन्तु नियमानुसार शास्त्रार्थ नहीं हुआ, और लाला ठाकुरदास के पूर्वोक्त पत्र का उत्तर स्वामी जी ने देहरादून आर्य्यसमाज

के मंत्री कृपाराम के हाथ से लिखाकर भेजा था ता० ४ नवम्बर सन् १८८० ई० का लिखा हुआ था और नारायणकृष्ण मंत्री आर्य्यसमाज गुजरान्वाला ने अपने ता० १३-११-१८८० ई० के पत्र के साथ ठाकुरदास के पास भेजकर विदित किया कि स्वामी जी की आज्ञानुसार एक नकल इसकी लुधियाने के श्रावकों को भी भेजी गई है।

स्वामी जी के पूर्वोक्त पत्र का खुलासा यह है कि "सत्यार्थप्रकाश" में जो श्लोक जैनों के नाम से लिखे गये हैं वे सब बृहस्पति मतानुयायी।चार्वाक जिसके मत का नामांतर लोकायत भी है" और इतना लिखकर वे श्लोक * पुनः इस उत्तर में भी लिखे हैं, फिर लिखा है कि मैंने प्रथम चिट्ठी के उत्तर। में लिखवा दिया था कि जैनमत की कई एक शाखा हैं, आपने उन शाखों के प्रतितंत्र सिद्धांत जाने होते तो यह भ्रम न होता, और उत्तर देने में बिलम्ब इस लिये हुआ कि आपने अपने पत्र अनुचित रीति से लिखे थे यदि उचित रीति से लिखते तो उत्तर में बिलम्ब न होता जैसे लुधियाने के जैनी पंचों ने यथा योग पत्र लिखा तो उनका उत्तर शीघ्रता पूर्वक दिया गया, और उनको यह भी लिखा दिया गया है कि तुम लोग पंडित आत्माराम जी को सर्व शिरोमणि गिनते हो सो यदि उनका और हमारा पत्र व्यवहार अथवा समागम हो तो अत्यन्त लाभ हो परन्तु खेदका विषय है कि हमारी रजिष्ट्री चिट्ठी का भी उत्तर उन्होंने नहीं दिया, ठाकुरदास को शुद्ध हिन्दी लिखना नहीं आता तब वह स्वामी जी के सन्मुख बात करने के योग्य क्योंकर हो सकता है आत्माराम तो अलग रहे और ठाकुरदास सन्मुख हो यह शिष्टों को योग्य नहीं यदि आप को हमसे कुछ लिखा पढ़ी करना है तो किसी विद्वान को खड़ा करिये। इत्यादि०।

स्वामी दयानन्द जी ने जो पत्र आत्माराम जी के उत्तर में लिखा उसकी पूरी नकल इस प्रकार है।

पं० आत्माराम जी नमस्ते

पत्र आपका तारीख ४ नवम्बर का लिखा हुआ १० नवम्बर सन् १८८०

* असल में यह श्लोक पुस्तक "सर्वदर्शनसंग्रह" के हैं जो किसी अज्ञान मनुष्य की बनाई हुई हैं और रचियता ने बिना विचारे जो कुछ ध्यानमें समाया स्वकपोल कल्पित लिख मारा जैन धर्मसे उक्त श्लोकों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

ई० की मन्त्या समय मेरे पास पहुंचा देखकर आनन्द हुआ अब आपके प्रश्नों का उत्तर लिखता हूँ ।

(प्रश्न) नं० १ "सत्यार्थप्रकाश" समुल्लास १२ पृष्ठ ३९६ पंक्ति १६ में लिखा है कि जब प्रचार होता है तो पुंगल जुदे २ हो जाते हैं ऐसा नहीं (जवाब) मैंने ठाकुरदास जी के जवाब में एक पत्र आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की मारफत भेजा था जो आपके पास भी पहुँचा होगा उसमें यह जतलाया गया है कि जैन बौद्ध दोनो एक ही हैं बाज जगह महावीर तीर्थंकरों को बुध और बौद्ध आदि शब्दों से पुकारते हैं, और कई जगह जन, जैन, जिनवर, जैनेन्द्र आदि नाम से भी बोलते हैं, और जिनको चारवाक बौद्ध की शाखा में कहते हैं, उनही को लोग बुध, स्वगबुध और चारबुध वगैरह कहते हैं, आप अपने ग्रंथों में देख लीजिये (ग्रंथ हेकसार पृष्ठ ६५ पं० १३) बुध बौद्ध यह एक सिद्ध अनेक सिद्ध भगवान् हैं (पृ० ११३ पं० ७ पुस्तक मजकूर) चार बुध की कथा (पृ० १२७ पं० ८) हर एक बुध की कथा (पृ० १२८ पं०) स्वगबद्ध की कथा (पृ० १५२ पं० १४ चारबुध समकाल मोक्ष को गये, इसी तरह आपके अनेक ग्रन्थो में कथा साफ साफ मौजूद हैं जिसको कोई श्रावक बरखिलाफ न कर सकेंगे और ठाकुरदास की पहिली चिट्ठी में आप लोग कई श्लोक मन्जूरभी कर चुके हैं उस चिट्ठी की नकल मेरठ में है आपके पास भी होगी (फलभाष्य भूमिका) जिसमें राजा शिवप्रसाद जी ने अपने जैनमत स्थित पिता आदि महापुरुषों की परम्परा का हाल लिखा है उनकी भी गवाही देख लीजिये। इतिहास तिमिरनाशक खंड ३ पृ० ८ पंक्ति २१ से पृष्ठ ९ पंक्ति २७ तक साफ लिखा है कि जैन और बौद्ध एक ही के नाम हैं, अब रहे बौद्ध की शाखाओं के भेद सो चारवाक आभानक आदि हैं, जैसे आपके यहां श्वेताम्बर आदि भेद हैं, और जैसे पुराणमत में रामानुजी आदि वैष्णवी शाखा और पाशुपति आदि शैवों में और वाममार्गी आदि दश महाविद्या की शाखें और ईसाइयों मे रोमन, कैथलिक और मुसलमानों में शीया और सुन्नी आदि शाखों के चन्द दर चन्द भेद हैं, परन्तु वेद बाइबिल और कुरान के फिरकों में वह एक ही समझे जाते हैं, इसी तरह बौद्ध और जैन की शाखें जुदी २ हैं, मगर जैन या बौद्ध मत एक ही है अगर आप सब

सिद्धांतों से जानकार होते और ग्रंथ देखे होते तो "सत्यार्थप्रकाश" में जो लेख उत्पत्ति और प्रलय के विषय में है उस पर शंका कभी नहीं करते (सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३९७ पंक्ति २४) आदमी आदि को ज्ञान है ज्ञान से वह गुनाह करता है, इसलिये उसको दुःख देने में दोष नहीं । यह बात जैनमत में नहीं (उत्तर) ग्रन्थ ढूंकसार में पृ० २२८ पं० १५ से लेके पंक्ति १९ तक देख लीजिए क्या लिखा है यानी सोजन आदि समुदाय की आज्ञा जैसे दशान्वकुमार ने यक्ष के हुकम से बौद्धरूप रचना करके पमरवी नाम पुरोहित को कि वह जिनका वैरी था लात से मार के सातवें नर्क में भेजा । ऐसे ही और २ बातें ।

(प्रश्न) नं० ३ सत्यार्थप्रकाश पृ० ३९९ पं० ३ उसका पद्मशिला पर बैठ कर चराचर को देखना ।

(उत्तर) पुस्तक रत्नसार भाग पृ० २३ पं० १२ से लेके पृ० २४१तक देख लीजिए कि महावीर और गौतम की चर्चा में क्या लिखा है ।

(प्रश्न) नं० ४ सत्यार्थप्रकाश पृ० ४०१ पं० २३ उनके मत में नहीं वह अगर सत्पुरुष भी हो तो भी सेवा नहीं करते अर्थात् जल तक नहीं देते ।

(उत्तर) पुस्तक ढूंकसार पृ० २२१ पं० ३ से ले के पं० ८ तक लिखा है देख लीजिये ।

(प्रश्न) नं० ५ सत्यार्थप्रकाश पृ० ४०१ पं० २७ उनका साधु जब आता है तो जैन लोग उनकी दाढी, मूछ और शिर के बाल सब नोच लेते हैं ।

(उत्तर) नं० ५ ग्रंथ कल्पभाष्य पृ० १०८ पं० ४ से लेकर ९ तक देख लीजिये और प्रत्येक ग्रन्थ में दीक्षा के समय अर्थात् चेला बनाने के समय पाँच मुट्ठी बाल नोचना लिखा है वह काम आप ही अथवा चेला गुरु के हाथ से होता है और विशेष कर ढूँढियों में है ।

(प्रश्न) नं० ६ सत्यार्थप्रकाश पृ ४०२ पंक्ति २० से लेके जो श्लोक जैनियों के बनाये लिखे हैं वह जैनमत के तथा जैनमत के ही ग्रंथों के हैं ।

(उत्तर) नं० ६ में इसका उत्तर इससे पहिले पत्र में लिख चुका हूँ आपके पास पहुंचा होगा देख लीजिए ।

और अनेक यत्न भी किये परन्तु दावा खारिज होगया जिसका अपील भी नहीं हुआ ।

१७ नवम्बर सन् १८८० ई० तक स्वामी जी देहरादून में रहे फिर आगरे को रवाना हुए मार्ग में मेरठ के रेलवे स्टेशन पर लाला रामशरणदास से मिले और कहा कोयल जाता हूँ फिर कोयल पहुँचकर बाबू तोताराम वकील से मिले तत्पश्चात् आगरे मे पहुच कर राय गिरधरलाल साहब वकील के मकान पर सुशोभित हुए इसका सविस्तार वर्णन मुन्शी इन्द्रमणिजी के पत्रमे आगे चलकर मिलेगा ।

तारीख २२ नवम्बर सन्१८८० ई० को लाला ठाकुरदास जी ने एक बड़ा लम्बा चौड़ा पत्र लिख रजिस्ट्री द्वारा स्वामी जी के नाम भेजा जो उक्त ठाकुरदास के लेखानुसार स्वामी जी का पता न मिलने के कारण १४ दिसम्बर को उलटा आया * जिसका सक्षेप (खुलासा) यह है कि प्रथम तो पुराना ही झगड़ा भरा है मध्य में ये पाच प्रश्न हैं ।

(१) यह आपने चार्वाक मत को जैन मत की शाखा किस शास्त्र से प्रमाण किया व कौन से जैनी शास्त्रो मे लिखा देखा ?

(२) यह कितना काल हुआ कि चार्वाक मत जैन मत से निकला और जैन मत की शाखा निश्चित की गई ?

(३) चार्वाक मत के प्रचार देने वाला कौनसा जैनी था व किस जैन धर्म आचार्य का चेला था ?

(४) कौन कौन से ऐसे नियम हैं, जो जैन और चार्वाक मत एक है और आपस मे मिलते हैं और कौन कौन से नियमो को देख आप सिद्ध करते हैं कि चार्वाक और जैन मत एक है ?

(५) जैन मत की सब कितनी शाखा हैं ? उनका पृथक् पृथक् नाम पतेवार कहो ? उन शाखाओं के पृथक् २ होने में क्या प्रमाण है ? तथा चार्वाक मत उन शाखाओं से किसकी प्रति शाखा है ? इसके उपरात लाला ठाकुरदास ने

* हम नहीं कह सकते कि ठाकुरदास जी का यह कहना कहाँ तक सच है कि स्वामीजीका पता न लगनेसे पत्र उलटा आया क्योंकि डाक वालोंका नियम है कि जहाँ तक बने पत्र पहुंचा देते हैं ।

अपने पत्र में स्वामी जी को अनेक घुड़किया दी हैं, कि हमसे माफी मांगो अपना पीछा छुड़ाओ नहीं तो पश्चाताप करोगे, आपने लुधियाने के पत्र में लिखा कि पूर्वोक्त श्लोक बहुधा जैन ग्रन्थों के भी हैं जिनको ठाकुरदास जी ने स्वीकार भी करलिया है भला स्वामी जी मैंने किस पत्र में, स्वीकार कर लिया है ऐसा झूठ बोलना छल करना आपको किसने सिखलाया आप इसी प्रकार धोखेबाजी करते हैं आप स्मरण रखिये कि आपका यह सब कपट अदालत में दिखा कर, आपको यथेष्ट दण्ड दिला दिया जायगा, और इस पत्र का उत्तर चाहे आप भेजें चाहे न भेजें यह आपकी इच्छा है, इत्यादि० ।

आगरे से स्वामी जी ने एक पत्र २४ नवम्बर को लाला रामशरणदास के नाम भेजा, और २९ नवम्बर तथा ६ दिसम्बर को एक एक पत्र लिख मुन्शी इन्द्र मणि जी के नाम पठाये उनकी यथार्थ नकल मुन्शी इन्द्रमणि जी के उत्तर में आगे चल कर उत्तरार्द्ध भाग में लिखेंगे ।

शास्त्रार्थ काशी जो स० १९२६ में हुआ था इस स० १९३७ के कार्तिक शुक्ला १२ को वैदिक यन्त्रालय काशी मे पुस्तकाकार छपा और इसी सम्वत् के मार्गशीर्ष मास में, सन्धि विषय १ वेदांग प्रकाश (जिसमें, अव्ययार्थ १ आख्यातिक १ सौवर १ पारिभाषिक १ धातुपाठ १ उणादिगण १ गणपाठ १ यह छ पुस्तक शामिल हैं) छपकर प्रकाशित हुए ।

पौष सम्वत् १९३७ मे ही यजुर्वेदभाष्य अंक २० व २१ छपकर प्रकाशित होगये, जिसके टाइटिल पेज पर कोई सग्रह करने योग्य विज्ञापन नहीं था ।

यद्यपि आगरा गोकुलपुरे में एक आर्यसमाज पहिले ही से था परतु शहर से यह स्थान दूर है इसलिये २६ दिसम्बर को एक खास जलसा इसलिए किया गया कि शहर मे एक नवीन आर्य्यसमाज स्थापित किया जावे, और एक गोरक्षिणी सभा भी नियत हो इस पर स्वामी जी ने बड़ी धूम धाम से व्याख्यानदिया और ९००) रुपया चन्दा तो उसी समय हो गया और २८ दिसम्बर के जलसे में ३००) रुपए और जमा हुए जिसमे २५) रु० एक मुसलमान ने दिए थे ।

लाला ठाकुरदासजी निज लिखित पुस्तक दयानन्दमुख चपेटिका मे लिखते हैं कि जब हमारा पत्र १४ दिसम्बर को लौट कर चला आया और किसी समाज

वालों ने हमको स्वामी जी का पता नहीं दिया तब हमने २१ दिसम्बर सन् १८८० ई० को एक पत्र समाज वालों पर फारसी में लिखा जिसका आशय यह था कि स्वामी जी के पास हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं है, इससे स्वामी जी छिपे बैठे हैं, आप उनका पता बतला दो, इसका उत्तर समाज वालों ने अट्ट का सट्ट जो चाहा सो लिखा परन्तु स्वामी जी का पता नहीं बतलाया उस समय हमने १ ली जनवरी सन् १८८१ ई० के दिन एक पत्र समाज वालों को और लिखा जिसका आशय यह था कि हम दिगम्बरी श्वेताम्बरी दोनों प्रकार के जैनी तारीख २० जनवरी सन् १८८१ ई० को स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने अम्बाले आवेंगे तुम स्वामी जी को भी वहाँ हाजिर रक्खो और सब समाजियों में खबर दे दो तब इस पत्र का उत्तर भी समाज वालों ने उलटा ही दिया। जब हमने फिर तारीख १२ जनवरी सन् १८८१ ई० को यही लिखा कि हम दोनों पक्ष के जैनी अबाले आन कर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे और तारीख २० से २३ तक स्वामी जी से चर्चा होगी, इस पर स्वामी जी अम्बाले में नहीं आये हम उनकी राह देख अम्बाले में बैठ कर चले आये, और तारीख ६ फरवरी सन् १८८१ ई० को एक छपा हुआ निवेदन सम्पूर्ण समाजियों के नाम पर रवाना किया जिसका खुलासा इस प्रकार है।

यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि स्वामी जी ने हमारे जैन धर्म के नाम से मिथ्या श्लोक बनाकर हमारी बहुत बड़ी निन्दा की है, और जिसका प्रमाण स्वामी जी के पास कुछ भी नहीं है, और हमारे पूछने पर स्वामीजी धमकी देने के सिवाय और कुछ नहीं कहते हमने बहुधा यह चाहा कि यह झगड़ा पत्र द्वारा ही समाप्त हो परन्तु स्वामी जी ने पत्र द्वारा इन श्लोकों को चार्वाक का बतला कर जैन और बौद्ध चार्वाक सबको एक बतला दिया और नवीन अनर्थ किया, अब आप और सुनिए।

आनन्दीलाल मन्त्री आर्यसमाज मेरठ अपने पत्र में लिखते हैं कि सम्पूर्ण आर्य्यसमाज स्वामी जी के अनुकूल हैं तुम सब जैनी भी सहमत होकर अदालत करने को उठो तुम लोगों ने सत्य वेद विद्या का नाश कर हमको बहुत हानि पहुंचाई है, इस लिए तुम्हारा तन, मन, धन भी हमारे नुकसान को पूरा नहीं कर

सकता इत्यादि० ।

सो मैं आपसे पूछता हूँ क्या आप भी इसको प्रमाण करते हैं ? और जो ऐसा ही है तो क्या जिस जुर्म (अपराध) में स्वामी दयानन्द दोषी ठहरते हैं आप भी उसमें शामिल हुआ चाहते हैं, इस वाक्य का ठीक पता लगाने के लिए कि आनन्दीलाल का लिखना आप सर्वसमाजी मनुष्य स्वीकार करते हैं कि नहीं यह निवेदन पत्र भेजा जाता है एक मास तक इसके उत्तर की राह देखूगा, सो इस अवसर में आप मुझको अपने सच्चे अभिप्राय से भेदी करें और अपने आपको उस कलंक से बचावें जिसको मंत्री मेरठ समाज ने सर्व समाजियों के शिर धरा है, नहीं तो फिर आप सम्पूर्ण समाजियों पर स्वामी जी सहित अदालत दीवानी में सम्पूर्ण जैनियों की तरफ से हतक इज्जत की नालिश की जायगी और हर्जा तथा खर्चा जो हमारा इतने दिनों से हो रहा है तुमसे भराया जायगा वगैरह ।

पूर्वोक्त छपे हुए निवेदन पत्र का उत्तर तो किसी समाज वाले ने भी कुछ नहीं दिया परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य पण्डित गोपाल शर्मा शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी ने एक दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम भाग पुस्तक छपाई जिसके आरम्भ का दिन माघ शुक्ला ५ गुरुवार सम्वत् १९३७ और समाप्त करने का दिन ज्येष्ठ शुक्ला ९ चन्द्रवार सम्वत् १९३८ है जो निम्न लिखित श्लोकों से विदित होता है ।

७ ३ ९ १
मुनिरामाङ्क भू वर्षे माघे मासे सिते दले ।
पंचम्यां च गुरौ सिद्धे ग्रन्थारम्भः कृतो मयाः ॥१॥

८ ३ ९ १
वसु रामाङ्क चन्द्रेब्दे शुक्रे मासे सिते दले ।
नवम्यां चन्द्र वारेच ग्रन्थे यं पूर्णतां गताः ॥२॥

हम नहीं, कह सकते इस पुस्तक के रचयता ने क्यों ऐसी भूल की जो छिपाए से नहीं छिपती स्वामीजी को रियासत मसूदा में जाकर ढूंढियों से शास्त्रार्थ करने का समय आषाढ़ और श्रावण सम्वत् १९३८ है जब कि स्वामी जी यहां पधार कर विराजमान थे परन्तु जब दिग्विजय प्रथम भाग ज्येष्ठ ही में पूरा हो

गया तो ममूदा का हाल उसमें कैसे लिखा गया।

उक्त पुस्तक में लाला ठाकुरदास जी के विषय में यह लिखा हुआ है।

"विदित हो कि श्रीयुत दिग्विजयी जी महाराज सर्वत्र व्याख्यानों में जैनियों के मत का भी खंडन बराबर करते हैं परन्तु अब तक कोई ऐसा प्रसंग नहीं आया कि उन लोगों ने वहाँ सन्मुख बैठ शास्त्रार्थ किया हो इस सम्वत्सर में जैनियों के पुजारी लाला ठाकुरदास नगर गुजरानवाला मुल्क पंजाब वाले ने कुछ छेड़छाड़ की थी उसका कुछ वृत्तान्त अनुष्टुप प्रकार से सबको विदित होने के लिये यहाँ लिखा जाता है, और दो आर्य समाचार मेरठ का सार है, भावार्थ देखो उर्दू आर्य-समाचार मेरठ संख्या २० जिल्द २ पृष्ठ ३१३ बाबत् सन् १८८० ई०।

अरसा एक साल या कुछ कमवेश से हमारे एक जैनी भाई लाला ठाकुर-दास जी आपे से बाहर हो गए हैं अपना समय निरा बे मतलब तू तू मैं मैं में खोते हैं और दूसरों का भी उसके देखने सुनने से खराब कर रहे हैं कभी तो सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास के लेख का सबूत तलब करते कभी नालिश तौहीन मजहब की धमकी देते कभी अखबारों के द्वारा यह प्रकाशित करते हैं कि स्वामी दयानन्द जी रूपोश हो गए हम उन पर इस हफ्ते में अवश्य नालिश करेंगे। पहिले तो हम लोग खामोश रहे जब उनके अत्याचार से चुप बैठना और भी कुछ भाविन होन लगा तब लाचार उत्तर देना ही पड़ा वह क्या था वे सम-झते थे कि हमारी मत सम्बन्धी किताबें जब हमी को बमुश्किल मिलतीं हैं तो स्वामी जी क्योंकर पावेंगे, आखिर कार मजबूर होकर अपना लिखा खुद काटेंगे। दूसरे यह भी जानते होंगे कि इस नाहक की तू तू मैं मैं से मेरा नाम भी मत हितैषियों में गिना जावेगा। इनका पहिला मनोरथ तो सिद्ध न हुआ, रहा दूसरा वह अच्छा नहीं तो खैर बुरा ही सही बुरे ही नाम से प्रसिद्ध हो गए, जब पहिले पत्रका उत्तर इनको मिला तो इधरसे मुँह मोड़ दूसरा ही तोड़ जोड़ लड़ाया अर्थात् अखबारों पर दाव निकाले और उसी के साथ अनन्दराता मंत्री आर्यसमाज मेरठ पर भी क्रोधित हुए हैं इत्यादि। १।२।३।४ आगे उस पत्र की नकल कर दी है जो कार्तिक शुक्ला ४ शनिवार सं० १९३७ को दयानन्द जी ने दहरेसे लिखाया

स्वामीजी का एक दूसरा पत्र आत्माराम जी के नाम इस प्रकार से है।

आनन्द विजय आत्माराम जी ! नमस्ते ।

आपके पत्र लिखित सब समाचार विदित हुए जो आपने लिखा कि बौद्ध और जैन के एक मानने से हमारी हतक इज्जत नहीं इससे आनन्द हुआ मगर यह तो आपने लिखा कि योगाचार आदि चार मत जिस बौद्ध के हैं वह जैन मत के एक अलग शाख का है इसका जवाब मैं भेज चुका मजहब में शाख दर शाख या फर्क थोड़ी बातें जुदी होने से होता है मगर बहैसियत मजहब शाखें एक ही मजहब की होती हैं, देखिये कि उन्हीं मतकरों में चार्वाक्यादि मतकर हैं और जो आप उनका इतिहास व जीवन चरित्र पूछते हैं सो इसका जवाब भी मैं दे चुका हूँ, भावार्थ इतिहास तिमिरनाशिक के तीसरे भाग में देख लीजिये । और आप जिन बौद्धों को अपने धर्म से पृथक् लिखते हैं वह आपकी आम्नाय भेद से चाहे जुदे ही हों परन्तु धर्म से जुदा नहीं हो सकते जैसे कोई जैनी श्वेताम्बर दूसरे सम्वेगी साधुओं पर तर्क करके उनको नवीन और पृथक् मानते हैं और वह विवेकसार पुस्तक में सविस्तार लिखा हुआ है और इसी प्रकार आप लोगों ने उन पर अनेक तर्क सम्यक्त रत्नगी पुस्तक में लिखे हैं, सो इससे वे और आप बौद्ध या जैन धर्म से अलग नहीं हो सकते और न कोई विद्वान् उनके धार्मिक वर्ताव मे उनको अलग मान सकता है, उनके आचार विचारमें भिन्नता तो अवश्य होगी और आपके इस कौल से कि इसमें क्या अजब है कि महावीर तीर्थंकर के समय मे चार्वाक मजहब था । उनके पीछे नहीं हुआ इससे मुझको निहायत हैरानी हुई, क्या जो महावीर तीर्थंकर के पहिले २३ तीर्थंकर हुये उन सब के पहिले चार्वाक मजहब को आप साबित नहीं कर सकते ? अगर कुछ शक हो तो लीजिये मेरा प्रश्न है कि ऋषभदेव भी चार्वाक मजहब से ही चले हैं, फिर इसका उत्तर आप क्या और क्योंकर दोगे ? क्या चारवाक्य १५ प्रकार में से एक प्रकार का यह नहीं है, और उनमें एक भी शुद्ध और उक्त नहीं हुआ ? क्या वे आपके धर्माचरण और शास्त्रों से अलग हो सकते हैं ? इसके अतिरिक्त आपने भी अपने पत्र में बौद्ध धर्म को अपने धर्म्म मे स्वीकार कर लिया है क्यों कि चार कहादि को आपने बौद्ध माना है और मैंने, भी अपने पहिले पत्र में जैन और बौद्ध की ऐक्यताका लिखितप्रमाण देदिया है, फिर आपका पुन २ पूछना

व्यर्थ और नि स्वार्थ है, जहा वादी के वचनों पर ही विश्वास हो सके वहा साक्षी लेने की क्या आवश्यकता है, भला जिसके अनेक पुरुषा जैनी थे ऐसे राजा शिवप्रसाद की साक्षी को तथा यूरोप देश के अनेक इतिहास लिखने वाले विद्वान अग्रेजो को आप झूठा कह सकते हैं जिन्होंने अपनी बनाई पुस्तकों में स्पष्ट लिखा है कि कुछ बात आर्य्यों की और कुछ बौद्धो की मिल कर जैनधर्म बना है।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में जो आपने लिखा है कि वह नमुचि नास्तिकाजैन धर्म का द्वेषी साधुओ को निकालने और तकलीफ देने वाला था उसको मार कर सातवें नर्क मे भेजा, क्या यह लेख आपने सत्यार्थप्रकाश के उत्तर मे नहीं समझा ? खयाल कीजिये कि वह नमुचि जैन धर्म्म का शत्रु था इस लिए मारा गया उसने जान बूझ कर पाप नहीं किया था, कितने खेद की बात है कि आप सीधी बात को भी उलटी समझ गए। तीसरे प्रश्न के उत्तर में जो प्राकृतका श्लोक लिख कर उसका समझना मेरे ऊपर छोड़ा इससे प्रकट है कि आप यह जानते होंगे कि मैं उसके आशयतक न पहुँचूँगा हा ! मैं सब मुल्कोंकी बोली नहीं जानता सिर्फ चन्द देशो की बोली और सस्कृत जानता हूँ परन्तु मत सम्बन्धी सिद्धातों को विद्वानों के सत्सग से अच्छे प्रकार जानता हूँ, आप लोगोंने अपनी भाषा ऐसी बिगाड़ी है और ऐसे अप्रसिद्ध शब्द बनाये हैं ताकि दूसरा न उसे समझे जैसे किसी किसी ने शराब का नाम (तीर्थ) और मास का नाम पुष्प आदि बना लिया है ताकि उनके सिवाय दूसरा कोई न जान ले। जो राजा न्यायवान् होते हैं वे ऐसे स्पष्ट मार्ग बनाते हैं कि अन्धा भी नियत स्थान पर बिना परिश्रम पहुँच जाय लेकिन उनके प्रतिपक्षी मार्ग को ऐसा बिगाड़ते हैं कि कोई परिश्रम द्वारा भी चल नहीं सकता आप जो पुस्तक रत्नसार को नहीं मानते तो क्या, बहुधा जैनी गए उसको धर्म ग्रन्थ मानते हैं ! देखिये आप ऐसे विद्वान् होकर मूर्ख को मूरख लिखते हैं, और वाक्य शुद्धि के लिये पत्र पर हरताल भी लगाई है, कैसा दु ख का विषय है कि आप लोग सस्कृत का क्या जिक्र भाषा भी नहीं जानते । यदि यह मान लिया जाय तो कुछ डर नहीं कि अशुद्धियाँ मनुष्य ही से हो जाती हैं। चौथे सवाल का उत्तर बड़ा हैरान करने वाला है, अधिक तब सीखा जाता है जब सीखने वाले से सिखाने वाला विशेष जानता हो आप भी शायद इसे मानते होंगे।

यह बात विद्वानों की नहीं कि अपने ही मत के विद्वानों को माननीय ठहराना और दूसरे मत के विद्वानों को इससे विरुद्ध । गर्ज इन छः निषेधों का कलंक आपको ऐसा लिपट गया कि जब ईश्वरही चाहे तब छूटे, अब जो आपके ग्रन्थों का हमारा तौहीन मजहबी साफ २ लिखी है उसका उत्तर व वापसी टाफ हवाला सफा और सतर दीजिये ।

विवेक सार पर प्रश्न



(१) वि०क० पृ० १० प० १ में लिखा है कि श्रीकृष्ण तीसरे नर्क को गया ।

(२) वि०क० पृ० ४० प० ८ से १० तक कि हरिहर ब्रह्मा महादेव राम कृष्ण आदि काम क्रोधी अज्ञानी स्त्रियों के दोषी पाषाण की नौका समान आप डूबे औरों को डुबोने वाले थे ।

(३) वि०क० पृ० २२४ प० ९ से पृ० २२५ प० १५ तक में लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि सब अदेवता और अपूज्य हैं ।

(४) वि०क० ५५ प० १२ में लिखा है कि गंगा आदि तीर्थों और काशी आदि क्षेत्रों से कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता ।

(५) वि०क० पृ० १३८ प० ३० से लिखा है कि जैनी साधु भ्रष्ट भी होय तो अन्य धर्मावलम्बी साधुओं से उत्तम है ।

(६) वि०क० पृ० १ से लेकर लिखा है कि जैनियों में बौद्ध आदि शाखें हैं इससे सिद्ध हुआ कि जैन मतान्तर गत बौद्धादि सब शाखा हैं । *

*यह लेख उर्दू आर्य्य समाचार मेरठ जिल्द२ मास माघसंख्या२० पृष्ठ३२५से ३३० तक भी छप चुका है और इस लेख में प्रश्न ३ के उत्तर में प्राकृत विद्या को अशुद्ध कहना तथा उस पर मनमाने व्यर्थ प्रमाण गढ़ना, रत्नसार विवेकसार को जैन का माननीय ग्रन्थ समझना, चौथे प्रश्न के उत्तर में हर एक मजहब में विद्वानों का होना बतलाना यही सिद्ध करता है कि स्वामी जी लाल बुझक्कड़ से भी अधिक जानकार अभिमान मूर्ति थे ।

स्वामी जी के आगरे में रहते २ माघ सम्वत् १९३७ में ऋग्वेद भाष्य अङ्क ७२ व ७३ प्रकाशित हुआ और इस के टाइटिल पेजपर कोई समझ योग विज्ञापन नहीं था।

पुस्तक दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग में एक लेख उर्दू अक्षरों में इस प्रकार है। अखबार आफताब पंजाब तारीख १७ फरवरी सन १८८१ ई० में जो आखरी नोटिस गुजरानवाला की कौम जैनी की तरफ से छपा है उससे प्रकट हुआ कि वह पुराना झगड़ा जो उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के उस लेख पर जिसमें कि उन्होंने जैनियों के पुस्तक और उनके सिद्धांत पर नुकता चीनी की, अर्थात् दोष लगाये, एक छोटी बात का बड़ा भारी तुमार बान्ध के कोर्ट में फैसला उचित समझा है। देखिए इन्होंने इसके उत्तर का जो ६ दिसम्बर के इसी अखबार में छपा है कुछ लिहाज नहीं किया और शर (झगड़ा) बढ़ाने पर मुस्तैद रहे, मुकाम इसाफ है कि जब दयानन्द सरस्वती जी ने इस, कौम के सवालों का जवाब तफसीलवार सफा व सतर लिखा फिर कौन सी बात बाकी रह गई, यह मुकद्दमा इस वजह का है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो हमारे मजहब पर नुकता चीनी की है, वह गोया हमारी तौहीन मजहबी है, मगर हम कहते हैं, कि जिस मजहब व मिल्लत पर खून पक्की बहस की जावे यह एक तरह की पक्की नुक्ता चीनी है, न तौहीन मजहब की, हां। जो बनावटी दलील केवल कपोल कल्पित हो तो जरूर हो सक्ता है, आया यह कि जो किसी खास मजहब पर बहस करे वह तौहीन मजहबी के इल्जाम का मुल्जिम दोषी ठहर सकता है, नहां तो हरगिज नहीं, बाजे पाठकजन और दूसरे लोग जैनियोंके विज्ञापनोंसेयह समझते हैं कि स्वामी जी उन से फ़ैसला क्यों नहीं करते, यह ख्याल केवल उनको असली बात के न जानने के कारण है, क्योंकि स्वामी जी ने सब पर जैन मत की सत्यता और असत्यता प्रकट करदी है, बाजे लोग कहते हैं कि जैनी कौम ऐसी वैसी नहीं जो जरासी बात पर मुकद्दमा करे, पस इसकी कुछ और वजह होगी, यकीनन खास सबब यह है कि एकही आदमी अपना नाम करने को यह हाल करता है, और अपने तमाम मतवालों को इसमें शामिल करता है, गो कि बाकी तमाम मतवाले इसे बुरा ख्याल करते हैं, अब हम सब से कहते हैं कि

वारवार नालिश की धमकी न दें, बरन् जो कहते हैं सो कर दिखलावें और इस का नतीजा पावें ॥

पक्षपात इसी का नाम है कि लाला ठाकुरदास के पत्र व्यवहार से रुष्टमान हो आनन्दीलाल मन्त्री आर्य्य समाज मेरठ ने अपने माघ सम्वत् १९३७ के आर्य्य समाचार मेरठ पृष्ठ ३०५ से ३१२ तक में उस रथयात्रा के मेलोंकी बुराई लिखी जो माघ सम्वत् १९३७ तथा जनवरी फरवरी सन् १८८० ई० में शहर और छावनी मेरठ में हुए थे

राजा शिवप्रसाद जी ने एक दूसरा निवेदन पत्र छपाकर स्वामी जी के पास पठाया जो भ्रमोच्छेदनके उत्तर में था, उसकी पूरीनकल नीचे लिखी जाती है

॥ दूसरा वा पिछला निवेदन ॥

(अब इस विषय में आगे कुछ नहीं लिखा जायगा)

एक पुस्तक भ्रमोच्छेदन नाम मेरे "निवेदन के उत्तर में" श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का निर्माण किया हुआ आया समझा कि अब अवश्य स्वामी जी महाराज ने यथा नाम तथा गुण दया करके मेरे प्रश्न का उत्तर भेजा होगा बड़े उत्साह से खोल के देखा तो शिवप्रसाद कम समझ, आलसी, उसको मरहट विद्या में शब्दार्थ सम्बन्धों के समझने की सामर्थ नहीं, वह अयोग्य उसकी समझ अति छोटी, वह अविद्वान अधर्म कर्म से युक्त अनधिकारी उसके नेत्र फूट गये हैं उसकी अल्प समझ, वह श्वान के समान, जैसी उसकी समझ वैसी किसी छोटे विद्यार्थी की भी नहीं, उसकी उलटी समझ वह प्रमत्त अर्थात् पागल उसको वाक्य का बोध नहीं वह अन्धाना मध्ये काणो राजा तात्पर्यार्थ ज्ञानशून्य, पक्षपातान्धकार से विचार शून्य अशास्त्रवित अव्युत्पन्न, व्यर्थ वैतण्डिक, अन्धा, उसकी मिथ्या आडम्बर युक्त लड़कपन की बात वह वाद के लक्षण युक्त नहीं उसकी बुद्धि और आंखें अन्धकारावृत, वह सन्निपाती, वह कोनों देके पढा वह अविद्या युक्त, बालक बधिर, बिचारा संस्कृत विद्या पढा ही नहीं, ऐसे ऐसे शब्द और वाक्यों से परिपूर्ण पाया खेद की बात है क्यों वृथा इतना कागज बिगाड़ा मैं तो आपही अपनेको बड़ा बे समझ बड़ा अविद्वान बड़ा आलसी बड़ा अशास्त्रवित् बड़ा अव्युत्पन्न बड़ा अन्धा पहले से माने हुये हूं यदि इनकी जगह राम नाम लिखा होता कदाचित कुछ पुण्य

भी हो सकता (राम राम) मेरे शिर पर जाट खाट और कोल्हू चढागा है (भ्रमो च्छेदन पृष्ट १०)-(Thanks)पर मैं तो पहाड का भी बोझ सहसक्ता हूँ हाँ मुझको छली और कपटी जो लिखा है उसका कारण कुछ समझ में नहीं आया यदि कहे कि जो जैसा होता है वैसा ही दूसरो को भी समझता है तो ऐसी बात मनमें लाने के भी पाप का भागी मैं नहीं हुआ चाहता जो हो मैं तो अपने प्रश्न का उत्तर चाहता था प्रश्न मेरा एकही इतनाकि "आपने लिखा" ब्राह्मण ग्रंथ सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत है, वादी कहता है जो संहिता ईश्वर प्रणीत है, तो ब्राह्मण भी ईश्वर प्रणीतहै और जो ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत हैं तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत है आपने लिखा वेद (संहिता मात्र) स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण है वादी कहता है जो ऐसा तो ब्राह्मणही स्वतः प्रमाण है आप का संहिता परतः प्रमाण होगा (निवेदन पृष्ठ ८). "आप संहिता के मण्डन और ब्राह्मण के खण्डन का ऐसा प्रमाण दीजिये जिससे ब्राह्मण का मण्डन और संहिता का खण्डन न होसके केवल आपके कहने से कोई कुछ क्यों मान लेगा" (नि० पृ० ९) निदान भ्रमोच्छेदन की बाईसों पृष्ठ बाईस बार उलट डाली इसके सिवाय उसमें और कुछ उत्तरनहीं पाया कि देखिये राजाजीको मिथ्या आडम्बर युक्त लडकपन की बात को जैसे कोईकहे कि जो पृथ्वी और सूर्य ईश्वर के बनाये हैं तो घडा और दीप भी ईश्वर ने रचे हैं" औरजो सूर्य और दीप स्वतः प्रकाशमान हैं तो घटपटादि भी स्वतः प्रकाशमान हैं,, (भ्र० पृष्ठ १२ और १३) भला सूर्य और घडे की उपमा संहिता और ब्राह्मण में क्यों कर घट सकगी उधर सूर्यके सामने कोई आधघटेभी आंखखोलके देखतारहे अन्धानहीं तोचक्षु रोग सेअवश्य पीडित होवे जेठ की धूप में नंगे सिर बैठे सन्निपाती नहीं तो ज्वर ग्रस्त अवश्य हो जावे यदि अग्न्युत्तेजक कांच सामने रख दें कपड़ा लत्ता ही जल जावें जन्म भर उछले कूदे कैसे ही बादल पर चढे कभी सूर्य्य तक न पहुँचे इधर कुम्हार से यदि चाक डंडा और कुछ मिट्टी ले आवे चाहे जितने घडे आप अपने हाथ बना रोवे और फिर जनचाहे तोड डाले संहिता और ब्राह्मण दोनोंग्रन्थ हैं एक से कागज पर एक सी स्याही से लिखे हुये व छपे हुये और एक से वपर्नों में बंधे हुए जब तक बतलाया न जावे जानना भी कठिन है कि कौन संहिता है और कौन ब्राह्मण,

पर हा उस, काल से लेकर- कि जिससे पहिले किसी को कुछ विदित नहीं आज तक सब वैदिक हिन्दू अर्थात जो हिन्दू वेद को मानते हैं संहिता और ब्राह्मण दोनों को बराबर माननीय मानते चले आये स्वामी जी महाराज को अपने ही इस न्याय से कि "जो सैकडो आप्त ऋषियों को छोड कर एक ही को आप्त मान कर, सन्तुष्ट रहता है वह कभी विद्वान् नहीं कहा जा सकता (भ्र० पृष्ठ १५) ब्राह्मण का परित्याग न करना चाहिए आपस्तम्बादि मुनि प्रणीत सूत्रों के परिभाषा सूत्र मे भी "मंत्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्" ऐसा ही लिखा है और स्वामी जी महाराज जो यह कहते हैं कि "क्या आप जैसा कात्यायन को आप्त मानते है वैसा पाणिनि आदि ऋषियों को आप्त नहीं मानते ' . जो उनको भी आप्त मानते हो तो मंत्र संहिता ही वेद है उनके इस वचन को मान कर तद्विरुद्ध ब्राह्मण को वेद संज्ञा के प्रतिपादक वचन को क्यों नहीं छोड़ देते" (भ्र० पृष्ट १५) सो पहिले तो स्वामी जी महाराज यह बतलावें कि पाणिनि आदि ऋषियों ने कहा ऐसा लिखा है कि "मन्त्र संहिता ही वेद है" ब्राह्मण वेद नही है, वरन पाणिनि ने तो जहाँ मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने को प्रयोजन देखा स्पष्ट "छन्दसि" कहा अर्थात् वेद मे अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनो मे और जहाँ केवल मन्त्र व ब्राह्मण का देखा "मन्त्रे" व "ब्राह्मणे" कहा और जहा मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहा "भाषायाम्" कहा भला जैमिनि महर्षि के पूर्व, मीमांसा को तो स्वामी जी महाराज मानते हैं उसमे इन सूत्रों का अर्थ क्योंकर लगावेंगे "तच्चोदकेषुमन्त्राख्या"–शेषे ब्राह्मणशब्दः" (अ० २ पा० १ सू० ३३) इसका अर्थ बहुत स्पष्ट है कि वेद का मन्त्रो से अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण, निदान जब मैंने गौतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रमाणिक उत्तर पाया और न स्वामी महाराज की वाक्य रचना का उसमे कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामीजी महाराज ने किसी मेम अथवा साहब से कोई नया तर्क और न्याय रूस अमेरिका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो फरंगिस्तान के विद्वज्जन मंडली भूषण काशीराज स्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिखलाया बहुत अचरज मे आये और कहने लगे कि हम तो स्वामी जी महाराज को बडा पंडित, जानते थे पर अब उनके मनुष्य होने मे भी

सन्देह होता है (तब तो धर्मोच्छेदन को धर्मोत्पादन कहना चाहिये ।) और अंग्रेजी में कुछ लिख भी दिया नीचे उसकी भाषा सहित छापा जाता है ।

The question at issue between Raja Shivaprasad and Dayanand Saraswati is the authoritativeness of the several parts of what is commonly comprised under the name 'Veda'. Dayanand Saraswati rejects the Brahmanas and Upnishads (with one exception) and acknowledges the authority of the Sanhitas only. As this procedure is not in agreement with the religious belief of the Hindus of the Present day as well as of past ages of which we have records, Dayanand Saraswati is bound to Produce convincing proofs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Sanhitas are ईश्वरोक्त while The Brahmans and Upnishads are merely जीवोक्त but how does he prove this assertion? (for as it stands it cannot be called anything but a mere assertion), The assertion of the Sanhitas being स्वत प्रमाण while the Brahmans and Upnishads are merely परत प्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Dayanand Saraswati has brought forward up to the present, Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both be स्वत प्रमाण if one is so?" or again "why should not both be परत, प्रमाण if one is so?" and this reasoning could certainly not be employed by any one for proving that other nonvedic books as well are to be considered equal to the veda, for the veda alone (including Brahmans and Upnishabs) enjoys the privilege of having since immemorial times been acknowledged by all Hindus as sacred and revealed books

With regard to the passage quouted by Dayanand Saraswati from the Satapatha Brahmana (Brihadaranyak

ऐसा है जैसा स्वामी दयानन्द जी महाराज को मुसलमान कहना ।

(३) इतिहास तिमिरनाशक का आशय स्वामी जी की समझ में नहीं आया उसकी भूमिका की नकल * इसके साथ कीजाती है उससे विदित होगा कि "समझ" है बहुत बात खण्डन के लिये लिखी गई मेरे निश्चय के अनुसार उसमें कुछ भी नहीं है ।

(४) जो स्वामी जी जैन को इतिहास तिमिरनाशक के अनुसार मानते हैं तो वेदो को भी उसके अनुसार क्यों नहीं मानते ?

आपका—शिवप्रसाद †

श्रीमान पण्डित शिवचन्द्र जी निज रचित "मूर्तिपूजा मण्डन" पुस्तक पृष्ठ ८ पंक्ति १४ में लिखते हैं कि—

बहुधा अज्ञानी मनुष्य ऐसा कहते हैं कि चार्वाक और बौद्ध और जैन तीनो एक हैं, उनका ऐसा कहना सर्वथा असत्य है क्योंकि जब तक षट्दर्शन का ज्ञाता न होगा तब तक मत के भेदो का ज्ञाता भी न होगा और बिना जाने किसी के धर्म का एकरूप अथवा शाखा प्रतिशाखा कहना और पुस्तको मे लिखना अयोग्य और अन्याय अधर्म्म का कारण है जो लोग ऐसा कहते हैं उनको जैन धर्म्म का रहस्य कुछ मालूम नहीं किन्तु जैसा किसी से सुना वैसा ही लिख दिया इसको भेद शास्त्र ज्ञान के बिना कभी नहीं जाना जायगा, इससे जिनको जानने की इच्छा हो उनको योग्य है कि थोडे दिन षटमत के शास्त्रों का अध्ययन कर सब मतो का रहस्य जानें और जो बिना जाने कहते है या पुस्तक में लिखते हैं जब कोई प्रश्न करेगा तो उस वक्त उत्तर देना दुर्लभ होगा जैन और बौद्ध चार्वाक इनका भेद और यथार्थ व्याख्यान न्याय शास्त्रों से जानना चाहिये और जैन बौद्ध की एकता करनी ऐसी है जैसा कि अमृतमें विष मिलाना जब मत मतान्तर का भेद ही मालूम नहीं तब उसकी जो समीक्षा करी है वो भी असत्यहै

* इतिहास तिमिरनाशक की भूमिका की नकल यहां नहीं लिखते हैं जिसको देखना हो असल पुस्तक में देख ले।

† यह पत्र ४ अप्रेल सन् १८[illegible] साथकोड पत्र के रूप पर भी प्रकाशित हो चुका है

विचारना चाहिये कि जिसके देव, गुरु शास्त्र में तफावत हो और एक चिन्ह भी नहीं मिलै तो दो धर्म एक किस तरह हो सकते हैं चार्वाक नास्तिक मति शून्यवादी हैं और बौद्धमती क्षणिकवादी पचभूत आत्मा को मानते हैं आत्मा का परलोक मुक्ति नहीं मानते उनका देव बुध धोती दोपट्टा यज्ञोपवीत का धारक गुरु रक्ताम्बर है जीवादि सात तत्त्व को मानते हैं जैनी आस्तिक्य मति स्वर्ग नर्क मोक्ष मानते हैं जीवादि सात तत्त्व को मानते हैं उनका देव आप्त वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशक गुरु दिगम्बर पूर्वा पर विरोध रहित शास्त्र है और जो लिखते हैं कि अमरकोष में लिखा है कि (सर्वज्ञ सुगतो बुद्धो) इत्यादि पाठ के नाम से नाम मिलते हैं इससे हम एक समझते हैं तथास्तु प्रथम जो अमरकोष की साक्षी लिखते हैं वो उसको अप्रमाण समझते हैं यदि प्रमाणीक मानते तो देवो को नास्तिक न मानते और शब्दो का अर्थ भी नहीं बदलते दूसरे नाम की एकता से एक नहीं हो सकते जैसा कि किसी का नाम है राजा या धनपाल नृसिंह लक्ष्मीपति अमरचन्द्र इत्यादि विख्यात है तो वो मनुष्य तत्तुल्य नहीं समझा जायगा न वो उक्त नाम के समान गुणी है केवल संज्ञा मात्र जाना जायगा इस तरह बौद्धमत वालों को सर्वज्ञ समझना चाहिये अथवा जैसा ईसाई भी ईश्वर कहते हैं और अन्य समाज वाले भी अपने इष्ट को ईश्वर कहते हैं लेकिन दोनों मत एक किस तरह समझे जाय इसी तरह जैनमत और बौद्धमत एक नहीं न शाखा प्रतिशाखा, संसार में मुख्य षट्दर्शन अनादि काल से हैं शैव, वेदांती, नैयायिक, बौद्ध, जैन,मिमांसक,इस भांति जानिये ॥ इत्यादि० ॥

फाल्गुण मास के पूरा होते पर स्वामी जी जयपुर में पधारे और ऋग्वेद भाष्य अंक ७८।७५ वैदिक प्रेस काशी से छपकर निकला, लाहौरके पंजाबी उर्दू अखबार में लाला ठाकुरदास के प्रसिद्ध १९ मार्च सन १८८१ ई० को निम्न लिखित पत्र प्रकाशित हुआ जिसको दयानन्द दिग्विजय के संग्रहकर्त्ता ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है और आर्य्य समाचार पत्र संख्या २२ मास माघ पृष्ठ ३३०।३३१ पर यह लेख मेरठ भी छप चुका है ॥

हमको मालूम हुआ है कि गुजरानवाला में जो तर्क पूज्य आत्माराम ने ठाकुर दास भाभडे द्वारा प्रकाशित किये थे स्वामी दयानन्द सरस्वतीने उनके यथार्थ उत्तर

आत्माराम जी के हस्ताक्षरी प्रश्न पहुँचने पर ही देदिये थे कि चुनांचे उनका अखबार आफताब पंजाब तारीख १३ दिसम्बर सन् १८८० ई० में छप चुका है, प्रकट में स्वामी जी ने उसमें हर एक प्रश्न का उत्तर लिखा और अंत में यह और साफ लिख दिया था कि और पूछना हो तो सामने होकर पूछलें, परन्तु आश्चर्य की बात है कि न तो वह उन उत्तरों को स्वीकार करते हैं और न स्वामी दयानन्द जी के सन्मुख होते हैं तो मालूम होता है कि या तो अब वे कायल हो गये हैं या आइन्दा हो जाने का खौफ करते हैं वरना इन बातों से दीदादानिस्ता तरह तरह अखबारों में एक प्रकार की अत्यन्त आश्चर्यकारी और सर्वथा अनुचित बातें प्रकाशित करने पर वह कभी कटिबद्ध न होते जैसा कि अखबार आम तारीख २४ जनवरी सन १८८१ ई० में छपा है कि सरस्वती जी के नाम एक नोटिस एक मास की अवधि का भेजा गया था परन्तु थोड़े ही दिनों में उलटा चला आया कि दयानन्द का पता नहीं मिलता रजिस्टरी आर्य्यसमाज गुजरानवाला को दिखाई गई कि मेम्बर लोग पता बतावें परन्तु वहां से भी यही उत्तर मिला कि इस बात की हमको भी कुछ खबर नहीं है आखिर जैनियों ने इश्तहार जारी किया कि दयानन्द छिप गये और अम्बाले में अब इसी फैसले की गर्ज से २० जनवरी से २४ जनवरी सन् १८८१ ई० तक बड़ा भारी समारोह होगा, आर्य्य समाजियों को उचित है कि अपने स्वामी जी को इस में भेदी करदें ताकि वे पधार कर शीघ्र सत्यासत्य का निर्णय करें और फिर यही विषय न्यूनाधिक अखबार आम तारीख ७ फरवरी सन १८८१ ई० में छपा है, सच पूछिये तो यह बात (जो आश्चर्यकारी और अप्रमाणीक गप्प है) पूज्य महाराज आत्माराम और उनके सेवक ठाकुरदास की एक हंसी और बदनामी करा रही है क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का पत्र जो आफताब पंजाब में छपा है, उसमें साफ लिखा है कि १७ नवम्बर सन् १८८० ई० तक देहरादून और उसके बाद आगरे में स्वामी जी का कयाम लिखा हुआ है तो कैसे रूपोशी का गुमान हो सकता है, और इस शहर में यह भी हर एक को मालूम है कि यहाँ के मेम्बरान आर्य्यसमाज से पूछने पर ठीक २ पता उनको बता दिया था, किंतु एक नोटिस भी छपवा कर स्वामी जी के पते सहित ठाकुरदास के पास भेजा और स्थान २ पर लगवा दिया था लेकिन

ठाकुरदास ने जो नोटिस यहां से रवाना किया तो देहरादून भेजा न आगरे व अम्बाले में भेजा, इससे दुक (जरा) शर्माना चाहिए था, न कि और भी अखबारों में धूल उड़ाना, और फिर लिखा है कि २० जनवरी से २४ जनवरी सन् १८८१ ई० तक इसी फैसले के लिये तारीख मुकर्रिर थी और इश्तहार जारी हुआ, इस फिकरे में ये खुल्लमखुल्ला सुनाते हैं कि हम भी पाँचों सवारों में हैं, कोई पूछे कि यह इश्तहार कौन सा है जो समारोह अम्बाला २० जनवरी से लगायत २४ जनवरी सन् १८८१ ई० के विषय में छपा था कहो क्या वही इश्तहार नहीं है? जो सुनहरी अक्षरों में देहली के किसी यन्त्रालय से छप कर रथयात्रा के मेले सम्बन्धी अम्बाले के बहुधा स्थानों पर भेजा गया था, क्या यह वही तारीखें थीं जो दिगाम्बराम्नाय के जैनियों की रथयात्रा की नियत हुई थीं, और क्या यह वही मेला है कि जिसमें आत्माराम जी आदि ने आदिमें अन्त पर्यंत जाने से मुख मोड़ाथा, और क्या यह वही इश्तहार तो नहीं कि ठाकुरदास उसको अपना गुप्त भेद प्रकट होने के भय से (कि यथार्थ में तो यह रथयात्रा के मेले की चिट्ठी थी और ठाकुरदास उसी को स्वामी दयानन्द सरस्वती की रूपोशी का और अपने शास्त्रार्थ के विज्ञापन का पत्र बतलाते थे) किसी को दिखाते नहीं थे और अत को जब गुजरानवाला में इस गुप्त भेद का भाँडा फूटा तो उनके पूज्य साहब आत्माराम की लोगों में अधिक हंसी हुई, आश्चर्य है कि पूज्य साहब और उनके सेवक जन इन बातों से कुछ भी लज्जित नहीं होते।

पूज्य साहब यदि किसी कारण से स्वामी जी के सन्मुख होकर प्रश्नोत्तर करना स्वीकार नहीं कर सकते थे तो चुप ही हो जाते ऐसी २ वार्ता समाचार पत्रों में मुद्रित कराकर व्यर्थ अपनी और अपने सेवक की बदनामी करा रहे हैं, यथार्थ में जब कि ये जैन धर्म के एक विख्यात विद्वान् हैं तो यह करना उचित नहीं है जिसमें बदनामी हो सन्मुख होकर वार्तालाप करने में बड़ा लाभ है, दूर दूर से बखेड़ा करने में यह अपना और अपने सेवक का क्या सुधार समझते हैं, हम कुछ स्वामी जी के तरफदार अथवा पूज्य साहब के प्रतिपक्षी नहीं हैं, हमको केवल व्यर्थ बखेड़ा देखकर खेद होता है, पूज्य साहब यदि किसी विशेष कारण से स्वामी जी के सन्मुख होकर बातचीत नहीं कर सकते अथवा सन्मुख होने से

कोई और कारण है, जो जैनी लोग और उनके बड़े बड़े पंडित कहां नहीं हैं, मेरठ, सहारनपुर, आगरादि जहां स्वामी जी इन दिनों विराजमान रहे हैं, सब जगह जैनी लोग और उनके अच्छे २ पंडित मौजूद हैं, पूज्य साहब यदि चाहें तो उनको पत्र द्वारा सूचित कर सकते हैं कि वह अपने किसी उत्तम पण्डित द्वारा बातचीत करके हर एक विषय को भले प्रकार सिद्ध कर लें जिसमें सब विषयों का यथार्थ और शीघ्र निर्णय होजाय, और युगल पक्ष का व्यर्थ समय नष्ट न हो।

अखबार आम व मित्रविलास में जो कभी २ सर्वथा मिथ्या और कटुक शब्द युक्त पद उनके ओर से कुछ समय से छपते हैं यह मानो उनको और उनके धर्म को बदनाम करते जाते हैं इसमें कुछ शक नहीं कि उनकी अथवा उनके सेवक की ऐसी व्यर्थ बातों से सम्पूर्ण जैनी मात्र बदनाम होते हैं, इत्यादि ।

(एक गुजरानवाला)

लो और सुनो,

लाला ठाकुरदास साहब जैनी ने तारीख ९ फरवरी सन् १८८१ ई० के छपे एक इश्तहार द्वारा मुकाम गुजरानवाला वाके मुल्क पंजाब से अपना मन्शा नालिश तौहीन मजहब जैन के हस्ब मनशाय दफा २९५ ताजीरात हिन्द श्री स्वा० दयानन्द सरस्वती के नाम पर जाहिर किया है, और पूछा कि सब आर्यसमाज सत्यार्थप्रकाश के लेख को सत्य मानते हैं या नहीं ? अगर मानते हों तो वह भी इस इल्जाम में शरीक हैं, जो पूर्वोक्त लेख से सिद्ध होता है, इस इश्तहार के लेख द्वारा ऐसा मालूम होता है कि यह सब आर्यसमाजों में भेजा गया, और इसके द्वारा सम्पूर्ण आर्य पुरुषों को भय उत्पन्न करने का विचार ठाकुरदास का है, इसलिए अति आवश्यक हुआ कि इसका यथार्थ वृत्तान्त प्रकाशित करूं और यहां की समाज से पूर्वोक्त नोटिस का ठीक उत्तर दूं ।

प्रकट हो कि जब स्वामी जी महाराज गतवर्ष यहाँ थे तभी ठाकुरदास ने यह पूछा था कि सत्यार्थप्रकाश में जो जैनी मत की बात लिखी है वह किस पुस्तक में से लेकर लिखी है, और जैनी व बौद्ध का एक होना कहाँ से साबित, इसके उत्तर भेजे गए, और लिखा कि कोई वक्त नियत करके वार्ता कर लो उसका

आखिरी जवाब यह दिया कि हम नालिश करेंगे, खैर यह उनकी मरजी, हमारे समाज से यह जवाब मिला कि हम सब लोग स्वामीजी के हर तरह से साथी हैं उनके कहे की पुष्टि भी अपनी शक्ति के अनुसार करेंगे ।

सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३९६ से पृष्ठ ४०७ तक जो देखेगा, साफ लाला साहिब की भूल जान लेगा । इससे प्रकट है कि उन्होंने उस को बुद्धिमानी के सूर्य्य के सामने तो नहीं परन्तु मतपक्ष के अंधेरे में पढ कर देखा कसूर मुआफ लाला साहिब सत्यार्थ प्रकाश के समझने के अलावा कानून भी खूब समझ सकते हैं, देखिये जिस में बहुत सजा इस विषय में लिखी है उसी को ढूढ लिया, नहीं मालूम कि लाला साहिब ने हम लोगों को दोषी ठहराने से अपना क्या मनोर्थ सिद्ध समझा है क्या यह नहीं जानते कि अगर कोई किसी को सच्चा समझे, और इससे उसकी झूठी तहरीर पर (कि जिससे किसी को खिलाफ कानून कुछ रज पहुँचा हो) सच्चा बयान करे तो वह दोषी नहीं होसकता, हा शायद इंग्लिश ला अर्थात् सरकारी कानून का कोई पुराना मशला हो जिससे हम पर भी कानून का असर पहुंचे । या कोई जैन मत की राजनीति, आश्चर्य्य की बात की नालिश किया चाहते हैं, तिसपर भी स्वामीजी की तौहीन करते, हा शायद वह अपने को कानूनी असर से बाहर समझते हों, । खैर वह जानें और उनका काम जाने, हम अपनी सभा के नियमानुसार चिताते हैं देखिये हमको दोषी ठहराने में किसकी खता है, अगर स्वामी जी की तहरीर गलत समझते होते तो क्या उस पर ऊल जलूल लिखना भले आदमियों का काम था ? खैर जो जैनमत बौद्धमत की शाखा केवल ठाकुरदास के कहने से न सही, हमने तो राजा शिवप्रसाद साहब सी० एस० आई० के इतिहास तिमिरनाशक तृतीय खण्ड पृष्ठ ८ के लेख को जो खुद जैनमत के हैं, और चन्द दलीलों से मानलिया है, जो झूठ हो, तो कोई खडन लिखे, अगर ठीक होगा तो कोई न कह सकेगा, अगर कोई डराकर झूठ बुलवाना चाहे तो यह जीते जी होना नहीं, क्योंकि सच बोलना हमारा प्रथम धर्म है * और यों तो हम खुद अपनी खाकसारी का इकरार इस "शैर" के मुआफिक करते हैं,

* आगे चल कर मुन्शी इन्द्रमणि जी के मुकाबले में आपकी सब सचाई मालूम हो जायगी ।

जुबां खोलेंगे क्या हम पर मुद्दई बद शआरी से ।
कि हमने खाक भर दी उनके मुंह में खाकसारी से ॥

गाराश वे मतलब शेखी लाला साहब की तरह मारना हम से नहीं हो सकता जिसको जो अच्छा लगे करे । हम तो अपने देश वालों को झूठों के झूठे दोष से जानकार करते हैं, अगर अब भी न मानें तो पश्चाताप करेंगे ।

द० आनन्दीलाल मंत्री आर्यसमाज मेरठ ।

जब स्वामी जी ने देखा कि काशी के पण्डित लोग सदैव काल हमारे कार्यों में विघ्न डालने की चेष्टा करते रहते हैं और इसकी रोक का कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं हो सकता, इस लिए अपना वैदिक प्रेस (छापाखाना) १ ली अप्रेल सन् १८८१ ई० व मिती चैत्र शुक्ला ३ सम्वत् १९३८ से काशी से उठाकर इलाहाबाद में स्थापित किया, और उसी स्थान में वैशाख सम्वत् १९३८ में यजु वेदभाष्य अंक २४ । २५ प्रकाशित हुआ जिसके टाइटिल पेज पर निम्न लिखित ये दो विज्ञापन छपे थे ।

॥ विज्ञापन पत्र पहिला ॥



सब सज्जनों को विदित होकि वैदिक यन्त्रालय बनारस से प्रयाग में १ ली अप्रेल सन् १८८१ ई० से आगया है और यहां सब काम का प्रबन्ध जो कुछ बनारस में था होगया है ।

॥ विज्ञापन पत्र दूसरा ॥



सब सज्जनों को विदित होकि श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी से राजा शिवप्रसादजी ने जो कुछ शाब्द उठाया था उस विषय के प्रथम निवेदन का उत्तर स्वामी जी ने भ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक से दिया था कि जो सब सज्जनों को विदित है, अब जो राजाजी ने द्वितीय निवेदन दिया है उस पर श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द जी व बालशास्त्री जी आदि विद्वानों की सम्मति नहीं है, और स्वामी जी ने प्रथम ही यह लिखा था कि अब आगे को जबतक किसी पत्र पर विशुद्धानन्द जी व बाल शास्त्री जी का सम्मति न होगी हम उत्तर न देंगे, इस लिये इस दूसरा निवेदन का

उत्तर एक पंडितजी ने अनुभ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक में दिया है, और वैदिक यन्त्रालय में छपवाया है मैं शुद्धता से प्रकाशित करता हूँ कि श्रीयुत राजा शिवप्रसाद जी आदि सज्जन महाशय पक्षपात छोड़कर इसको देखें और सत्यासत्य का विचार करें कि जिससे परस्पर प्रीति और देशोन्नति यथावत हो, मू० प्रति पुस्तक –)

ज्येष्ठ सम्वत् १९३८ में स्वामी जी अजमेर में विराजे, वैदिक प्रेस प्रयाग से मुद्रित होकर ऋग्वेदभाष्य अंक ७६ । ७७ प्रकाशित हुआ जिसके टाइटिल पेज पर एक विज्ञापन में सत्यार्थ के पंचम पुस्तक "नामक" की बहुत प्रशंसा लिखी गयी है जो प्रथम तारीख जून को छप कर तैयार हो चुका था, और स्वामी जी ने मुन्शी बख्तावरसिंह को हटा कर शादीराम को नियत किया था परन्तु इस विज्ञापन में वैदिक प्रेस के मैनेजर दयाराम लिखा है मालूम नहीं शादीराम भी कब और क्यों निकाले गये ? और यह हम प्रथम ही लिख चुके हैं कि दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग का सम्पूर्ण होना उसके रचियता ने ज्येष्ठ शुक्ला० ९ सं० १९३८ लिखा है ।

अजमेर से चलकर स्वामी जी स्थान मसूदा राजधानी राव बहादुरसिंह जी में पधारे, उक्त रावसाहब ने यथायोग्य आदर सत्कार किया, श्रावण के अंत तक स्वामी जी इसी स्थान पर विराजे रहे, और राजा साहब से स्वामी जी के विशेष प्रसन्न होने का कारण यह था कि इस स्थान पर ढूँढिये * लोगों का अधिक प्रचार था सो यह लोग व्याकरण विद्या से रहित अथवा ज्ञानशून्य भी होते हैं जो अपने गुरुत्व के घमण्ड में विद्वानों की निन्दा करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती का आगमन सुन उनकी व्यर्थ निन्दा अपने स्थान पर बैठ कर निज विश्वासी मनुष्यों के सन्मुख करने लगे, यह नहीं विचारा कि स्वा० दयानन्द सरस्वती संस्कृत विद्या का अच्छा जानकार है हम जैसे भाषा रसिक अल्पाभ्यासी उसकी निन्दा कर अपना ही कुछ खोवेंगे, इनकी निन्दा करने का यह फल हुआ

* संवेगी साधु आत्माराम जी इन लोगों से बड़ा द्वेष है, वे अपनी बनाई पुस्तकों में लिखते हैं कि ढूँढिये लोग विद्याहीन व्याकरण ज्ञान शून्य अर्थाचार्य सूत्र में मुंह मुख बंधिका बांधने वाले जैन धर्म से पृथक् हैं, और इनके मलीन चालचलन व्यवहार को देखकर अन्य धर्मावलम्बी जैन धर्म की निन्दा करते हैं ।

कि स्वामी दयानन्द सरस्वती उनसे शास्त्रार्थ करने को खड़े हो गये, अनेक बार उनके शिष्य श्रावकों द्वारा ढूंढ़ियों को बुलाया परन्तु विद्याहीनों की मजाल है जो दयानन्द सरस्वती के सन्मुख आवें, ढूँढिए लोग तो जान बचा कर छिप गए और उनके अनेक श्रावक चेले स्वामी दयानन्द सरस्वती के विश्वासी हो गए, जिसमें सत्य सनातन जैनधर्म की (जिसमे अब भी अनेक विद्वान् सूर्य्य समान विद्यमान् हैं) व्यर्थ निन्दा हुई।

स्वामी जी के मसूदा में रहते रहते ही वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से मुद्रित होकर यजुर्वेदभाष्य अंक २६ । २७ और ऋग्वेदभाष्य अंक २८ । २९ प्रकाशित हो गए और इसी अवसर पर स्वामी जी के शिष्य गोपाल शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी ने "दयानन्द दिग्विजय" का दूसरा भाग प्रारम्भ किया जैसा कि निम्न लिखित श्लोक से विदित है।

८ ३ ६ १
वसुरामाङ्क भू वर्षेश्रावणस्य सिते दले।
नवम्यां गुरु वारेच ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ १ ॥

और फिर स्वामी जी आगे को चले और मार्ग में स्थान रायपुर इलाके राज जोधपुर में कुछ दिन विराजे परन्तु इस समयका कोई विशेष समाचार हमको नहीं मिला केवल यजुर्वेदभाष्य अंक २८ । २९ (जो भाद्रपद शुक्ला ५ को छपा) तथा ऋग्वेदभाष्य अंक ३० । ३१ (जो आश्विन शुक्ला० ५ को छपा) के टाइटिल पेज पर यह लिखा है कि स्वामी जी रायपुर इलाके जोधपुर (बिआवर से रेल का दूसरा स्टेशन) के माधी बाग में विराजमान हैं।

इस सम्वत् १९३८ के भाद्रपद मास में स्वामीजी रचित संस्कृत पठन पाठन सम्बन्धी "कारकीय" १ "सामासिक" १ यह दो पुस्तक वैदिक यंत्रालय में छप कर निकली तत्पश्चात् स्वामी जी स्थान बनैरा इलाके भीलवाड़े में पधारे, जिसकी साक्षी के लिए यजुर्वेदभाष्य अंक ३० । ३१ का टाइटिल पेज है जिस पर लिखा है कार्तिक शुक्ला ५ सम्वत् १९३८ को वहां विराजमान थे फिर प्रसिद्ध नगर चित्तौड़ इलाके राज उदयपुर में पधारे, ऋग्वेदभाष्य अंक ३२ । ३३ के टाइटिल पेज पर लिखा है कि मार्गशिर्ष शुक्ला० ५ तक चित्तौडगढ़ इलाके राज उदयपुर स्थान रही

के महादेव के मंदिर मे थे। इसी मार्गशीर्ष मे संस्कृत पठन पाठन की "पद्धति" नामक पुस्तक स्वामी जी की रची वैदिक यन्त्रालय मे छपकर प्रकाशित हुई, और फिर स्वामी जी इंदौर रतलाम होते हुए बम्बई मे पधारे, इनके आने की खबर पहिले ही से मिल चुकी थी इस लिये अनेक प्रतिष्ठित मनुष्यों सहित कर्नल अलकाट साहब ने रेल के स्टेशन पर अगवानी की। और बड़ी शोभा सुश्रूषा के साथ इनका नगर मे प्रवेश कराया और प्रसिद्ध बालकेश्वर गोशाला मे डेरा जमाया, और स्वामी जी का वहाँ कुछ दिन ठहरना हुआ था कि गुजरांवाला निवासी ठाकुरदास को यह समाचार मिल गए और उसने मन मे विचारा कि इस समय स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसे स्थान पर हैं जहा आत्माराम जी के अनेक धनाढ्य ओशवाल चेले रहते हैं उनकी सहायता से मेरे अनेक कार्य सिद्ध होंगे समय को अनुकूल समझ शीघ्र लाहौर नगर से एक चिट्ठी लिख रजिष्ट्री करा स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास पठाई जिसका खुलासा यह था कि बनारस, अहमदाबाद, बम्बई इन तीनो स्थानों मे से जहा आप ठीक समझें वह स्थान स्वीकार करें हम शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, इस चिट्ठी का उत्तर शीघ्र देना पहिले जैसी भूल न करना इत्यादि० ।

ता० १०—१—८२ ई० *

इस चिट्ठी का यद्यपि स्वामी जी ने कुछ उत्तर तो नहीं दिया परन्तु यह खयाल अवश्य हो गया कि इस गुजरात प्रान्त के ओशवाल श्वेताम्बरी लोग बड़े धनवान और गुरुभक्ति वाले भी हैं, और विशेष करके अहमदाबाद मे तो इनकी पूरी पूरी प्रबलता है, जहाँ हमारे विश्वासियो मे से कोई नहीं है और होने अवश्य चाहिये, सो इसी ध्वनि मे निमग्न हो बम्बई में जो सात महीने तक डेरा जमाया था उसके मध्य ही मे नौसारी सूरत, बड़ोदा आदिक कई स्थानों मे घूम कर अहमदाबाद पधारे तो यहा बम्बई सरकारी संस्कृत पाठशाला के अध्यापक पंडित भोलानाथ जी शास्त्री से शास्त्रार्थ कर पराजय पाई और शीघ्रता पूर्वक बम्बई को लौट गये स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य गोपाल शास्त्री, फर्रुखाबाद निवासी कृत "दयानन्द दिग्विजय" का दूसरा भाग फाल्गुण शुक्ला १० चन्द्रवार तारीख २७ जनवरी सन् १८८२ ई०

* यह चिट्ठी अखबार आफताब पंजाब लाहौर में भी छप चुकी है।

को पूरा हुआ, जैसा कि निम्न लिखित श्लोक से विदित होता है ॥

८ ३ ६ १
वसु रामाङ्क चन्द्रेब्दे तपस्यस्य सिते दले ।
दशम्यां चन्द्र वारेच ग्रन्थोयं पूर्णतां गतः ॥ १ ॥

दयानन्द दिग्विजय पुस्तक में "थियोसाफिकल,,के विषय में यह लिखा है कि- यह एक नवीन मत देश मे आठ वर्ष स प्रचलित हुआ है, इसका जन्म दाता कर्नल अल्काट और उसके साथ एक रूसी स्त्री है सन् १८७८ ई० में मुल्क अमेरिका से यह हिन्दुस्तान मे आये थे। शहर न्यूयार्क के रहने वाले हैं बहुधा मनुष्य इनको अलौकिक प्राणी समझते हैं, अमेरिका से इन्होंने दयानन्द को लिखा था कि हमारी "थियोसोफिट" आपके आर्य्य समाज की शाखा हुई और हम हिन्दुस्तान में आपके शिष्य होने को और संस्कृत सीखने को आते हैं हिन्दुस्तान में आनकर बदल गये और किसी धर्म को भी नहीं मानते हैं, प्रथम लिखा था कि सुसायटी के सभासदों से जो फीस वसूल होगी समाज में देंगे परन्तु नहीं दी, किन्तु सातसौ ७००) रुपये हरिश्चन्द्र चिंतामणि के दिये हुये भी गडप गये। मेरठ समाज के सभासदों ने भोजन वस्त्रादिक के अतिरिक्त सैकड़ों रुपये आदर सत्कार में व्यय किये थे उनको भी एक किताब देकर ३०) रुपये माग लिये। स्वामी दयानन्द जी के उपकारों को न मान कर उलटा कहते हैं कि हमने दयानन्द के अनेक उपकार किये हैं, प्रथम तो दयानन्द के सन्मुख ईश्वर का होना स्वीकार किया फिर अक्टूबर सन् १८८० ई० में जब दोनों पुरुष स्त्री मेरठ पधारेतो दोनोंने मिलकर ईश्वर के मानने से मना करदी जब वे अमेरिका से हिन्दोस्तान को चले तो अपना एक पत्र "इण्डियनस्पेक्टर' पत्र तारीख १४ जोलाई सन १८७८ ई० में छपवाया था कि न हम बुद्धिष्ट और न हम कृश्चियन और न हम ब्राह्मण या पुराण को मानते हैं किन्तु हम शुद्ध आर्यसमाजी हैं अब सन् १८८० ई० मे साफ लिखते हैं कि प्रथम हम बुद्धिष्ट् थे और आर्य समाजकी शाखा हमारी सुसायटी नहीं है, प्रथम जब बम्बई मे "थियोसाफिट" सुसायटी स्थापित की तो दयानन्द का भी नाम लिख लिया था। मेरठ मे यह प्रण किया था कि हम अपनी सुसायटी में आर्य समाजियों को नहीं भरेंगे परन्तु उसके प्रतिकूल उन्होंने बहुधा मनुष्यों को बहका

कर दयानन्द से प्रतिकूल कर दिया तब दयानन्द ने मेरठ आर्यसमाज के वार्षिको-त्सव पर साफ कह दिया था कि इनका कुछ भरोसा नहीं करना चाहिये। अति-रिक्त इसके जब दयानन्द जी दूसरी बार बम्बई पधारे अल्काट साहिब ने रेलवेस्टे-शन पर अगवानी की तो तबही से दयानन्द जी ने इनसे यह प्रश्न उठाया कि हमारा तुम्हारा ईश्वर विषय मे एक मत हो जाना ठीक है, पानाचन्द आनन्द जी द्वारा कहा सुनी होकर फैसले के लिये १७ मार्च सन १८८२ ई० का दिन नियत हुआ, परन्तु अल्काट साहिब ने यह बहाना किया कि मेरी मेम तुम से बात कर लेगी मैं नहीं आ सकता परन्तु मेम भी नहीं आई तब आर्यसमाज बम्बई की तर्फ से सर्व साधारण में यह छपा हुआ विज्ञापन वितरण किया गया कि 'कल' स्वामी जी 'थियोसाफिकल" के प्रतिकूल व्याख्यान देंगे। इस पर भी मेम साहिबा नहीं आईं और स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में उनकी प्रथम की आई हुई चिट्ठया पढ़कर भली भांति पूर्वापर विरोध दिखा दिया और दयानन्द ने यह भी कहा कि कर्नल अल्काट मुझसे इस लिए प्रतिकूल हुआ कि मैंने उसको भूत प्रेत के मानने को रोका था, और कहा था कि ऐसा करना उचित नहीं अखबार विलायत भी जाता है देश की बदनामी है परंतु अल्काट ने नहीं माना क्योंकि यह स्वार्थी मनु-ष्य है, इस का विश्वास करना उचित नहीं और यह योग विद्या भी बिल्कुल नहीं जानता इसकी सुसायटी का मतलब बौद्ध मत के फैलाने का है।

किताब "पण्डित दयानद और उनका नया पथ" पृष्ठ ३२ पर उसके रचियता लिखते हैं कि जब कर्नल अल्काट हिंदुस्तान में आये थे तो प० दयानद से उनकी अत्यंत गाढ़ी प्रीति हो गई थी और पण्डित साहब उनके स्वत अध्यापक और सभासद् बन बैठे थे, परन्तु अंत को यह गुप्त भेद प्रकट हो गया और सरकार को "थियोसाफिकल" सोसाइटी प्रचारकों की तरफ से अनेक प्रकार की अविश्वा-सता व राज विद्रोहता का शक हुआ तो झट स्वामी जी ने भी यह बहाना निकाल कर कि यह ईश्वर को नहीं मानते, पृथकता स्वीकार कर ली और बुरे शब्दों से उनको कोसने लगे। और कहने लगे कि हम कभी भी उस सोसाइटी के सभासद् नहीं हुये। परंतु इन्कार करने से क्या होता है। उन्होंने अपने रिसाले "थियो साफिस्ट" मे इसके प्रमाणार्थ कि दयानद जी उस सोसाइटी के सभासद् बने

थे । वह मेम्बरी का कागज छाप दिया कि जिस पर वह अपने हाथ से हस्ताक्षर कर सभासद् बने थे, और अन्यान्य भी अनेक प्रमाण प्रकाशित किये । जिनसे भले प्रकार सिद्ध हो गया कि दयानंद जी उस सोसाइटी के सभासद् थे । और उनके सत्य का भी भले प्रकार प्रकाश हुआ ।

इसी सम्वत् १९३८ में पेशावरादि एक दो स्थानों पर नवीन आर्यसमाज स्थापित हुई और वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित होकर पौष शुक्ला ५ को अङ्क ३० । ३२ यजुर्वेदभाष्य और माघ शुक्ला १५ को ऋग्वेदभाष्य अंक ३४ । ३५ प्रकाशित हुये जिनके टाइटिल पेजपर समझ योग्य कोई विज्ञापन नहीं था ।

जब कर्नल अलकौट से स्वामी जी का सम्बन्ध टूटा तो उनको यह ध्यान पैदा हुआ कि अब कर्नल साहिब मेरे प्रतिकूल मनुष्यों को द्वेषी बनावेंगे और इस बम्बई में श्वेताम्बर जैनियों की अधिकता है तो उनको गुजरानवाला निवासी ठाकुर दास ने मेरे प्रतिकूल कर दिया परन्तु जैनी लोगों में जीव दया ही परम धर्म है, इस लिए इसका कोई ऐसा उपाय करूं जिससे उनकी प्रतिकूलता व्यर्थ हो यह विचार निज रचित "गोकरुणा निधि" को प्रकट रूप से व्याख्यानों में सर्व साधारण को सुनाने लगे जिसका प्रथम सक्षेप यह है ।

कदाचित कोई कहे कि पशु को स्वयं मार कर खाने में दोष होगा बाजार से लेकर खाने में नहीं यह भी समझ ठीक नहीं, मनुजी ने आठ प्रकार के हिंसक लिखे हैं जैसे ।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी ।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेतिघातका ॥ १ ॥

(अर्थ) अनुमति (मारने की सलाह) देने मास के काटने पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिये लेने और बेचने, मास के पकाने और परसने और खाने वाले ८ मनुष्य घातक हिंसक अर्थात् ये सब पाप कारी हैं, और भैरव आदि के निमित्त से भी मास खाना मारना वा मरवाना महा पाप कर्म है, इसी लिए दयालु परमेश्वर ने वेदों में मास खाने वा पशु आदि के मारने की विधि नहीं लिखी, मद्य भी मास खाने का ही कारण है, इस लिये यहाँ सक्षेप से थोड़ासा लिखा है ।

मांसाहारी और मद्यपी मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों से रहित होकर उन दोषों में फसकर अपने धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष फलों को छोड़ पशुवत आहार निद्रा भय मैथुन आदिक में प्रवृत होकर अपने मनुष्य जन्म को व्यर्थ कर देते हैं, इसलिए कोई भी मादक पदार्थ सेवन न करना चाहिए।

इतना लिख स्वामी जी ने गोरक्षणी सभा की नियमावली * को बतलाया और उसके प्रचार पर दृढ कटिबद्ध होकर निम्न लिखित दो छपे हुए पत्र सर्व साधारण में प्रचलित कराए।

ओ३म्

सही करने का पत्र ।



ऐसा कौन मनुष्य जगत में है जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और दुःख को प्राप्त होने में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे के किए अपने उपकार में स्वयं आनंदित होता है वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिए क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है, और होगा जो परोपकार रूप अधर्म्म के सिवाय धर्म्म वा अधर्म्म की सिद्धि कर सके। धन्य वे महाशय जन हैं, जो अपने तन मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं। निन्दनीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थ वश होकर अपने तन मन और धन से जगत् में हानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं। सृष्टि क्रम से ठीक ठीक यह निश्चय होता है, कि परमेश्वर ने जो २ वस्तु बनायी हैं, वह वह पूर्ण उपकार लेने के लिए है, अल्प लाभ से महा हानि करने के अर्थ नहीं विश्व में देही जीवन का मूल है, एक अन्न और दूसरा पान इसी अभिप्राय से आर्य्य शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते न किसी को मारने देते थे। अब भी इन गाय बैल और महिष को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते। क्योंकि अन्न और पान की बढ़वाई इन्हीं से होती है और इससे सबका जीवन सुख से व्यतीत हो सकता है जितना राजा और प्रजा का बड़ा नुकसान इन के मारने और मरवाने में होता है उतना अन्य किसी कर्म

* गोरक्षणी सभा की नियमावली पुस्तक बढ जाने के भय से यहाँ नहीं लिखी।

से नहीं । इस का निर्णय 'गोकरुणा निधि' पुस्तक में अच्छे प्रकार कर दिया है अर्थात् एक गाय के मारने और मरवाने से ४२०००० चार लाख बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है, इसलिये हम सब लोग स्व प्रजा की हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी किन विक्टोरिया की न्याय प्रणाली में जो यह अन्याय रूप बडे बडे उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है, इस को इन के राज्य में से प्रार्थना से छुडवा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं, यह हमको पूरा निश्चय है कि विद्या धर्म्म प्रजाहित प्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी किन् विक्टोरिया पार्लियामेंट सभा और सर्वोपरि प्रधान आर्य्यावर्तस्थ श्रीमान् गवर्नर जनर्ल साहिब बहादुर सम्प्रति इस बडी हानि कारक गाय बैल तथा भैंस की हत्या को उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सबको परम आनन्दित करें। देखिये कि उक्त गाय आदि पशुओं को मारने और मरवाने से दुग्ध घी और कृषकों की कितनी हानि होकर राजा और प्रजा की बडी हानि हो गई और नित्य प्रति अधिक २ होती जाती है । पक्षपात छोड के जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म्म और परहानि ही को अधर्म्म निश्चित जानता है । क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं है कि जिस २ से अधिक उपकार हो उस का पालन बर्द्धन करना और नाश कभी न करना ।

परम दयालु न्याय कारी सर्वान्तर्यामी सर्व शक्तिमान् परमात्मा इस समस्त जगदुपकारक काम करने में एक मति करे ।

॥ विज्ञापन पत्र मिदम् ॥



सर्व आर्य पुरुषों को विदित किया जाता है कि जिस पत्र के ऊपर (ओ३म्) और नीचे (दस्तखत) ऐसा चिन्ह लिखा है वह सही करने का पत्र है उस पर सही इस प्रकार करनी होगी कि जिस के स्वराज या मेल में ब्राह्मणादि मनुष्यों की जितनी सख्या हो उतनी सख्या लिख के अर्थात् इतने १०० सौ १००० हजार १००००० लाख वा १०००००००० करोड मनुष्यों की ओर से सर्व साधारण आर्य्य पुरुषों की सही आजायगी परन्तु जितने मनुष्यों की ओर से एक मुख्य पुरुष सही करे वह उन से सही लेकर अपने पास जरूर रखले और

जो मुसलमान वा ईसाई लोग इस महोपकारक विषय में सहमत हो उन के भी नाम सदा लिखे हमको दृढ निश्चय है कि आप परमोदार महात्माओं के पुरुषार्थ उत्साह और प्रीति से यह सर्वोपकारक महा पुण्य कीर्ति प्रदायक कार्य्य यथावत् सिद्ध होजायगा । अलमति विस्तरेण विद्वद्वर शिरोमणिषु ।

(दयानन्द सरस्वती)



पूर्वोक्त दोनो पत्र मार्च सन् १८८० ई० के अंत तक देशांतर में वितरण हो चुके थे और चैत्र शुक्ला १० सम्वत् १९३९ तारीख २९ मार्च सन १८८० ई० को ऋग्वेदभाष्य अंक ३६ । ३७ भी वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में छप कर प्रकाशित हो चुका था, जिसके टाइटिल पेज पर निम्न लिखित विज्ञापन छपा था ।

॥ विज्ञापन पत्र मिदम् ॥



सब सज्जन उदार आर्य लोगों को विदित किया जाता है कि जो फीरोज़पुर में अनाथाश्रम कई एक वर्षों से आर्यसमाजों ने स्थापित किया है यह बड़ा प्रशंसित और धर्म का काम है, और इसमें बड़े सहाय की अपेक्षा है इस लिए आप सज्जन लोगों को उचित है कि इसका सहाय करना । क्योंकि इसके होने से आर्य लोग जिनका पालन करने वाला कोई न होवे वे ईसाई व मुसलमान अथवा अन्य मत में वेदोक्त सनातनधर्म से छूट कर मिल जाते थे उनकी रक्षा के लिये यह अनाथ पालनार्थ सभा नियत की है, जिस प्रकार अर्थात् धन के सहाय करने से इसकी दीर्घायु होवे सो यत्न करना चाहिए । अलमति विस्तरेणौदार्य्यादि गुण युक्तिषु ।

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती)

ठाकुरदास जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि जब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मेरे १० जनवरी सन् १८८० ई० के नोटिस का कुछ उत्तर नहीं दिया तो मैंने १७ अप्रेल सन १८८० ई० को एक नोटिस अहमदाबाद के "अहमदाबाद समाचार" और "बड़ोदा वत्सल" नामक दो गुजराती अखबारों में छपाकर रजिस्ट्री करा डाक द्वारा दयानन्द के पास भेजा जिसका खुलासा इस

प्रकार है ।

पंजाब देश के गुजरानवाला निवासी ठाकुरदास की तरफ से दयानन्दसरस्वती को नोटिस दिया जाता है कि तुमने सात वर्ष हुए मुरादाबाद में "सत्यार्थप्रकाश" नामक पुस्तक छपाया जिसमें एक स्थान पर कुछ श्लोक लिख उनको जैनाचार्यों कृत बताया सो यह बतलाना अप्रमाणीक और झूठ है और इस विषय में आपको कई बार लिखा गया परन्तु संतोष कारक कोई भी उत्तर नहीं मिला अब इस नोटिस द्वारा सूचना दी जाती है कि आप एक महीने के मध्य यह लिख भेजो कि यह श्लोक आपने जैन के किस शास्त्र से लिये हैं, जो एक मास तक इसका भी उत्तर नहीं आवेगा तो मेरे मन को जो आपके मिथ्या लेख से दुःख हुआ है उसकी चिकित्सा सरकारी प्रचलित कानूनानुसार कराई जावेगी जिसमें मेरे सर्व प्रकार के व्यय का भार भी आपको ही उठाना पड़ेगा यह निश्चय समझ लेना इत्यादि २ ।

जब पूर्वोक्त नोटिस स्वामी जी की दृष्टि गोचर हुआ मन में विचारा कि इसका उत्तर देने से बम्बई के अनेक जीव दया रसिक जैनी लोग जो गोरक्षा सम्बन्धी व्याख्यानों से राजी हो गए हैं, पलट बैठेंगे, इस लिए कुछ उत्तर नहीं दिया और चुप होकर बैठ गए ।

बैशाख शुक्ला १२ सम्वत् १९३९ को वैदिक यंत्रालय प्रयाग से स्वामी जी कृत यजुर्वेदभाष्य अङ्क ३६ । ३७ छप कर निकला जिसके टाइटिल पेज पर कोई समह योग विज्ञापन नहीं था ।

जब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ठाकुरदास के दोनों नोटिसों का कुछ उत्तर नहीं दिया तो अहमदाबाद के "शमशेर बहादुर" * आदि अनेक समाचार पत्रों में लेख लिखे गए परन्तु किसी ने सत्य कहा है कि जिस ऊंट पर बृहदाकार नक्कारे बज चुके हैं, उसको डुगडुगी बजा कर कौन चेत करा सकता है, स्वामी जी ने इनके लेखों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और ज्येष्ठ शुक्ला १४ सम्वत् १९३९ तारीख ३१ मई सन् १८८२ ई० को जो ऋग्वेदभाष्य अङ्क ३८ । ३९ प्रयाग

* तारीख १२ मई सन् १८८२ ई० के शमशेर बहादुर का लेख दयानन्द मुख चपेटिका पुस्तक में पूरा छपा है ।

वैदिक यंत्रालय से छपकर निकला उसके टाइटिल पेज पर इस विषय में कुछ भी लेख न था केवल स्वामी जी ने निज लेखों द्वारा "भारत सुदशा प्रवर्तक पत्र फर्रुखाबाद" की बड़ाई अनेकों शब्दों में लिख कर आर्यसमाजियों का ध्यान इसके ग्राहक होने की तरफ दिलाया था।

ठाकुरदास ने लिखा है कि जब मेरे लेखों का स्वामी जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तो मैंने बंबई पहुँच कर एक पोस्टकार्ड डाक द्वारा स्वामी के नाम पर भेजा तब समाज वाले मुझको बुलाकर स्वामी जी के पास ले गए और मेरा स्वा० जी से कुछ समय तक वार्तालाप हुआ + फिर स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारे पत्र का उत्तर हमने डाक द्वारा भेज दिया है सो वह देख लेना वह पत्र मुझको मिला जिसका खुलासा इस प्रकार है।

सेवकलाल कृष्णदास मंत्री आर्यसमाज बम्बई ठाकुरदास को लिखता है, कि आपने जो पत्र ज्येष्ठ शुक्ला १५ के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास पठाया था उसके उत्तर में लिखा जाता है कि तुम अपने मत का ज्ञाता तथा धर्मोपदेशक विद्वान् हो उसको नियमानुसार शास्त्रार्थ करने पर उपस्थित करो स्वामीजी शास्त्रार्थ कर सत्यासत्य का निर्णय करने को तैयार हैं और इस कार्य में शीघ्रता कर उत्तर लिखो क्योंकि स्वामी जी थोड़े दिनों में चले जाने वाले हैं, और जो शास्त्रार्थ होने का आप कुछ प्रबन्ध न करसकें तो मैं खेद के साथ लिखता हूँ कि जो मनुष्य स्वामीजी के पास कुछ पूछने को आता है उसके उत्तर को स्वामीजी सायंकाल ५बजे से ९ बजे तक प्रतिदिन मिलते हैं, जो आप आने का इरादा करें तो मुझको लिख भेजें ताकि मैं भी उस समय उपस्थित हो जाऊं इत्यादि तारीख ५-६-१८८२ ई०।

इस पर ठाकुरदास ने १३ जून सन् १८८२ ई० को मिस्टर स्मिथ हैड क्लियर हाई कोर्ट के बालिस्टर की मारफत एक अंग्रेजी नोटिस स्वामीजी को दिया उसका खुलासा इस प्रकार है।

+ स्वामी जी समझते थे ठाकुरदास कोई साक्षर प्राणी होगा परन्तु निकट गये पर जाना गया कि यह बेचारा पराधीन हुआ नाचे है, तब तो देख कर ऐसे और साफ कह दिया तुम्हारे कार्ड का उत्तर डाक द्वारा भेजा गया है, (और डाक द्वारा जो उत्तर भेजा वह भी निडर होकर लिखा था)।

हमारे मवक्किल ठाकुरदास पंजाबी गुजरानवाला निवासी ने जो इस समय बम्बई में है हमको यह जतलाया है कि तुमने उसको जान बूझ कर धर्मसम्बंधी दुःख देने को "सत्यार्थप्रकाश" अपने बनाये पुस्तक के बारहवें समुल्लास पृष्ठ ४०२ । ४०३ में जैन धर्म से विरुद्ध किसी अन्य धर्म से लेकर कुछ श्लोक रख दिए और उनको जैन ग्रन्थों का बतलाया है, परन्तु वे श्लोक जैन के किसी भी ग्रंथ के नहीं हैं । यह तुम भी जानते हो, और हमको यह भी मालूम हुआ है कि हमारे मवक्किल ने तुमसे अनेक बार पत्र द्वारा यह कहा है कि इन झूठे श्लोकों को जैन का बतला कर हमारा दिल दुखाना उचित न था इसकी हमसे मुआफी माग कर उन श्लोकों को निज पुस्तक से निकाल डालो परंतु आपने कुछ ख्याल नहीं किया, सो अब हम अपने मवक्किल के कहने बमूजिब तुमको बतलाए देते हैं कि इस नोटिस के पहुँचने पर आठ दिन के मध्य पूर्वोक्त श्लोकों को "सत्यार्थ प्रकाश" से निकाल कर हमारे मवक्किल तथा अन्यान्य जैनियों से बम्बई से प्रकाशित होने वाले किसी पत्र द्वारा मुआफी मागो । और जब तक उक्त श्लोक उक्त पुस्तक से पृथक् न कर दो उसको किसी के हाथ मत बेचो, यदि इसके प्रतिकूल करोगे तो फिर तुमको जवाबदेही अदालत में करनी पडेगी यह निश्चय जान लेना।

इसके उत्तर में १९ जून सन् १८८२ ई० को मिस्टर पेनी ऐंड ग्लिव्हर्ट ने जो कुछ अंग्रेजी में लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है, ।

मिस्टर स्मिथ ऐंड फ्रियर लाला ठाकुरदास के अटरनी को विदित हो कि आपका १३ जून सन् १८८२ का लिखा नोटिस जो आपने स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास भेजा था सो उनके द्वारा हमारे पास पहुँचा और उनके कथनानुसार आपको यह उत्तर लिखा जाता है, कि तुम जो कहते हो कि यह श्लोक जैन के कौन से ग्रन्थ के हैं सो हमारे मवक्किल स्वामी दयानन्द सरस्वती यह समझ रहे हैं कि जैनमत के किसी विद्वान् के रचित ही यह श्लोक हैं, और जैन धर्म्म की अनेक शाखा प्रतिशाखा हैं जिसमें से किसी के रचित यह श्लोक होंगे हमारे मवक्किल का यह अभिप्राय नहीं है कि किसी मनुष्य का उसके धर्म्म सम्बन्धी दिल दुखावें, किंतु सत्यार्थप्रकाश करने का ही तात्पर्य्य यह विशेष है, इस लिए तुम्हारा मवक्किल या कोई दूसरा जैनी हमारे मवक्किल को यह सिद्ध कर

देगा कि पूर्वोक्त श्लोक जैन धर्म से विरुद्ध हैं तो सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक के छपाने वाले राजा जयकृष्णदास सी० एस० आई० मुरादाबाद निवासी दूसरी बार छपने के समय उन श्लोकों को पृथक् कर देवेंगे, इसमें हमारे मवक्किल को कुछ उजर नहीं है, और हमारा मवक्किल यह भी कहता है कि आपके मवक्किल को पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के टाइटिल पेज और राजा जयकृष्णदास के दिए विज्ञापनों को देखना चाहिए, जिनके लेखों से स्पष्ट सिद्ध है कि उक्त पुस्तक सम्बन्धी छपाने बेचने शुद्धाशुद्ध आदि करने के सम्पूर्ण अधिकार उक्त राजा साहिब ही ने हस्त अपने किए हैं, इस लिए पुन छपवाना या न छपवाना सब उनके ही आधीन है, इत्यादि *

जब स्वामी जी ने देखा कि ठाकुरदास व बम्बई के जैनी लोगों ने हमसे उदास करने का यत्न किया है इस लिए अब यहां ठहरना ठीक नहीं है, और दिन भी यहां अधिक हो गए हैं, बस स्वामी जी इसी ध्यान में चलकर खडुवा में पधारे, और आसाढ शुक्ला १५ सम्वत् १९३९ के दिन खडुवे में थे ऐसा यजुर्वेद भाष्य अंक ३८। ३९ के टाइटिल पेज पर लिखा हुआ देखा गया है, मास जौलाई सन् १८८२ ई० के रिसाला थियोजाफिस्ट और उसके क्रोड़ पत्र से यह प्रकाशित हो गया कि दयानन्द हमसे जुदा हो गए हैं, खडुवा में कुछ दिन ठहर कर स्वामी जी राजधानी जावरा देश मालवे में पधारे, मार्ग में आपका आत्मानन्दजी से कुछ दिनों तक समागम व वचनालाप रहता रहा फिर खडुवे से चल कर अधिक श्रावण कृष्णा १३ सम्वत १९३९ तारीख ११ अगस्त सन् १८८२ ई० गुरुवार के दिन राजधानी उदयपुर में पधारे। देखो जो ऋग्वेदभाष्य अंक ४०। ४१ अधिक श्रावण कृष्णा ३ सम्वत् १९३९ को छपकर प्रकाशित हुआ उसके टाइटिल पर लिखा है, कि इस समय स्वामी जी जावरा देश मालवा में विराजमान हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि दो चार दिन मार्ग चलने में बिताकर स्वामी जी जावरे से सीधे उदयपुर चले आए और महाराणा जी के नौलखा बाग

* इस लिखने से स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि हमारा सत्यार्थप्रकाश से कुछ सम्बन्ध नहीं है जो कुछ है राजा जयकृष्णदास का है खैर—दयानन्द मुख चपेटिका पुस्तक इसी लेखपर समाप्त हुई है।

राजमहल में डेरा किया और महाराजा साहिब श्री राणा सज्जनसिंह जी ने इनको संस्कृत का उत्तम विद्वान् समझकर बड़ा अच्छा आदर सत्कार किया और स्वामी जी के पास निज चाकरों का आना जाना भी प्रारम्भ किया जिससे स्वामी जी उदयपुर में भले प्रकार प्रसिद्ध हो गए।

बम्बई से जो पत्र आपने हस्ताक्षर के लिए देशांतर में पठाये थे उनका उत्तर अनेक स्थानों से संतोष जनक आया जैसा कि निम्न लिखित पत्र के लेख से विदित होता है।

श्री सत्परम गुरुभ्यो नमो नमः (नम्बर ३५)

भगवन आपकी सेवा में गोरक्षा होने के अर्थ इस पत्रके साथ एक प्रार्थना पत्र ७२ सहस्र मनुष्यों की ओर से अपने हस्ताक्षर करके परम विनय पूर्वक भेजता हूँ यदि दो मास का विलम्ब हो तो सूचित किया जाऊ एक लक्ष संख्या पूर्ति हो सकती है, और यह संख्या नगर फर्रुखाबाद और फतहगढसे जुदी है, ऐसा जानियें क्योंकि उन दोनों नगरो की संख्या समाज से आवेगी। १३–८–८२ ई०

इस पत्र का उत्तर स्वामी दयानन्द की तर्फ से यह गया था।

(ओ३म) श्रीयुत पंडित गोपाल रावजी आनन्दित रहो।

विदित हो कि गोरक्षार्थ हस्ताक्षर पत्र के सहित आपका कुशल पत्र पहुँचा पत्रस्थ समाचार के अवलोकन करने से अत्यन्त हर्ष हुआ यह आपने सर्वोपकारक धन्यवादार्ह पुरुषार्थ किया परमात्मा दिन प्रति ऐसे ही कर्मों के सिद्ध करने मे उत्साही करे आशा है कि आर्य्य भाषा के प्रचारार्थ भी आप स्वपुरुषार्थ की प्रकटी करेंगे। हम उदयपुर पहुँच कर नौलखा बाग के राज महलो मे ठहरे हैं, एक बार श्रीयुत आर्य्य कुल दिवाकर श्री महाराणा साहिब पधारे परस्पर प्रेम प्रीति के साथ समागम हुआ जैसे उनका नाम है वैसे ही गुण भी देखे इत्यादि० द्वितीय श्रावण १० शनि सम्वत् १९३९ (दयानन्द सरस्वती)

उदयपुर के जैनियों मे श्वेताम्बराम्नाय की अधिकता है और इस आम्नायके नगर में अनेक मन्दिर भी उत्तम बने हुये हैं जिस समय स्वामी दयानन्द सरस्वती उदयपुर में पधारे जैन धर्मानुसार वह समय था जब कि (चौमासे मे) मुनियों का गमनागमन बन्द होता है, इस अवसर पर उदयपुर गौडी जी के जैन मन्दिर

में श्रीमान् सम्बेगी साधु "झवेर सागर" (जवाहिर सागर) जी चतुर्मासकर विराजे थे, जब उनको यह समाचार मिला कि दयानन्द जैनियों को नास्तिक बतलाता है तो उक्त साधु जी एक मनुष्य को दयानन्द जी के पास भेजकर यह पूछा कि तुम जैनियों को किस ग्रन्थ के प्रमाण से नास्तिक कहते हो यदि कोई प्रमाण रखते हो तो लिख भेजो व विदित करो नहीं रखते हो तो यह तुमको अथवा कोई भी विद्वान को उचित नहीं कि बिना प्रमाण के किसी को अनुचित शब्द कहे, इस पर दयानन्द जी ने अपने दो नवीन शिष्य सहजानन्दादि सन्यासी श्रीमुनि झवेरसागर जी के पास पठाये जिनसे अनेक प्रश्नोत्तर के पश्चात् निम्न लिखित दो प्रश्न स्वामी दयानन्द सरस्वती के चेलों ने (श्रीमान् मुनि 'झवेर सागर जी से) किए।

(१) जैन लोगों में यह बात कैसे मान्य रूप है कि सूक्ष्म निगोद । जीव राशि जो कि सुई के अग्रभाग से भी सूक्ष्म है और उसमें अनत जीवों का रहना होता है। सोचने का स्थान है कि आधार से अधिक आधेय उसमें कैसे रह सकता है ?

(२) यह भी अल्पज्ञता का चिन्ह है कि जैनी लोग कृत्रिम वस्तु का बहुत आदर करते हैं। यह सब कोई जानता है जो मूर्ति है सो कृत्रिम है। कृत्रिम पदार्थ में देवपना कैसे मान सकते हैं ? जो वस्तु अपने हाथोंसे बनाई जाते वह फिर पूज्य कैसे हो जाय ? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर उक्त महर्षि ने यह दिया कि—

(१) जैन मत में जो सूक्ष्म निगोद राशि सुई के अग्र भाग से भी सूक्ष्म और उसमें भी अनत जीवों का रहना कहा है सो युक्ति युक्त है, और आधार से आधेय अधिक कैसे रह सके यह शंका भी यत्किंचित है। सोचो तो सही कि, चिंतामणि रत्न एक छोटी सी वस्तु है, परन्तु उससे जो मांगो वही दे सकता है, यह आधेय उस अल्प आधार में कैसे समा सका ? इस लिए यह कहना व्यर्थ है कि आधार से अधिक आधेय उस आधार भूत वस्तु में नहीं रह सकता जीव अरूपी है उसका कोई रंग रूप नहीं जैसे चिंतामणि रत्न में याचक को अनत वस्तु देने की 'सत्ता' स्थित है, ऐसे ही सूक्ष्म निगोद राशि मे अनन जीव राशि सत्ता

रहते हुए ज्ञान गम्य है ॥ यत. उक्तच ॥

सूक्ष्मं जिनोजितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ॥
आज्ञा सिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथा वादिनो जिनाः ॥१॥

(२) दूसरे कृत्रिम वस्तुका आदर नहीं करना चाहिए यह कहना भी युक्त नहीं क्योंकि जैसे मूर्ति कृत्रिम वस्तु है वैसे मुनि, सन्यासी वेष भी कृत्रिम है, उसको भी न मानना चाहिए । परमहंसपरिव्राजकाचार्य जो दयानन्द जी हैं वे प्रथम गृहस्थ भेष से थे । अब परिव्राजक भेष रखते हैं भेष की कृत्रिमता स्वत सिद्ध है । और प्रत्यक्ष प्रमाण से सबको उपलब्ध है गृहस्थावस्था में दयानन्द जी परिव्राजक न होने से अपूज्य थे, और परिव्राजक भेष धारण करने से पूज्य बन गए, इससे सिद्ध हुआ कि कृत्रिम वस्तु का आदर तुम भी करते हो । यदि तुम्हारे स्वामी दयानन्द जी को कल दिन पुलिस मैन का काला भेष पहना कर और हाथ पर सारजंटी का बिल्ला लगा कर दस पन्द्रह सिपाही उनके साथ कर दिए जाय तो सम्पूर्ण उदयपुर में वह हवलदार जमादार जैसा आदर सत्कार पावेंगे । और सन्यासी तो तभी समझे जायगे कि जब परिव्राजक भेष धारण कर तुमको साथ ले एक स्थान पर बैठेंगे । विचार करो कि पुलिस मैन के भेष से और परिव्राजकाचार्य्य के भेष मे स्वामी जी तो वही थे तो फिर एक अवस्था मे पूज्य और एक मे अपूज्य किसने बनाया ? कहोगे भेष ने बनाया तो भेष कृत्रिम है और कृत्रिम वस्तुका आदर करना यह स्वामी दयानन्द जी की आज्ञा के विरुद्ध है इस लिए यह प्रश्न तुम्हारा तुमको ही बाधक हो गया । और इससे कृत्रिम वस्तु का आदर करना स्वतः सिद्ध हो गया । मूर्ति मे पूजक का भाव साक्षात् ईश्वर पने का आरोपित है, इस लिये ये, मूर्तिपूजक को साक्षात् ईश्वर सेवा का फल देती हैं, यह उत्तर सुन कर स्वामी जी के दोनों चेले चुप होकर चले गये और कुछ दिनो पीछे श्री भंवेर सागर जी ने फिर दयानन्द जी के निकट एक मनुष्य भेज कर यह कहलाया कि आपने जो निज रचित "सत्यार्थप्रकाश" के द्वादश समुल्लास में जैनों के नाम से झूठे श्लोक लिखे हैं, सो या तो उनको निज पुस्तक से निकाल डालो । और जो उनको किसी जैन शास्त्र से सिद्ध करने की रखते हो तो हमसे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ कर लो । यह समाचार सुन

कर स्वामी जी के छक्के छूट गये, मन मे विचारा ठाकुरदास तो पराया बहकाया अल्पज्ञ पने ही से भिड़ने को उद्यमी था यह मासर पुरुष शास्त्रार्थ को स्वत उद्यमी हुआ अब क्या करिये । बस इस बात के घमण्ड मे आन,कर कि यहा के महाराणा साहब हमारे रागी है, "श्री कवर सागर जी" के प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया, जब यह समाचार "श्री कवेर सागर जी" को विदित हुए ता उन्होंने एक विज्ञापन मोटे अक्षरो से लिखा और काष्ठ की तख्ती पर लगा कर अपने उपाश्रय के दरवाजे पर (जहा सर्व साधारण की दृष्टि पड़े) लटका दिया उसमे लिखा कि "दयानन्द सरस्वती ने अपने बनाये पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' में कुछ नास्तिक मत के श्लोक लेकर उनको जैन मत का कह दिया है, इस विषय मे हम दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करना चाहते है, और यह प्रण भी करते हैं कियदि शास्त्रार्थ मे हमारी पराजय हुई तो हम दयानन्द जी के शिष्य हो जावेगे, और जो हमारी विजय होगी तो दयानन्द जी को हमारा शिष्य होना पड़ेगा इत्यादि ।"

जिस दिन से यह साइनबोर्ड (तख्ती) लटकाई गई, स्वामी दयानन्द जी को बड़ा कष्ट हुआ "श्री कवेर सागर जी" के विषय मे मनमाने अपशब्द बोलने लगे अनेक प्रकार के भय दिखलाये परन्तु जब कुछ कार्य कारी न हुए तो महाराणा जी से ही कहना पड़ा कि आपके अखण्ड प्रताप सबल राज मे हमको "कवेर सागर" सम्वेगी ने विज्ञापन लगाकर दु ख दिया इस विज्ञापन के तख्ते को जब तक हटाया नहीं जायगा हमको महान कष्ट है, इसको महाराणाजी ने स्वीकार कर लिया तब एक "श्री कवेर सागर जी" का शिष्य श्रावक जो उस समय दयानन्द जी के पास उपस्थित था इस समाचार को सुन,कर चल पड़ा और "श्री कवेर सागर जी" के पास आनकर कहने लगा कि आप यह विज्ञापन का तख्ता स्वत उतार लेवें तो ठीक है नहीं तो महाराणा जी की आज्ञा से उतारना पड़ेगा आज दयानन्द जी ने उनसे आपकी बहुत बुराई की है, तब "श्री कवेर सागर जी" ने कहा कुछ चिंता नहीं सब कार्य ठीक हो जायगा । "श्री कवेर सागर जी" प्रात और सायकाल दिन मे दो बार जङ्गल जाया करते थे सो उस दिवस उस तरफ पधारे जहाँ उदयपुर के एजेंट साहब की कोठी थी दिशा जगल होकर सीधे एजेंट साहब के बगले पर चले गये, पहरे वाले ने साहब बहादुर को खबर दी कि

कोई फकीर बाहर खडा है, साहब बहादुर बाहर आए "श्री झवेर सागर जी" को सलाम किया कुरसी पर बिठला कर पूछा, पूज्य साहब क्योंकर आना हुआ तब 'श्री झवेर सागर जी' ने कहा हुजूर आपके स्वतन्त्र निर्मल राज्य में एक अनुचित कार्य तो यह हो गया कि दयानन्द जी ने हमारे धर्म सम्बन्धी झूठे श्लोक नास्तिक मत के लेकर उनको हमारा कह कर हमारा दिल दुखाया है, दूसरा अनर्थ यह होने वाला है कि मैंने एक पाटिये (साइन बोर्ड) पर एक विज्ञापन इस विषयका लिखकर अपने मकान पर लटकाया है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो श्लोक अपने पुस्तक में जैनियों के कह कर लिखे हैं, वह जैन के किसी ग्रंथ के भी नहीं हैं, सो दयानदजी को हमसे शास्त्रार्थ करना चाहिये जो हम हारेंगे उनके शिष्य होंगे, वह हारे हमारा शिष्य हो जाय, इस पर दयानन्द शास्त्रार्थ तो नहीं करता किन्तु राना जी से कह कर वह तख्ता (साइन बोर्ड) हटाना चाहता है, सो क्या वह अन्याय नहीं है । इस पर साहब बहादुर ने कहा हम समझ गए तुम कुछ भय मत करो हमारे देखे बिना तुम्हारा साइन बोर्ड (तख्ता) नहीं हटेगा, और कल प्रात काल हम उसको अवश्य देखेंगे "श्री झवेर सागर जी" निज स्थान पर चले आये, प्रात काल निज बचनानुसार एजेंट साहब "श्री झवेर सागर जी" के उपाश्रय पर आये, विज्ञापन को पढा, और कहा इसमें राज विरुद्ध कोई लेख नहीं है, और अपने सत्व की रक्षार्थ सब कोई ऐसा कर सक्ता है यह नोटिस राज के हुक्म से नही उतारा जायगा, और इन्होंने तो अपने निज स्थान पर ही लगाया है इसमे राज्य का कुछ हर्ज नहीं, बराबर लगा रहने दो यह कह कर एजेण्ट साहब चले गये, और स्वामी दयानन्द जी को चुप हो जाना पडा मन मे अनेक तर्क वितर्क उठे परन्तु कुछ बन नहीं पडा और विशेष खेद इस लिये हुआ कि एक छोटे से कार्य्य मे बहुत बडे प्रतिष्ठित महाराना साहब की सहायता चाही और अफल हुई । उदयपुर मे स्वामीजी ने आत्मानन्द सहजानन्द दो शिष्य किये, और वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से यजुर्वेदभाष्य अंक ४० । ४१ छपकर प्रकाशित हुआ अब आगे स्वामी जी ने अपनी पूर्वोक्त सम्पूर्ण रचना तथा व्याख्यानो का विश्वास त्याग एक नवीन "सत्यार्थप्रकाश" लिखना ... था इस लिए अब इसी स्थान पर पुस्तक 'दयानन्द छल कपट दर्पण"

थम भाग का पूर्वार्द्ध पूर्ण होता है, क्योंकि अस्योपरान्त स्वामी जी ने नवीन सत्यार्थप्रकाश" के व्यतिरिक्त और कुछ नहीं बनाया और सम्वत् १९४० मिती ार्तिक कृष्ण ३० को पचत्व को पधार गये थे ॥ इति

इति श्री अग्रवाल बशावतश अनेक महत्पदालंकृत
परम विद्वान् राज्यमान सुज्ञ विज्ञ ज्योतिष
रत्न दिवाकर जक्तविख्यात् श्री पंडित्
जैनी जीयालाल जी चौधरी रईस
फरुंख नगर जिला गुरगांव
कृत दयानंद छल कपट
दर्पणके प्रथम भागका
पूर्वार्द्ध समाप्त
॥ हुआ ॥



॥ श्री जिनधर्मोजयति ॥

दयानंद छल कपट दर्पण

प्रथम भाग का उत्तरार्द्ध ।

॥ दोहा ॥

दयानन्द नित नित नये मत सिद्धान्त विचार ।
सदाकाल बदलत रहे तऊ न पाया पार ॥ १ ॥
अन्त समय लों ना हुआ काहू स्थल बिश्वास ।
उनसठ वर्ष व्यतीत कर जग से भए उदास ॥ २ ॥

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भाद्रपद शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३९ में नवीन "सत्यार्थप्रकाश" का आरम्भ किया जिस की यथार्थ समालोचना हम द्वितीय भाग में लिखेंगे। परन्तु उक्त पुस्तक की पूर्ण भूमिका पर अपनी पूरी समीक्षा और यथा योग्य पूर्वोक्त सम्पूर्ण पुस्तक के अनेक विषयों पर भी संक्षिप्त समालोचना व स्वमतव्य प्रकाश करते हैं।

(ट) "नवीन सत्यार्थप्रकाश की भूमिका"

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्म भूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बनगई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है इसलिये इस ग्रन्थ की भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध कर के दूसरी बार छपवाया है। कहीं २ शब्द, वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किए विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां जो प्रथम छपने

जहाँ २ भूल रही थी, वह निकाल शोधकर ठीक २ कर दी गई है। यह ग्रंथ १४ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें १० दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और ४ चारउत्तरार्द्ध में बने हैं परन्तु अन्त के दो समुल्लास और पश्चात् स्व सिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छपसके थे अब वेभी छपवा दिये हैं—

(समीक्षक) पाठक गण आपको याद होगा कि प्रथम बार के छपे "सत्यार्थप्रकाश" पर राजा जयकृष्णदास ने यह विज्ञापन छपवाया था कि "यह पुस्तक स्वामीजी ने मेरे व्यय से रची है और मेरे ही व्यय से यह मुद्रित हुई है, उक्त स्वामीजी ने इसका रचनाधिकार मुझको दे दिया है, और उसका अधिष्ठाता मैं हूं और मेरी ओर से इस पुस्तक की रजिष्ट्री कानून २० सन १८६७ ई० के अनुसार हुई है, सिवाय मेरे व मेरी आज्ञा के इस पुस्तक के छापने का किसी को अधिकार नहीं है" और स्वामीजी ने जो पत्र अपने अटरनी द्वारा बम्बई में लाला ठाकुरदास ने अटरनी को लिखा था उसमें स्पष्ट रूप से यह दर्शाया था, कि 'सत्यार्थप्रकाश' का छपाना बेचना राजा जयकृष्णदास जी के स्वाधीन है, हमारा कोई संबंध नहीं, परन्तु दूसरी बार छपने की आज्ञा लिये बिना स्वामी जी को इसके शोधन करने और छपाने का अधिकार कहां से मिला कुछ पता नहीं लगता ? तथा स्वामी जी प्रथम बार के छपे सत्यार्थप्रकाश की भाषा अशुद्ध होने के कारण उसको बदल गये तो उससे पहिले की छपी वेदभाष्यभूमिका को भी अशुद्ध ठहराकर पुनः क्यों नहीं लिखा ? क्या उसकी भाषा किसी दूसरे मनुष्य की लिखी हुई थी ? ऐसा कब माना जा सकता है कि जब एक ही मनुष्य दो पुस्तक रचे उनमें पहिले की भाषा शुद्ध और दूसरे की अशुद्ध समझी जाय और रचयिता स्वतः यह लिखे कि इस समय से पहिले मुझको शुद्ध देव नागरी लिखना नहीं आता था इस लिये भाषा अशुद्ध बन गई थी इत्यादि।

पुस्तक 'मंगलदेव पराजय' पृष्ठ २० पं० २१ से लिखा है कि "बुद्धिमान्" लोग पूर्व 'सत्यार्थप्रकाश' और नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' का पाठ करके परीक्षा कर लें कि स्वामी जी के इस मिथ्या भाषण में कितना सत्य है, मन में उनतालीस सेर बूर शेष आटा ही आटा, वास्तव तो यह है कि प्रायः विषयों में पूर्व 'सत्यार्थ

प्रकाश की अपेक्षा नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' मे इतना भारी भेद है, कि नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' पूर्व 'सत्यार्थप्रकाश' का विरोधी ही है, इत्यादि० ।

फिर नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' की भूमिका पृ० २ पं० १४ मे स्वामी जी लिखते हैं कि—

मेरा इस ग्रथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य २ अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है । वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान मे सत्य का प्रकाश किया जाय किंतु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है । जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इस लिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता इस लिये विद्वान् आप्तो का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वय अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द मे रहे । मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड असत्य मे झुक जाता है परन्तु इस ग्रथ में ऐसी बात नहीं रक्खी हैं, और न किसी का मन दुखाना व किसी की हानि पर तात्पर्य है । किंतु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो सत्याऽसत्यको मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है ।

(समीक्षक) पूर्वोक्त लेख सत्य है अथवा असत्य, इसको हम पाठक वृन्द तथा विद्वानों के भरोसे पर छोडते हैं क्योंकि स्वामी जी के नवीन और प्राचीन "सत्यार्थ प्रकाश" को जो कोई विद्वान् न्याय दृष्टि से देखेगा स्वत विचार लेगा कि स्वामी जी का लिखना कहा तक सत्य है ।

अब हम कुछ थोडा सा नवीन व प्राचीन (सत्यार्थप्रकाश) का अन्तर दिखाते हैं और पुनरुक्त दोष तो इन दोनों ग्रन्थों मे इतना है । कि जिसके समह,

करने में ही एक नवीन ग्रन्थ बन जाय परन्तु हमको यहां केवल सारांश ही से प्रयोजन है ।

प्रथम बार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ १८ पंक्ति १० मे लिखा है (जो गणों का नाम सघातों का अर्थात सब जगतों का ईश नाम स्वामी होने से परमेश्वर का नाम गणेश है) इसके प्रतिकूल पृष्ठ २४ पक्ति २२ मे श्री गणेशाय नम ऐसा लिखने वाले को मिथ्या लेखी कहा है । और इसी प्रकार नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ २१ पक्ति ११ मे (गण संख्याने) इस धातु से "गण" शब्द सिद्ध होता इसके आगे "ईश वा" पति शब्द रखने से "गणेश" और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं । ये प्रकृत्यादयो जडाजीवाश्च गण्यन्ते सख्यायन्ते तेषामीश "स्वामी पति पालकोवा" जो प्रकृत्यादि जड और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम "गणेश" वा "गणपति" है । यह लिखकर पृष्ठ २५ पक्ति १० में इसके प्रतिकूल लिखा है । *

तथा प्रथम बार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ २० पक्ति ७ में लिखा है कि सब कल्याण गुणों से संयुक्त रहने से परमेश्वर का नाम शिव है । फिर पृष्ठ २४ पक्ति २३ मे "शिवायनम" ऐसा लिखने वाले को मिथ्या विश्वासी बतलाया है ।

इसी प्रकार नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ १० पंक्ति १५ मे मगलमय और सबका कल्याण कर्ता होने से "शिव" नाम ईश्वर का है । तथा पृष्ठ २४ पंक्ति ३ (डुकृञ्करणे) "शम्" पूर्वक इस धातु से "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआ है "य'शङ्कल्याणं सुखं करोति स शङ्कर" जो कल्याण अर्थात् सुख का करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम "शकर है"

तथा पृष्ठ २४ पंक्ति १६ में (शिवकल्याणे) इस धातु से "शिव" शब्द सिद्ध होता है "बहुलमेतन्निदर्शनम्" इससे शिव धातु माना जाता है जो। कल्याण

* पृष्ठ २० पक्ति १५ नवीन "सत्यार्थप्रकाश" में "दयालु" शब्द को ही ईश्वर माना है, इससे स्वामीजी चाहते हैं कि संसारी लोग "दयानन्देश्योनमः" यही शब्द सदैव उच्चारा करें ।

स्वरूप और कल्याण करने हारा है, इस लिये उस परमेश्वर का नाम "शिव" है।

तथा पृष्ठ २४ पंक्ति ६ "महत्" शब्दपूर्वक "देव" शब्द से "महादेव" सिद्ध होता है "योमहतां देवः स महादेवः" जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान् सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है इस लिये उस परमात्मा का नाम "महादेव" है।

तथा पृष्ठ १९ पंक्ति २१ (गॄशब्दे) इस धातु से "गुरू" शब्द बना है। "योधर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरू ।

सपूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात् । योगसू० ।

जो सत्यधर्म प्रतिपादक सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरू और जिस का नाश कभी नहीं होता इस लिये उस परमेश्वर का नाम "गुरू" है।

तथा पृष्ठ २२ पंक्ति ७ (सृगतौ) इस धातु से "सरस" उससे "मतुप्" और "ङीप्" प्रत्यय होने से "सरस्वती" शब्द सिद्ध होता है, "सरोविविधज्ञान विद्यते यस्या चित्तौसा सरस्वती" जिस को विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोगका ज्ञान यथावत् होने इससे उस परमेश्वर का नाम 'सरस्वती' है।

तथा पृष्ठ १८ पंक्ति ४ में लिखा है कि "जल और जीवों का नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवास स्थान हैं जिस का इसलिये सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम "नारायण है" अब पूर्वोक्त लेख के प्रतिकूल स्वामीजी अपने नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ९५ पंक्ति १० में यह लिखते हैं कि—

जो आधुनिक ग्रन्थों में 'श्री गणेशायनम,' 'सीतारामाभ्यानम' 'राधाकृष्णाभ्यानम' 'श्री गुरुचरणारविन्दाभ्यानम' 'हनुमतेनम' 'दुर्गायैनम' 'बटुकायनम' 'भैरवायनम' 'शिवायनम' 'सरस्वत्यैनम' 'नारायणानम' इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्याही समझते हैं, इत्यादि० *

---

* और पृष्ठ ७२ पंक्ति १४ में लिखा है कि "राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती गणेशादि नाम स्मरण करने से पाप दूर होने का विश्वास पाखंडियों के उपदेश से है।

फिर देखो पुराने 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ३१ पंक्ति २६ में सूर्य्य चन्द्रमा को जड़ लिखा है और नाम करण संस्कार विषय में सूर्य्य के सन्मुख खड़ा होकर जल से अंजुलीभर प्रार्थना करनी लिखी है, सो यदि सूर्य्य चन्द्रमा जड है तो जड़ पदार्थ के सन्मुख ईश्वर की प्रार्थना करने को क्यो लिखा ।

फिर देखो पुराने 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ३८ पंक्ति ९ में लिखा है कि 'कन्याओं का यज्ञोपवीत कभी न करना चाहिये' और इस के प्रतिकूल पृष्ठ १२९ पंक्ति १८ मे लिखा है कि 'मनुष्यों के बीच मे स्त्री और पुरुष जो मूर्ख हो उनका यज्ञोपवीत भी हुआ होय ।

तथा सम्वत् १९३३ की छपी संस्कारविधि के पृष्ठ १०७ पंक्ति ८ में लिखा है कि 'कन्या' भी सुन्दर वस्त्र से शरीरको आच्छादित और यज्ञोपवीत धारण करके विवाह शाला में आवे ।

पुराने 'सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४० पंक्ति १७ में वेदी १२ अंगुली की और पञ्च महायज्ञ विधिके पृष्ठ ३६ में १६ अंगुल की लिखी, फिर नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ४० पंक्ति २९ में १२ व १६ अंगुल दोनों का ग्रहण कर लिया है ।

पुराने 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ४२ में मरे पितृजनों के श्राद्ध, तर्पण की विधि लिख थोड़े ही दिन पीछे मुकर गये । इस विषय में सविस्तर लेख पूर्वार्द्ध में लिखा जा चुका है ।

नये 'सत्यार्थप्रकाश' में मांस का निषेध और प्रथम बार के छपे हुए के पृष्ठ ४५ में मांस आदि से प्रातः सायं होम करने की आज्ञा लिखी है ।

फिर देखो पृ० ४३ में पूर्व मुख करके देव तर्पण करना लिखा और पृ० ३०२ पं० १९ में लिखा है कि देवता हिमालय में रहते थे जो उत्तराखंड में है । और नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' में जो मन्तव्यामन्तव्य लिखा उसकी संख्या २० में 'देव' अर्थात् विद्वान् का लिख दिया है ।

फिर देखो पृ० ५० पंक्ति १ में शूद्र लोगों को वेद पढ़ने की आज्ञा नहीं लिखी किंतु, भाष्यभूमिका पृ० ३१० व ३११ में सबको वेदाधिकार लिख दिया ।

फिर देखो पृ० ७१ पं० ६ में लिखा है कि 'पूर्वमीमांसा न्याय और वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण माने हैं ।

इसके प्रतिकूल आप 'आर्य्योद्देश्य रत्नमाला' के ८३ संख्या में प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, शब्द, एतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव यह आठ प्रमाण माने और नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' के अंत में जो स्वमन्तव्य प्रकाश किया उसकी संख्या ३७ में भी यही लिखे हैं।

फिर पृ० १०७ प० ८ में 'शीघ्रबोध' पर तर्क किया है इसका उत्तर हम दूसरे भाग में लिखेंगे, फिर देखो पृ० १२४ प० १६ में जो यह श्लोक लिखा है-

पाखंडिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाशठान् ।
हेतुकान्बकवृतींश्च वाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् । १ ।

इस श्लोक का अर्थ ऐसा झूठा और मनोक्त लिखा है कि जिसको व्याकरण का कुछ भी ज्ञान न होगा वह स्वामी जी के झूठ को स्पष्ट रूपसे जान लेगा।

फिर देखो पृ० १२५ पंक्ति १९ से 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा है कि- जो कोई सदाव्रत क्षेत्र कर्ता है, उसमें सज्जन व सत्पुरुष कोई नहीं जाता इसमें उन गृहस्थों का पुण्य कुछ नहीं होता किंतु पाप होता है, इसके प्रतिकूल फीरोजपुर बरेली के अनाथालयों की बड़ी प्रशंसा निज लेखनी से लिखी है, और आपने स्वतः भी जो मथुरा जी में जोशी बाबा के धर्मक्षेत्र में अधिक समय तक भोजन खाया उसको भूल गये।

फिर देखो पृ० १३१ की अंतिम पंक्ति में जो 'पितृ' शब्द है उसका अर्थ पिता किया और इसी प्रकार पृ० १३२ पंक्ति ९ में भी लिख दिया है।

फिर देखो पृ० १४० पंक्ति ९ व १० में स्त्री को केवल एक पति की ही आज्ञा दी है।

फिर देखो पृ० १४७ में 'यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भैपजभेपजताया' लिखके इस को स्वामीजी छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति कहते हैं सो यह कहना उनका सर्वथा झूठ है और इसी लिये नये पुस्तक में इसका अभाव कर दिया है।

फिर देखो-पृ० १४९ पंक्ति १४ में लिखा है कि मांसके पिंड देने में कुछ पाप नहीं है।

फिर देखो पृ० १५२ पंक्ति २६ में लिखा है कि 'परमेश्वर ने तो सब जीवों को स्वतंत्र रचे हैं' पुनः इसी पुस्तक के पृ० २३२ पंक्ति १० से लिखा है

कि 'जब जीवों को ईश्वर ने रचा तब विचार के सब को स्वतन्त्र ही रख दिया' फिर इसी पृ० की पंक्ति १९ में लिखा है कि 'कर्मों के करन और पुण्यों के फल भोगन में जीव स्वतन्त्र है और पापों के फल भोगने में पराधीन है' । पुन इसी पृ० की पंक्ति २१ में लिखा है कि 'जीव जैसा करेगा वैसा ही ईश्वर ने ज्ञान से निश्चय पहिले ही किया है' । इस परस्पर के विरोध को ज्ञानवन्त स्वत विचार लेंगे ।

फिर देखो पृ० १६१ पंक्ति ६ मे लिखा है, (श्लोक)

प्रजापत्यांऽनिरूप्येष्टिसर्ववेदसदक्षिणाम् ।

आत्मन्यऽग्नीन्समारोप्यब्राह्मणःप्रव्रजेद्गृहात् ॥मनु०॥

पूर्वोक्त श्लोक का स्वकपोल कल्पित झूठा अर्थ लिख दिया जो अप्रमाणीक है ।

फिर पृ० १६४ पंक्ति २७ में श्लोक लिख कर उस का खुलासा यह लिखते हैं कि जब गाँव में धूम न दीख पड़े मूसल वा चकी का शब्द न सुन पड़े किसी के घर में अंगार न देख पड़े तब गृहस्थ लोग भोजन कर चुकें और भोजन कर के पत्री और सकोरे बाहर फेंक देवें उस समय सन्यासी गृहस्थ लोगों के घर में भिक्षा के लिये नित्य जाय और जो ऐसा कहते हैं कि हम पहिलेही भिक्षा करेंगे यह उनका पाखंड ही जानना क्योंकि गृहस्थ लोगो को पीड़ा होती है, और जो विरक्त होके वैरागी लोग आदिक अपने हाथ से करते हैं वे बड़े पाखंडी हैं,

इस पर मुरादाबादी लाला जगन्नाथदास अपनी बनाई 'दयानन्द मत परीक्षा प्रथम भाग पृ० १८ पंक्ति १३ में समोचारूप यह लिखते हैं कि

स्वामीजी ने तो सन्यास धर्म का सर्वथा ही त्याग कर दिया था क्योंकि आप उक्त काल में गृहस्थ लोगों के घर में भिक्षा के वास्ते नहीं जाते किन्तु रसो इया से धनाढ्य गृहस्थो के समान इच्छानुसार भोजन बनवाते थे और सबसे पहिले ही खाते थे, अब आपका यह लेख (कि जो ऐसा कहते हैं कि हम पहिले ही भिक्षा करेंगे यह उनका पाखण्ड ही जानना) किसका पाखंड दिखलाता है, और किस को पाखंडी ठहराता है, फिर यह वाक्य कि जो विरक्त होके वैरागी आदिक अपने हाथ से लेकर करते हैं वे बड़े पाखंडी हैं, बतलाइए कि जो सन्यासी

होकर रसोइया से इच्छानुसार भोजन बनवाते हैं वे छोटे पाखंडी हैं व बड़े पाखंडी से भी बड़े ?

फिर देखो पृष्ठ १७१ में लिखा है कि यज्ञ के वास्ते जो पशुओं की हिंसा है सो विधि पूर्वक हनन है।

तथा इसी पृष्ठ की पंक्ति २४ में धर्म अधर्म दोनों एक रस लिख दिए हैं।

फिर देखो पृष्ठ २०४ पंक्ति २५ में लिखा है कि—

और जो तू सत्य ही बोलेगा तो गंगा व कुरुक्षेत्र में प्रायश्चित्त करना व राज्यगृह में दण्ड अथवा परलोक परजन्म में नरकादिक सर्व दुःखों की प्राप्ति तुझ को कभी न होगी, इससे तुझको सत्य ही बोलना चाहिए मिथ्या कभी नहीं।

इस लेख में स्वामी जी ने गंगा और कुरुक्षेत्र को पाप निवारक स्थान मान लिया परन्तु नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" में केवल यही लिख दिया है कि गंगा २ कहने से पाप कभी नहीं जाते हैं और तीर्थ इत्यादि पांच छः सौ वर्ष से प्रकट हुए हैं।

फिर देखो पृष्ठ २३५ पंक्ति ३ में लिखा है कि

"जितने जीव हैं उनको ईश्वर ने तुल्य पदार्थ दिए हैं पक्षपात किसी का भी नहीं किया।

पाठक वृन्द दृष्टि करो कि दो जीव भी तुल्य पदार्थों के भोगी देखने में नहीं आते इस विषय में स्वामी जी का लेख सर्वथा अनुचित है।

फिर देखो पृष्ठ ३०२ में लिखा है कि कोई भी मांस न खाय तो जानवर पक्षी मत्स्य और जलजंतु इतने हैं उनसे शत सहस्र गुणे हो जाय, फिर मनुष्यों को मारने लगें और खेतों में धान्य ही न होने पावे फिर सब मनुष्यों की आजीविका नष्ट होने से सब मनुष्य नष्ट हो जाय।

तथा पृष्ठ ३०३ में गोमेधादिक में वन्ध्या गाय और बैल आदि नर पशुओं का मारना लिखा है, तथा पृष्ठ ३५९ में लिखा है कि पशुओं को मारने में थोड़ा सा दुःख होता है परन्तु यज्ञ में चराचर का अत्यंत उपकार होता है,।

इसके प्रतिकूल पुस्तक "गोकरुणा निधि" में तथा गौरक्षिणी सभा के स्थापित करते समय के व्याख्यानों में मांस का निषेध कर दिया और नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" के तो पृष्ठ ३४ पंक्ति २२ पृष्ठ २६६ पंक्ति ६ व २८ इत्यादि

अनेक स्थान पर मासका निषेध लिखा है । इसी प्रकार प्रथमवार के छपे 'सत्यार्थ-प्रकाश' का थोड़े से ही मे पूर्वापर विरोध दिखाया, अब नवीन 'सत्यार्थ प्रकाश' का थोड़ा सा हाल लिखते हैं, पूरी समालोचना तो दोनों ग्रन्थों की 'दयानन्द छल कपट दर्पण' के दूसरे भाग मे होगी ।

नवीन * 'सत्यार्थ प्रकाश' पृ० १ पंक्ति १२ तक प्रथम लिखा गया । पृ०. २ पंक्ति १३ तकचतुर्दशसमुल्लासोंका सूचीपत्र है, पृ० २ पंक्ति १४ से पृ० ४ पंक्ति १७ तक भूमिका मे कोई आलोचना करने योग लेख नहीं है, तत्पश्चात् पृ० ४ पंक्ति १७ से पृ० ५ पंक्ति २८ तक 'जैनधर्म्म' सम्बन्धी लेख है जिसकी समीक्षा आगे चलकर करेंगे फिर पृ० ५ पंक्ति २९ से पृ० ६ के अन्त तक भूमिका पूरी करी है, और पृ० ७ से २४ तक 'ईश्वर नाम व्याख्या' पृ० २५ से २६ तक मंगलाचरण समीक्षा लिख प्रथम समुल्लास पूरा किया इसकी यथार्थ समालोचना दूसरे भाग मे होगी ।

द्वितीय समुल्लास पृ० २७ पंक्ति १७ से लिखा है कि ।

रजो दर्शन के पाच दिवस से लेके सोलहवे दिवस तक ऋतुदान देने का समय है उन दिनों मे से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन उनमे एका-दशी और त्रयोदशी रात्रिको छोड़के बाकी १० रात्रियों मे गर्भाधान करना उत्तम है, और रजोदर्शन के दिन से लेके १६ वीं रात्रि के पश्चात् न समागम करना पुन जब तक ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे तब तक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हो ।

फिर पृ० २८ पंक्ति १३ मे लिखा है कि 'क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीरके अश से बालक का शरीर होता है । इसी मे स्त्री प्रसव समय निर्बल होजाती है, इस लिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे । दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस

* यह बात भी पाठक वृन्दों को ध्यान, में रखनी चाहिये, कि नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" जो स्वामी जी ने सम्वत् १९३९ में बनाया था, सन् १८८७ में तीसरी बार वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में छपा था जो हमारे पास मौजूद है, सो हम जहाँ जहाँ नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" का प्रमाण देवेंगे वहाँ इसी के पृष्ठ पंक्ति समझना ।

औषधि का लेप करे जिसमे दूध स्रावित न हो ऐसे करने से दूसरे महीनेमें पुनः पियुवती हो जाती है । तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्य्य का निग्रह रक्खे' ।

इसके प्रतिकूल पृ० ११९ पंक्ति ४ से लिखा है कि 'और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष व स्त्री से न रहा जाये तो किसी से नियोग करके उसके लिये 'पुत्रोत्पत्ति' कर दे ।

बड़े आश्चर्य की बात है कि जबस्त्री प्रथम ही गर्भवती है तो और दूसरे से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कैसे करेगी ।

क्योंकि किसी वैद्यक ग्रन्थ में ऐसा लिखा देखने में नहीं आया कि एक स्त्री अनेक पुरुषों से जुदे जुदे गर्भ एक गर्भ के होते हुए धारण कर सके, और जो यही मान लिया जाय कि स्वामी जी का लिखना पत्थर की लकीर है तो यह शंका उत्पन्न हो जायगी कि कोका पंडित के कथनानुसार दो मास का गर्भ होने पर स्त्री को मैथुन करने की अधिक रुचि होती है तो क्या एक गर्भ के दो मास पूरा होने पर वह नियोग द्वारा दूसरा गर्भ धारण कर लेगी । और इसी प्रकार दो दो मास पूरे होने पर नियोग द्वारा गर्भ धारण करते रहने में उसका सम्पूर्ण जीवन समय मुर्गी के समान बच्चे देने और भोग करने ही में पूरा होगा जो विद्या और बुद्धि दोनों के प्रतिकूल है । और जो उस गर्भवती स्त्री से एक वर्ष तक रहा न जाय तो क्या निज पति से भोग करने में कुछ दोष है जो नियोग द्वारा मुंह काला करने की आज्ञा दी ।

फिर देखो पृ० ३३ पंक्ति २७ से लिखा है कि 'किसी को अभिमान न करना चाहिये छल कपट व कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये । छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और रख दूसरों को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना, 'कृतघ्नता' उसको कहते हैं कि किसी के किये हुए उपकार को न मानना' ।

फिर देखो पृ० ४० पंक्ति ०९ से लिखा है कि 'संध्योपासन जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं । 'आचमन' उतने जलको हथेली में लेके उसके मूल और और मध्य देश मे ओष्ठ लगाकर करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे

न उसमें अधिक न न्यून । उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है पश्चात 'मार्जन' अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे।'

फिर देखो पृ० ४१ पंक्ति १ से स्वामी जी वेदी, प्रोक्षणीपात्र, प्रणीतापात्र, आज्यस्थाली, चमसा, इन पांचों का चित्र बनाकर "सत्यार्थप्रकाश" के पाठकों को समझाते हैं कि इस प्रकार के सोने चांदी वा काष्ठ के बनवाकर काम में लाओ। हम पूछते हैं कि एक जड़ वस्तु के ज्ञान कराने में तो आपको उसकी मूर्ति का सहारा लेना पड़ा भावार्थ उसकी मूर्ति द्वारा पाठकों को बोध कराया फिर पृ० ३०८ से ३१६ तक मूर्ति पूजा का खण्डन किया यह किस बुद्धिमानी का काम है ।

फिर पृ० ४३ पंक्ति ८ में लिखा है कि "और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे शूद्र पढ़े पर उसका उपनयन न करे यह मत अनेक आचार्यों का है।"

इसके प्रतिकूल पृ० ७४ पंक्ति ११ में शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं यह लिख दिया ।

फिर पृ० ५० पंक्ति १७ में लिखा है कि "जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेद निन्दक नास्तिक को जाति पंक्ति और देश से बाहर कर देना चाहिये।"

इस पर स्वामी जी ने एक मनुस्मृति का श्लोक भी लिखा है और इस "सत्यार्थ प्रकाश" में मनुस्मृति के अधिक प्रमाण दिए हैं, परन्तु इसके कुछ भाग को वेदानुकूल कहकर ग्रहण करना और शेष भाग को नहीं मानना इसको न्याय वान विचार सकते हैं कि जाति, पंक्ति, और देश से निकाले जाने लायक सत्शास्त्रों का अपमान करने वाला नास्तिक कौन ठहर सकता है।

पृ० ६८ पंक्ति ५ में 'सारस्वत' चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमा को कुग्रन्थ लिखा और इसी पृ० की पंक्ति १० में अमरकोश को नास्तिक कृत लिखा परन्तु पृ० ४२९ पंक्ति २३ में इसी के प्रमाण पर लेख किया है।

और पृ० ६८ पंक्ति १९ में मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण, और महाभारत को प्रमाणीक माना परंतु उनके अंतरगत लेख को स्वामी जी नहीं मानते इस विषय में हम आगे चलकर स्पष्ट लिखेंगे।

पृ० ७० पंक्ति १० में लिखा है कि "गान्धर्व वेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिनी, समय, ताल, ग्राम तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखे"।

फिर पृ० १४४ पंक्ति २ से लिखा है कि "गाना बजाना, वा नाचना, वा नाचकराना, सुनना, और देखना, वृथा इधर उधरघूमते रहना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं,।

पाठक वृन्द खयाल करनेका स्थान है कि स्वामीजी को बालकपन का गीत नृत्य अब तक याद है। क्यों न हो इस विद्याने तो घरसे ही निकाला था, और यदि स्वामीजी युवा होकर इस कार्य्य को बुरा समझने लगे थे तो अब उनके शिष्य गण साप्ताहिक जलसों में गला फाड़ फाड़ राग भजन क्यों गाते हैं?।

* पृ० ७१ पंक्ति १२ में लिखा है कि 'अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उन का परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो २ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह २ जाल ग्रन्थ समझना चाहिये। व्याकरण में का तंत्र सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश अमरकोशादि छन्दो ग्रन्थ में वृत्त रत्नाकरादि। शिक्षा में अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामि पाणिनीयमत यथा। इत्यादि। ज्योतिष में शीघ्रबोध मुहुर्त चिंतामणि आदि। काव्य में नायका भेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि, मीमांसा में धर्मसिन्धु व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठ प्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्यतत्व कौमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ट पंचदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में एक मनुस्मृति इस में भी प्रक्षिप्त श्लोक अन्य सब स्मृति, सबतंत्र ग्रन्थ पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत भाषा रामायण, रुक्मणीमंगलादि और सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोल कल्पित मिथ्या ग्रथ हैं।'

प्यारे पाठक गण स्वामीजी ने आदि आदि शब्द सब के साथ लगादिया। जिसमें व्याकरण, कोश, शिक्षा' ज्योतिष, काव्य, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग

साख्य, वेदांत, वैद्यक, स्मृति, तन्त्र, पुराण, उपपुराण के जितने ग्रंथ पृथ्वीपर प्रचलित है सब परित्यागके योग्य हो गये । और मनुस्मृति तो इस लेख से प्रत्यक्ष ही अप्रमाण हो चुकी है । इस के प्रतिकूल पृ० ६०४ पक्ति १ में पुराण को ग्रहण कर लिया है, सो यदि यही समझ लिया जाय कि मनुस्मृति को यहा यथावत्‌ वेदोक्त माना है अब उसे श्राद्धोपात नहीं मानते और लिखित मृत पुरुषो के श्राद्धादि कर्मो को धर्म्म नहीं जानते किंतु उसके ऐसे विषयो को वेद विरुद्ध कहते और उन के खडन पर उद्यमी रहते रहे, विद्वानो का यह काम नहीं है कि जिसे यथावत्‌ वेदोक्त बतलावें फिर उसी को वेद विरुद्ध ठहरावें । असल बात तो यह है कि स्वामीजी किसी ठिकाने पर स्थिर नहीं रहते, यदि उनको मनुस्मृति के लेखो में कुछ भाग वेद विरुद्ध जान पडा था तो (नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० ७२ पक्ति ७ के इस लेखानुसार "असत्य मिश्र सत्य दूरतस्त्याज्यमिति । असत्य से युक्त ग्रंथस्थ सत्य को भी वैसे छोड देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को) मनुस्मृति का सर्वथा त्याग चाहिये ।

फिर पृ० ७९ पक्ति १८ मे कैसी कन्या से विवाह करना चाहिये इस विषय में यह लिखा है "नक्षत्र अर्थात्‌ अश्विनी भरणी रोहिणीर्ई रेवतीबाई चित्तादि नक्षत्र नाम वाली । तुलसीआ, गेंदा, गुलाबी, चंपा, चमेली, आदि वृक्ष नाम वाली, गगा यमुना आदि नदी नाम वाली, चाडाली आदि अन्त्य नाम वाली, विन्ध्या हिमालया पार्वती आदि पर्वत नाम वाली, कोकिला, मैना आदि पक्षी नाम वाली नागी भुजगी आदि सर्प नाम वाली माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नाम वाली और भीमकुंअरि चडिका काली आदि भीषण नाम वाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये क्योकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं ।

पाठकवृन्द टुक ध्यान देना चाहिये कि स्वामीजी ने तीर्थों को नदी और पुष्पों को तृण बना कर लिख दिया, और क्या इसी लेखानुसार वसुदेव की स्त्री का नाम रोहिणी, महादेव की स्त्री का नाम पार्वती यह दोनो मूर्ख थे या उन कन्याओ के पिता आदि मूर्ख थे ? और इस श्लोक का शब्दार्थ भी वह नहीं है जो स्वामीजी ने लिखा है ।

फिर पृ० ८० पक्ति ७ से लिखा है, ।

(प्रश्न) विवाह का समय और प्रकार कौनसा अच्छा है, (उत्तर) सोलहवें वर्ष से लेकर ४८ वें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है; इस में जो सोलह और पचीस में विवाह करे तो निकृष्ट अठारह बीस की स्त्री तीस पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह होना उत्तम है ।

प्रिय पाठको २४ वर्ष की कन्या और ४८ वर्ष के पुरुष का विवाह करना उत्तम लिखा है सो विचार करना चाहिये कि चौबीस वर्ष की अवस्था वाली लड़की की गणना (शुमार) कन्या में होगी वा तरुणा (जवान) स्त्री में होगी। एवं ४८ वर्ष का पुरुष बालक कदापि न कहावेगा किंतु बरावर जवान (युवा) कहा जायगा ।

फिर पृ० ८२ पंक्ति ३ से मनु के प्रमाण पर लेख लिखा है कि—

कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति का खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे जब प्रति मास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं ।

अब न्याय वालों को विचारना चाहिए कि प्रथम लेख से इस लेख में कितना विरोध है, प्रथम लिखा है कि कन्या का विवाह २४ वर्ष की अवस्था में करे तो श्रेष्ठ है । अब उसी विषय को पुनः यहां लिखते हैं कि रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष में पति को ढूंढ ले तो क्या स्वामी जी यह समझ रहे हैं कि २१ वर्ष की अवस्था से पहिले स्त्री रजस्वला * नहीं होती ? धन्य महाराज धन्य खूब लिखा ।

पृ० ८४ पं० १९ में लिखा है कि "वर्णव्यवस्था भी गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए" ।

पुनः इसी पृ० की पंक्ति २५ में लिखा है कि 'जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है, वही ब्राह्मण के योग्य है और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है' ।

पुनः पृ० ८६ पं० ९ में लिखा है कि 'जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके

* वर्तमान काल में १० वर्ष से पीछे १२ वर्ष से पहिले कन्या अवश्य रजस्वला हो जाती है ।

नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में अवश्य गिनना चाहिए ।

पुनः पृ० ८७ प० २३ में लिखा है कि 'अर्थात् चारों वर्णों में जिस २ के वर्ण सदृश जो २ पुरुष व स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिना जावे' ।

पुनः पृ० ८८ प० १४ से लिखा है कि "यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिए" ।

पुनः पृ० ९० प० १४ में लिखा है कि 'य संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे, जिस जिस पुरुष में जिस जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस उस वर्ण का अधिकार देना' ।

इन सबका भावार्थ यही है कि कन्याओं की १६वें और पुरुषों की २५वें वर्ष परीक्षा करे और जैसा २ गुण कर्म स्वभाव जिस २ स्त्री व पुरुष में हो उस उस स्त्री व पुरुष को उसी गुण कर्म स्वभाव वाले वर्ण में प्रविष्ट करना । परन्तु १६ वें वर्ष से पहिले स्त्री २५ वें वर्ष से पहिले पुरुष को किसी वर्ण में न गिना जायगा ।

इनके प्रतिकूल पृ० ३७ प० २ पुस्तक संस्कारविधि में लिखा है कि जन्म दिन से लेके १० वीं १२ वीं रात्रि महीना किंवा एक संवत्सर में बालक का नाम धरे । और उसी पुस्तक के पृ० ३९ प० १० में लिखा है कि ब्राह्मण के नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रिय के वर्मा, वैश्य के गुप्त और शूद्र के दास जैसे भद्रशर्मा, भद्रवर्मा, भद्रगुप्त, भद्रदास इस प्रकार से नाम रक्खे ।

पाठकवृन्द ! विचार करो कि जब २५ वें वर्ष में परीक्षा कर के गुण कर्म स्वभाव के अनुसार वर्ण निश्चय करने को "सत्यार्थप्रकाश" में लिखा है तो यहाँ दसवें बारहवें महीने एवं एक वर्ष के भीतर उन बालकों में गुण कर्म स्वभाव कहाँ से आ गया जो वर्ण निश्चय होकर उनके नाम शर्मन्, वर्मन्, गुप्त, नाम रक्खे जाते हैं । और पृ० ९३ प० २७ इसी 'सत्यार्थप्रकाश' में संस्कारविधि के अनुसार नाम करण संस्कार करना लिखा है ।

पुनः पृ० ८८ प० ९ से यह प्रश्नोत्तर लिखा है कि—

(प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र व पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट

हो जाय तो उसके शूद्र बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जाता इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिए ? (उत्तर) न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा, क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे संतान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इस लिए कुछ भी अव्यवस्था न होगी।

पाठक महाशयों को विदित हो कि पूर्वोक्त लेख का अभिप्राय यह हुआ कि यदि ब्राह्मण के लड़के व लड़कियों में शूद्र के गुण कर्म पाए जाय और शूद्र के लड़के लड़कियों में ब्राह्मण के गुण कर्म हों तो विद्या सभा और राज सभा की व्यवस्था से ब्राह्मण के लड़के व लड़कियां शूद्र को और शूद्र के लड़के व लड़कियां ब्राह्मण को दिये जाय।

अब यहां पर प्रथम यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रन्थकर्ता ने यह किस वेद की श्रुति का आशय लिखा है।

दूसरे बुद्धिमान् मनुष्य विचार करें कि कोई ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इस बात को प्रसन्नता से स्वीकार कर सकता है कि अपने लड़के व लड़की शूद्र को दे दे, और उनके बदले में शूद्र के लड़के व लड़की ले ले। यह तो सर्वथा विचार से बाहर है वरन् कोई शूद्र भी ब्राह्मणादिकों को अपने बालक पुत्र और कन्या को दे कर बदले में उनके लड़के लड़कियों को लेना प्रसन्नता पूर्वक कदापि स्वीकार न करेंगे।

हमारे स्वामीजी महाराज ने तो लड़के लड़कियों को धातु पाषाणादि के भांडे (बर्तन) बना दिया कि पुराने वा टूटे फूटे बर्तन बदल डाले और बदले में नवीन ग्रहण कर लिए हों। अति आश्चर्य।

पुनः पृ० ८५ पंक्ति २७ से गीता के श्लोक का भावार्थ लिखा है कि "जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देनेसे जीत होती हो तो ऐसा ही करना"।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ १॥

उक्त श्लोक गीता के अ० १८ का ४३ वां है उसके इस पदका (युद्धे चाप्यपलायनम्) अर्थ यह है कि 'युद्ध में पीठ नहीं दिखाना' परन्तु स्वामीजी ने

उस का अर्थ (युद्ध में भी दृढ़ निःशङ्क रह के उससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चय विजय होवे आप बचे जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना) मन माना लिख दिया।

पुनः पृ० ९१ पंक्ति १५ में विवाह की विधि का वर्णन किया सो वर्तमान काल के ईसाईयों के समान मूर्ति (फोटोग्राफ) को देखकर सम्बन्ध करने का वर्णन किया क्या यह भी किसी वेद का वचन है?

पुनः पृ० ९७ पंक्ति १७ में लिखा है कि "जब वीर्य्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें डिगें नहीं पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य्य प्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर खींचे योनि को ऊपर सङ्कोच कर वीर्य्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे।

प्यारे पाठक गण क्या सन्यासी लोग कोक कला में भी प्रवीण होते हैं? और स्वामीजी का यह लेख भी किसी वेदानुकूल है?

पुनः पृ० ९५ पंक्ति ६ में लिखा है कि "दिन रात में जब जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब २ प्रीति पूर्वक "नमस्ते" एक दूसरे से करें"

इस पर 'मतावेद पराजय' पृ० ८ पंक्ति ७ में लिखा है कि मुन्शी इन्द्रमणि जी ने हरिद्वार ज्वलेश्वर आदि के वार्तालाप में स्वामीजी से कहा था कि आप मिलने के समय जो "नमस्ते" करते हो वह अयोग्य है, हरिद्वार में स्वामी जी ने पण्डित भीमसेन को मध्यस्थ किया उन्होंने स्वामी जी के सन्मुख स्पष्ट कह दिया कि मुन्शी जी ठीक कहते हैं परस्पर 'नमस्ते' का कहना अयोग्य है, परन्तु स्वामी को अपने कथन का आग्रह ही रहा फिर मुरादाबाद में इस विषय पर तीन दिन स्वामी जी से मुन्शी जी का पूर्ण वार्तालाप हुआ पण्डित भीमसेन ने बहुत मनुष्यों के सन्मुख कहा कि हम स्वामी जी से नमस्ते कहते हैं परन्तु वे उत्तर में किसी को नमस्ते नहीं कहते अन्त में स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि आपका कथन सर्वथा ठीक है निःसन्देह परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्य है, परन्तु फिर भी

नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" मे लिख दिया ।

पुन पृ० १०१ पक्ति १ पर जो श्लोक मनुस्मृतिका लिखा उसका अर्थ मन माना लिखा शब्दार्थ और अक्षरार्थ मे प्रतिकूल है ।

पुन पृ० १०३ पक्ति २७ से पृ० १०४ पक्ति ४ तक यह लेख है, ।

अतपास्त्वनधीयाना: प्रतिग्रहरुचिर्द्विज: ।

अम्भस्य श्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति ॥ १ ॥ मनु०

एक (अतपा) ब्रह्मचर्य्य सत्य भाषणादि तप रहित । दूसरा (अनधीयान) बिना पढा हुआ तीसरा (प्रतिग्रहरुचि) अत्यन्त धर्मार्थ दूसरो से दान लेने वाला ये तीनों पत्थर की नौका से समुद्र मे तरने के समान अपने दुष्ट कर्मों के साथ ही दु:ख सागर मे डूबते हैं । वे तो डूबते ही हैं परन्तु दाताओं को साथ डुबा लेते हैं ।

इसके प्रतिकूल पंडित गौरीशंकर वैद्यराज सम्पादक पीयूषवर्षिणी धर्म सभा फर्रुखाबाद अपने मासिक पत्र सख्या ४५ भाग ४ मास ज्येष्ठ शुक्ला १५ सम्वत् १९४८ पृ० १५ पक्ति १९ से लिखते हैं कि "न्यायकारों को इस विचार करना चाहिये कि पूर्वोक्त लेखानुसार उक्त ग्रन्थकर्ता किस गति को प्राप्त हुआ होगा, क्योंकि उससे अधिक अत्यन्त धर्मार्थ दान लेने वाला कौन होगा क्योंकि उसने यहा ताईं अत्यन्त धर्मार्थ दान लिया है कि कोपीनधारी से लखपती हो गया था यहा तक तृष्णा प्रबल हुई कि सम्पूर्ण रत्न स्वर्णादि दान देने सन्यासी ही के लिये अपने ग्रन्थ मे लिखे जिसके प्रमाण मे स्वकपोलकल्पित अर्द्ध श्लोक भी मनु के नाम से धर दिया *

पुन पृ० १०४ पक्ति १५ मे आगे जो लिखा है उसका भी भावार्थ यही है ।

पुन पृ० ११० पक्ति २४ में मनुका निम्न लिखित श्लोक और उसका अर्थ यह लिखा है ।

यौस्त्रीत्वक्षतयोनि: स्याद्गतप्रत्यागतापिवा ॥

यौनर्भवेनभर्त्रासा पुन: संस्कार मर्हति ॥ १ ॥

* यह आधा श्लोक नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ १३३ पक्ति २० में लिखा है जिसका वर्णन आगे आवेगा ।

(अर्थ) जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षत योनिस्त्री और अक्षत वीर्य पुरुषहो उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह (*) होना चाहिये किंतु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षत योनि स्त्री क्षत वीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।

पुन पृ० १११ पंक्ति ६ मे लिखा है कि द्विजों मे पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होने चाहिए।

पुन पृ० ११३ पंक्ति ३० मे लिखा है कि "द्विजो में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रो मे लिखा है द्वितीय वार नहीं"।

पाठक गणो ? पक्षपात रहित न्याय करो कि एकही ग्रंथमे-प्रथम यह लिखा कि अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य्य पुरुष का अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये फिर यह लिखा कि द्विजो में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों मे लिखा है अब खयाल करने की बात है कि इस लेख में परस्पर कितना विरोध है।

पुन पृ० ११५ पंक्ति २७ में जो आधा श्लोक मनुस्मृति का लिखा उसका अर्थ भी मन माना लिख दिया स्वामी जी लिखते हैं कि—

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवर ॥ मनु० ॥

स्वामी जी का किया हुआ इसका अर्थ यह है कि "जो अक्षत योनि स्त्री विधवा हो जाय तो पति का निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है"

और यथार्थ बात यह है कि यह पूरा श्लोक मनुस्मृति अध्याय ८ का ६९ वा है जो अर्थ सहित इस प्रकार ठीक है।

यस्या म्रियेत कन्याया वाचासत्येकृते पतिः ॥
तामनेन विधानेन निजोविन्देत देवरः ॥ १ ॥

(अर्थ) जिस कन्या को जिस किसी पुरुष को जिह्वा से देनी कह चुके अर्थात् सम्बन्ध जिससे कर चुके और वह पुरुष जिसको कि देने कह चुके वह

(*) जहां यह निशान है वहां तीसरी वार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश में" "१" यह विशेष अक्षर स्वामी के शिष्यों ने सर्व साधारण को धोखा देने के लिये बना दिया है असल में नहीं है।

विवाह के प्रथम मृत्यु हो जाय तो उसका निज भ्राता (सगा भाई) उस कन्या से इस विधान करके विवाह करे ।

पुन पृ० ११७ पंक्ति २ में लिखा है कि (प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है व जीते पति के भी (उत्तर) जीते भी होता है ।

इसका पादरी टी० विल्यम्स मेनेजर मिशनहौस रिवाड़ी ने निम्न लिखित उत्तर और खंडन किया है ।

"सत्यार्थ प्रकाश" पुस्तक के जो १८८४ मे छपके निकला है ११८ पृ० में दयानन्द यह प्रश्न करता है "क्या पति के जीते जी जैसा उसके मृत्यु के पीछे नियोग हो सक्ता है ?" वह आपही उत्तर देता है कि हां पुरुष के जीते जी नियोग होता है । हमको विदित है कि दयानन्द का नियोग से क्या अभिप्राय है अर्थात् जब स्त्री और पुरुष निःसन्तान हैं तो वह जो निर्बल नहीं है (इस स्थान मे स्त्री का अर्थ है) सन्तान उत्पन्न करने के अभिप्राय से किसी पुरुष के सग प्रसग करे । इस पर्व के पूर्व भाग में उसने बतलाया कि जब उसका पति मर जावे स्त्री को क्या करना चाहिये तब आगे बढ़ के वह आज्ञा देता है कि अपने पति के जीते जी यदि वह सन्तान उत्पन्न करने के योग्य न होवे तो स्त्री को क्या करना पड़ता है । वह यह अयोग्य शिक्षा देता है कि निःसन्तान पुरुष की स्त्री अपने पति के जीते जी दूसरे विवाहित पुरुष के सग भोग करे जिससे उसके सन्तान उत्पन्न होवें । इस विलक्षण शिक्षा के प्रमाण वह मनु से नहीं वरन ऋग्वेद ही से लिया चाहता है वह उस वेद के मण्डल १० ऋचा १० पद १० के विषय में लिखता है कि यह उसका भारी और निरा प्रमाण है । मैं नहीं कह सक्ता हूँ कि ऋग्वेद मे कोई अनुचित बात नहीं है क्योंकि मैं ऐसी बातों को प्रगट कर सक्ता हूँ, परन्तु आर्य्य समाज के आदि कर्त्ता दयानन्द ने यह ममता की कि ऋग्वेद ही में यह अनुचित शिक्षा है कि यदि उसका पति निर्बल होवे, तो वह स्त्री दूसरे विवाहित पुरुष के सग भोग करे यह भी मैं नहीं कहता हूं कि हिन्दुओं ने दयानन्द के पहिले यह शिक्षा नहीं सुनी है क्योंकि सैकड़ों वर्ष से वे यह व्यवहार करते चले आये । लोग प्रयाग के पण्डे ब्राह्मणों पर यह दोष लगाते हैं और वल्लभाचार्य्य के पन्थ के महाजनों को भी इसी कारण से

बुरी चर्चा फैल रही है। परन्तु मुझे कहना पड़ता है कि दयानन्द से पहिले किसी ने इस निकृष्ट शिक्षा को वेदों से निकालने की ममता नहीं की है वरन आर्य्य समाज के आदि कर्ता ने अपने वेद की इतनी निरादरता की है। परन्तु दयानन्द की यह ममता कि ऋग्वेद में यह घृणित शिक्षा मिलती है निरी मिथ्या है जब दयानन्द ऋग्वेद को जो वह ईश्वरोक्त पुस्तक कहता है ऐसा झुठलाता है और मानो कीचड़ में धमाट रोता है तो उस के विषय में क्या कहना उचित है।

आपको विदित होगा कि दयानन्द के प्रमाण में अर्थात् ऋग्वेद १० मण्डल १० ऋचा १० पद में वक्ता यम है और वह स्त्री जिससे वह बोलता है उसकी भगिनी है। यम अपनी भगिनी वा अपनी यमज भगिनी यमी से सम्भाषण करता है। वर्तमान काल तक कोई हिंदू ऐसा उन्मत्त नहीं हुआ कि ऋग्वेद से यह शिक्षा निकालता क्योंकि जो हिंदू वेद को पढ़ सकता था सो जानता था कि इस पद में यम अपनी यमज भगिनी यमी से बोलता है परन्तु दयानन्द उसपर यह टीका करता है कि वक्तापति और वह स्त्री जिससे वह बोलता है उसकी पत्नी है ऐसा कहने में दयानन्द समझ बूझ कर मिथ्या बोलता है मैं कहता हूं कि इस में सन्देह नहीं कि दयानन्द जानता था कि उसके प्रमाण में यम अपनी यमज भगिनी यमी से सम्भाषण करता है सो इस मिथ्या बातों से उसको शिक्षा पाप है पाप तो है क्योंकि वह उस पुस्तक को झुठलाता है जिसके विषय में वह कहता है कि वह ईश्वरोक्तशास्त्र है और मैं उसका मानने वाला हूँ।

यदि दयानन्द इस दोष से छुटकारा प्राप्ति करना चाहे तो वह केवल इस रीति से हो सकता है कि वे यह वचन सिद्ध करें कि पूर्वोक्त पद में न यम वक्ता है और न यमीसे बात करता है परन्तु उस प्रतिवाद को मैं अभी खण्डन करता हूं।

पहिले पदही को छोड़कर सब से प्राचीन प्रमाण यास्क है। वह अपने निरुक्त ६।५।५ में इस सूक्त के १३ पदका प्रमाण के लिये निकालते और उसका टीका कार अपनी टीका इस प्रकार से आरम्भ करता है अर्थात यमी यम से बोलता है। कदाचित कोई कहेगा कि टीका कभी आचार्य्य के मूलार्थ के विरोध से होती है इस निमित्त मैं यास्क के निज वचन लिखता हूं निरुक्त ११।३।१३ में ऋग्वेद के १० मण्डल के १० सूक्त के १३ पद का यह वर्णन करता है कि "यमी

यमचकमेतामप्रत्याचचक्ष" अर्थात यमीने यम के संग भोग करना चाहा उसने अस्वीकार किया। यह साक्षात है क्योंकि यास्क और उसका टीकाकार दोनो मानते हैं कि पूर्वोक्त पद यम और यमी की बात चीत से हैं जिसमे यमी ने यमसे मांगा कि यम उस के संग प्रसंग करे पर यमने अस्वीकार किया। तो इस ऋचा में निर्बल पति जो अपनी पत्नी को पराये पुरुष के पास भेजे उसका वर्णन कहा है। यास्क के टीका कारने लिखा है कि यम यमी का भ्राता है। आपसे कहना आवश्यक नहीं कि यास्क का निरुक्त वेदांग है इस लिये वह वेद के सदृश प्रमाणित है तो दयानन्द ऐसा साहस क्यो करता है कि यास्क का जिस का प्रमाण वह मानता है विरोध करता है और कहता है कि इस ऋचा में निर्बल पति का वर्णन है।

दूसरे यास्क के प्रमाण से कात्यायन के प्रमाण को कुछ कम प्रबलता नहीं रखता है। उसकी ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणिका को जिसमे प्रत्येक सूक्त का ऋषि और देवता लिखा है सब लोग प्रमाणित मानते हैं। यह शत पथ ब्राह्मण के श्रौत सूत्रों का आचार्य है और व्याकरण के विषय में पाणिनि के तुल्य है क्योंकि पतंजली के महा भाष्य का अभिप्राय यह है कि वह इसी कात्यायन के वार्तिक का अर्थ प्रकाश करे जो उसने पाणिनि के व्याकरण पर लिखा है इस कारण यदि कात्यायन का वचन प्रबल न ठहरे तो किस का प्रमाण मानेंगे अपने सर्वानुक्रमणिका में उसने लिखा है कि ऋग्वेद म १० सूक्त १० का न ऋषि है न देवता वरन वह विवस्वत के पुत्र और पुत्री यम और यमी का सम्वाद है। (वैवस्वतोर्यमयम्योः सम्वाद) हे महाशय ऋचा के प्रमाण को छोड कर यास्क और कात्यायन के सदृश क्या प्रमाण ठहरेगा। परन्तु हम अभी ऋचा ही का प्रमाण लाते हैं।

तीसरा—यम और यमी के व्यक्तिवाचक नाम इस सूक्त में तीन तीन बार मिलते है। १२ पद मे यम का और १४ पद में यमी का सम्बोधन मिलता है ये दोनो पिछले पद है। पद पाठ से विदित होता है कि सम्बोधन कारक को छोड़ और कारक का पता इन पदों मे नहीं मिलता। इससे सम्भाषकों के नाम अर्थात् यम और यमी विदित होते हैं।

उनके सम्बन्ध के विषय मे २ पद मे यम यमी को अपनी सलक्ष्मा कहता है अर्थात् कुटम्बिनी, फिर चौथे पद में यों लिखा है कि 'गन्धर्वो अप्स्वप्याचयोषा

मानो नाभि परमं जामित्नौ' अर्थात गन्धर्व और उसकी अप्सरा पत्नी उनसे हम दोनों की उत्पत्ति हुई इस कारण हम परम जामि अर्थात सगोत्र हैं । पांचवे पद मे यमी कहती है कि त्वष्टा ने हम दोनो को गर्भ मे पति और पत्नी बनाया (गर्भे नुजौजनिता दम्पतीकर्देवस्त्वष्टा) और इस कारण कि वे मिथुन हैं उनका स्वामी और स्त्री होना चाहिये । फिर छठे पद में यमी कहती है कि 'दिवा पृथिव्या मिथुना सम्बन्धू' अर्थात् स्वर्ग और पृथ्वी पर मिथुन का बड़ा सम्बन्ध है और फिर यह चाहती कि यम से ऐसा व्यवहार करे कि मानो वे सगोत्रवा जामी नहीं थे । १० पद में यम उत्तर देता है कि 'यत्र जामयः कृणवन्नजामि' अर्थात् अभी से सगोत्र लोग वह कर्म करेंगे जो गोत्र धर्म का अयोग्य है । ११ पद में यमी यम का उलाहना करती है कि वह भ्राता होने पर भी उसकी सहायता नहीं करता है और यद्यपि वह उसकी स्वसा व भगिनि है तथापि वह उस पर विपत्ति आने देता है । १२ पद में यम अपनी भगिनी के संग प्रसंग करने से मुकर जाता है क्योंकि वह कहता है कि 'पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्' अर्थात् लोग उसको पापी कहते हैं जो अपनी भगिनी के संग गमन करता है तेरा भ्राता हे सुन्दरी इसको नहीं चाहता । यह सूक्त अथर्व वेद में भी मिलता है और उसमे इस पद का अधिक विस्तार है और यम का मुकर जाना दृढता और गंभीरता के साथ लिखा गया है । इस लिये मैं कहता हूं कि यदि कोई यम और यमीके सम्बध के विषय मे सदेह करे तो उसको सिड़ी कहना चाहिये ।

इस प्रकार से मैंने स्पष्ट प्रकट किया है कि इस संवाद में उक्त यमज भ्राता और भगिनी हैं । यमी अभिलाषी है कि उसका भ्राता यम उसके संग भोग करे । यम इस कुकर्म से मुकर जाके उसको जताता है कि ऐसा करने मे पाप होगा पर उससे कहता है कि वह दूसरे पुरुष की अभिलाषा करके उसके संग प्रसंग करे । यही पद दयानन्द उदाहरण देता और मिथ्या अनुवाद करता है और यह शिक्षा देता है कि जब उसका पति निर्बल है तो स्त्री को उचित है कि वह किसी विवाहित पुरुष के संग सतान उत्पन्न होने के निमित्त प्रसंग करे ।

पुन नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के पृ० ११७ पं० ४ मे ऋग्वेद के नाम मे यह आधा मन्त्र लिखा "अन्यमिच्छस्वसुभगेपतिंमत्" और इसका अर्थ जो ओ मन

मे आया सो लिख मारा। और हम विशेष लिखना उचित नहीं समझते सारा पूरा पृश पादरी टी० विलयम्स साहब के पूर्वोक्त लेख से भले प्रकार आचुका है।

पुन पृष्ठ १४७ प० १७ मे मनु का यह श्लोक लिखा है।

प्रोषितो धर्म्मकार्य्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौनरः समाः।
विद्यार्थं षड्यशोर्थंवा कामार्थं त्रींस्तुवत्सरान् ॥ १ ॥

इसका मन माना अर्थ यह लिखा कि "विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष विद्या और कीर्ति के लिए गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जाय"।

प्रिय पाठक महाशयो! विचार तो करो उपरोक्त श्लोक मे किस अक्षर से नियोग और सन्तानोत्पत्ति तथा नियुक्त पति के त्याग का अर्थ निकलता है!

प्रकट हो कि पूर्वोक्त श्लोक मनुस्मृति के नवमाध्याय का ७६ वा है, इसका भावार्थ बिना ऊपर के ७४। ७५ श्लोक शामिल किये नहीं निकलता इस लिये उनका भी अर्थ लिखते हैं।

कार्य वाला पुरुष स्त्री का अनाज कपड़ा आदि प्रबन्ध कर के परदेश जाय अन्न वस्त्र के अभाव में शीलवती भी बिगड़ ही जाती हैं। मनु० अ० ९ श्लोक ७४

भोजन वस्त्र का प्रबन्ध कर के गए पति की स्त्री शृङ्गारादि क्रिया से रहित होकर अपना गुजारा करे दूसरे के मकान पर न जाय और जो कदाचित् पति अन्न वस्त्रादि का प्रबन्ध नही भी कर गया हो तो चर्खा सूत कात चक्की पीस कर गुजारा करे। मनु० अ० ९ श्लोक ७५

अब श्लोक ७६ का अर्थ भी ठीक २ इस प्रकार है सुनिये—

धर्म कार्य के अर्थ गए पति की स्त्री आठवर्ष तक पूर्वोक्त आश्रयसे गुजारा करे विद्या पढने के अर्थ गए पति की स्त्री छः वर्ष तक जो रोजगारके लिये गया हो तो तीन वर्ष राह देखकर फिर जहां उसका पति हो वहा चली जाय ॥ ७६ ॥

अब न्यायवान् विचार लवें कि स्वामी जी ने कैसा तात्पर्य लिया है।

पुन पृष्ठ १५० प० १ मे पराशरस्मृति के वचनों का झूठा और स्वार्थी

मनुष्यों का किया माना है परन्तु उनके मूढ़ होने का कोई भी प्रमाण नहीं लिखा ।

पुन पृ० १२६ प० ८ मे लिखा है कि "जो देहधारी है वह सुख दु ख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति मे सर्व व्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है तब उसको सासारिक सुख दु ख प्राप्त नहीं होता" ।

इसके प्रतिकूल पृ० २८१ प० २० मे लिखा है कि—

मुक्ति मे जाना वहाँ से पुन आना ही अच्छा है । क्या थोडे से कारागार से जन्म कारागार दड वाले प्राणी अथवा फाँसी को कोई अच्छा मानता है ? जब वहा से आना ही न हो तो जन्म कारागार से इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पडगी और ब्रह्म मे लय होजाना समुद्र मे डूब मरना है । आहा ! क्या अच्छी समझ है । और इस लेख से यह भी सिद्ध होता है कि सर्व शक्तिमान परम पूज्य परमेश्वर भी सदैव के लिये कारागार मे है ।

पुन पृ० १३० पक्ति २९ मे मनुस्मृति के प्रमाण से लिखा है कि "मुक्ति रूप अक्षय आनन्द का देने, वाला सन्यास धर्म है"

पुन पृष्ठ २३९ पक्ति १४ मे गीता के प्रमाण से लिखा है कि "मुक्ति वही है कि जिससे निवृत्ति होकर पुन ससार मे कभी नहीं आता (उत्तर) यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है ।

पुन पृष्ठ ३३१ पक्ति २६ मे लिखा है कि "वेद शास्त्र विरुद्ध असत्य बात लिखना व्यास सदृश विद्वानो का काम नहीं किंतु यह काम विरोधी स्वार्थी अविद्वान लोगों का है" ।

पुन पृष्ठ ३३२ पक्ति १५ से लिखा है, कि "क्योंकि व्यास कहते हैं, पारवार की मध्य रेखा को अर्थात् ऋग्वेद के आरम्भ से लेकर अथर्व वेद के पार पर्य्यन्त् चारों वेद पढे थे—और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढाये भी थे ।"

फिर पृष्ठ ३५२ पक्ति १ मे लिखा है कि "व्यास मुनि ने शारीरिक सूत्रों मे सब ज्ञानकाण्ड यथानुकूल लिखा है" ।

अब न्यायी पुरुषो को पक्षपात रहित शुद्ध हृदय और विमल बुद्धि से

ध्यान पूर्वक विचारना चाहिये कि जब व्यास जी का चारो वेदके पूर्ण विद्वान होना और उनके शारीरिक सूत्रों मे सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखना स्वीकार किया है तो फिर व्यासकृत शारीरिक सूत्र के पूर्वोक्त वचन को वेद विरुद्ध ठहराना प्रत्यक्ष परस्पर विरोध है वा नहीं ।

इसके अतिरिक्त मनुस्मृति को भी "सत्यार्थ प्रकाश' मे वेदानुकूल स्वीकार किया है, और उसी के प्रमाण से मोक्ष को अक्षय माना है, फिर उसी को वेद विरुद्ध कह दिया भला कहो तो यही मनुस्मृति की वेदानुकूलता क्योंकर स्थित रही ।

और जब मोक्ष अक्षय है जैसा कि निश्चय में है तो फिर पृ० २४० पंक्ति १९ मे जो लिखा है कि महाकल्प के पश्चात मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आता है यह लिखना किस आधार पर है मालूम नहीं ? और इससे अक्षय शब्द का अर्थ तो सर्वथा नष्ट हो गया ।

पुन पृ० १३० पंक्ति ३० व पृ० १३१ पंक्ति १ में यह लिखा कि "संन्यास ग्रहण का अधिकार मुख्य करके ब्राह्मण का है" ।

इस पर हमारा यह प्रश्न है कि ब्राह्मण गुण कर्म वाला होगा कि जाति कर्म वाला यह स्पष्ट और शुद्ध लिखना था ।

पुन पृ० १३३ पंक्ति २० । २१ में निम्न लिखित आधा श्लोक मनु के नाम से लिखा ।

त्रिविधानिच रत्नानि विविक्तेपूपपादयेत् ॥

प्रथम तो यह पद मनुस्मृति मे किसी स्थान पर भी नहीं है उक्त पुस्तक आज कल घर घर में मिलता है और सब कोई उसको देख सकते हैं, दूसरे यह कितने आश्चर्य की बात है कि प्रथम बार के छपे पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" मे तो मनुस्मृति के लेखानुसार, सन्यासी को भिक्षा पात्र तथा वृक्ष मूल निवासी लिखा और अब नवीन पुस्तक में नवीन अर्द्ध श्लोक लिखकर यह सिद्ध किया कि "नाना प्रकार के धन रत्न सुवर्णादि सन्यासियो को देवे" इस स्थान पर स्वामी जी इतना लिखना भूल गये कि यह अर्द्ध श्लोक नवीन शुद्ध मनुस्मृति का है जिससे पाठक चक्कर मे आकर चकित होवे ।

पुन पृ० १३४ पंक्ति २७ । २८ मे एक चाणक्य नीति शास्त्र के श्लोकका अर्थ बदल कर विद्वान नाम सन्यासी का ही माना है क्या जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर उत्तम विद्या पढे वह विद्वान नहीं कहलाता ?

पुन. पृ० १३७ के प्रथम से ही आर्य्य कुल कमल दिवाकर श्रीमान राणा-साहिब उदयपुराधीश को पार्लियामेण्ट नियत करने की चाट लगाने की चाह में जो कुछ मन में आया अन्धाधुन्ध लिख मारा है।

पुन पृ० १३८ पंक्ति १३ । १४ । १५ मे ऋग्वेद का मंत्र लिख उसके अर्थ में लिखा है कि ईश्वर उपदेश कर्ता है कि हे राज पुरुषो तुम्हारे आयुध तोप बन्दूक, धनुष, बाण तलवार आदि २ ।

इस विषय में पूर्वार्द्ध भाग में यथार्थ और सविस्तार लेख लिख कर हमने यह स्वत सिद्ध कर दिया है कि स्वामी जी का किया अर्थ यथार्थ नहीं है इस लिये अब इस स्थान पर विशेष लिखना व्यर्थ समझते हैं ।

पुन पृ० १४८ पंक्ति ४ से लिखा है कि "आप सर्वदा राज कार्य्य में तत्पर रहें अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राज कार्य में प्रवृत्त रहना और कोई राज काम बिगड़ने न देना।

धन्य महाराज । बड़ा ही सुन्दर उपदेश है नवयुवक राजकुमारों को कर्म्म रहित करने का इससे उत्तम और क्या उपदेश होगा परन्तु ध्यान रहे कि श्रीमान् महाराणा साहिब सज्जनसिंह पर इस लेख का कुछभी प्रभाव न हुआ क्योंकि प्रथ-मतो वह स्वत ही जानकार और कर्मेष्ठी पुरुष थे । दूसरे उनके राज प्रबन्ध मे ऐसे २ उत्तम कर्मचारी गण हैं जो सदैव काल महामान्य महाराणा जी को शुद्ध सना-तन कुलाम्नाय धर्म्म पर चलने का परामर्श देते रहते थे ।

पुन पृ० १६५ पर राजा लोगों को न्याय करने की रीति मनुस्मृति के लेखा-नुसार वर्णन की किंतु यह न समझा कि कल्युग मे पराशर स्मृतिका बचन प्रमाण विशेष है और इसमें उसमे अनेक बातो का भेदाभेद है।

पुन पृ० १८१ पंक्ति १६ मे यह प्रश्नोत्तर लिखा है कि (प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान है या नहीं ? (उत्तर) है परन्तु जैसा तुम सर्व शक्तिमान शब्द का अर्थ जानते हो वैसा नहीं ॥ इत्यादि ॥

पाठक वृन्द, ध्यान करना चाहिये कि जो सर्व शक्तिमान है उसको कोई क्योंकर बदल कर पृथक् शक्तिमान सिद्ध कर सक्ता है, जो अर्थ स्वामीजी ने इस सर्वशक्तिमान शब्द से सिद्ध किया है उससे तो ईश्वर की शक्ति नष्ट प्राय होता है, और इसके प्रतिकूल पृ० १९२ पंक्ति २१ मे लिख दिया कि जीव कर्म करने मे स्वतन्त्र है ।

पृ० ११ पंक्ति १९ मे "अग्नि" नाम लौकिक पदार्थ का कहा था उसके प्रतिकूल पृ० १८३ पंक्ति १७ मे "अग्नि" नाम ईश्वर का ही वाची कहा है और इसी प्रकार सम्पूर्ण पुस्तक में अनेक स्थान पर माना गया है ।

पुन पृ० १८६ पंक्ति १८ । १९ में यह लिखकर कि—

समाधिनिर्धूतमलस्यचेतसो निवेशितस्यात्मनियत्सुखंलभेत ।
नशक्यते वर्णयितुं गिरोतदा स्वयन्तदन्तकरणेन गृह्यते ॥१॥

पंक्ति २० में लिखा है कि यह उपनिषद का वचन है परन्तु यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा झूठ पूर्वोक्त वचन दशो उपनिषधों में कहीं भी नहीं है ।

पुन पृ० १९३ पंक्ति १८ में लिखा है कि "ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता का काम है ।

न्यायवानों को विचार करना चाहिये, कि ईश्वर त्रिकाल दर्शी नहीं तो और कौन है ?

पुन पृ० १९५ पंक्ति १७ मे लिखा है कि—

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मान वेद यस्यात्मा
शरीरम् । आत्मनोन्तरोयमयति सत आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥१॥

इसको स्वामी जी लिखते हैं कि यह "वृहदारण्यक" का वचन है महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं कि मैत्रेयी जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव मे स्थिर और जीवात्मा से भिन्न है ॥ इत्यादि ॥

प्यारे पाठकगण ! यह लिखना भी स्वामी जी का सत्य नहीं है, क्योंकि पूर्वोक्त श्रुति वृहदारण्यक की नहीं किन्तु शतपथ की है ।

पुन पृ० १९७ पंक्ति २५ से लिखा है कि—

जीवेशौचविशुद्धाचिद्विभेदस्तुतयोर्द्वयोः ।
अविद्यातच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥ १ ॥
कार्योपाधिरयंजीवः कारणोपाधिरीश्वरः ।
कार्य्यकारणताहित्वापूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥ २ ॥

स्वामी जी लिखते हैं कि ये सत्तेप शारीरिक भाष्य में कारिका है परन्तु यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा झूठ है क्योंकि पूर्वोक्त कारिका सत्तेप शारीरिक और शारीरक भाष्य में कहीं भी नहीं है।

पुन पृ० २०४ पंक्ति २३ में लिखा है कि "जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस २ ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रका-शित नहीं किया था" दर्शन साकार वस्तु का होता है शब्दार्थ निराकार है, मालूम नहीं यह क्या गोल माल है।

पुन पृ० २०५ पंक्ति १६ में लिखा है (प्रश्न) वेद की कितनी शाखा हैं (उत्तर) एकसौ सत्ताईस।

प्रथम जब ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका छपी उसमें बिना किसी प्रमाण के ११२७ ही वेद की शाखा वर्णन की थी और वेदाङ्ग प्रकाश के पंचम भाग 'नामक' के पृ० ३ पर लम्बा चौड़ा लेख लिख वेद की ११३१ शाखा सिद्ध की अब प्रश्न यह है कि इनमें से किसको प्रमाण किया जाय? इसका उत्तर यदि कोई इस प्रकार देवे कि पिछले दोनों को छोड़कर नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" को ही सत्य मानो, सो ठीक यही सही अब इसी के पृ० ६०१ पं० २५ में वेदों की ११२७ शाखा लिखी है सो क्या यह पूर्वापर विरोध नहीं है?

पुन पृ० २०९ पं० २६ में जो यह श्रुति लिखी है "तदैक्षत बहु स्यां प्र-जायेयेति" स्वामी जी इसको तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन लिखते हैं सो सर्वथा झूठ है क्योंकि उक्त श्रुति छान्दोग्य की है।

पुन पृ० २११ पं० २६ से लिखा है कि "सोऽकामयत इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार हो जाऊं संकल्प मात्र से सब जगद्रूप बन गया"। इसके प्रतिकूल अनेक स्थानों पर ईश्वर को इच्छा कामना रहित सिद्धकिया

है, देखो पृ० २१७ प० ५ । ६ आदि० ।

पुन पृ० २२४ पं० ७ से प्रश्नोत्तर लिखा है कि—

(प्रश्न) मनुष्यो की आदि सृष्टि किस स्थल पर हुई ।

(उत्तर) त्रिविष्ट अर्थात् जिसको तिब्बत कहते हैं ।

(प्रश्न) फिर वे यहाँ से कैसे आए ?

(उत्तर) जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर उनमे सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल मे उत्तम इस भूमि के खंड को जान कर यहा आकर बसे इसीसे इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ ।

इसके प्रतिकूल पृ० ६०४ प० २३ से लिखा है कि "आर्यावर्त" देश इस भूमि का नाम इस लिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय दक्षिण मे विन्ध्याचल पश्चिममे अटक और पूर्व में ब्रह्म पुत्रा नदी है इन चारों के बीच में जितना देश है उसको "आर्यावर्त" कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं ।

अब विचारवान् पुरुषो को विचारना चाहिए कि एक ग्रन्थ और अनेक प्रकार की सम्मति फिर किस पर विश्वास किया जाय ।

पुन दूसरी बार की छपी संस्कारविधिके पृ० १२९ में लिखा कि पृथ्वी स्थिर है और नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० २२८ पं० २९ में लिखदिया घूमती है ।

पुन पृ० २२९ प० १ से लिखा है कि—

(प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथ्वी नहीं घूमती दूसरे कहते हैं कि पृथ्वी घूमती सूर्य नहीं घूमता इसमें सत्य क्या माना जाय ?

(उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि—

अयंगौपृश्निरक्रमी दस दन्मातरंपुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ।

यजु० अ० ३ मं० ६॥

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारो ओर घूम जाता है इस लिए भूमि घूमा करती है ।

पाठकवृन्द ! स्वामीजी महाराजने पूर्वोक्त मन्त्र के अर्थ को ऐसा भ्रष्ट किया कि जो संस्कृत में सारस्वत मात्र को भी जानता होगा तो वह स्वामी जी के इस छल से वञ्चित न रहेगा, देखिये अर्थ बदला सो बदला अनेक शब्द भी छोड़ दिये, भला कहो तो सही उक्त मन्त्र में 'भानन्पुर पितर, स्व' यह जो लिखा है इसका अर्थ क्यों छोड़दिया, इस विषय में विस्तार सहित दूसरे भागमें लिखा जायगा।

पुन स्वामी जी पृ० २३६ मे लिखते हैं कि जीव मुक्त होकर सुखको प्राप्त होता है।

और मग्न रहता है और जीव की मुक्ति यह है कि दुखों से छूट के आनन्द स्वरूप सर्व व्यापक अनन्त परमेश्वर मे जीव का आनन्द में रहना, इसमें हमको शंका होती है कि वह मुक्त जीव ईश्वरकी ज्योति में मिल जाता है या उसीमें व्याप्त रहता है एक देश में या सर्व देश में मिल जाता है, और निराकार ईश्वर मे साकार जीव किस तरह मिल सकता है। और मुक्ति का लक्षण लिखा है सो भी हमारी समझ में ठीक नहीं है क्योंकि सुख दु ख दोनों ही कर्माधीन हैं और ईश्वर भी जीव को सुख दु ख कर्माधीन देता है जब ये जीव दु ख देने वाले कर्म से छूट गया तथापि आपके कथन से सुख देने वाले कर्मों से नहीं छूटा तो मुक्ति किस तरह समझी जाय यदि कहोगे कि सर्व कर्म से छूट के अतीन्द्रिय सुख भोगता है तो सम्पूर्ण कर्म से रहित सिद्ध हुआ पश्चात् संसार में किस तरह आ सकता है और ईश्वर किस तरह ला सकता है क्योंकि जीव को ईश्वर कर्म के बिना सुख दु ख नहीं दे सकता और मुक्ति होने के बाद जीव के कोई कर्म बाकी नहीं रहते न उस स्थान पर नवीन कर्म का बन्ध, क्योंकि मोक्ष में जीव निष्काम और अशरीर है तब कर्म बन्ध के बिना जीव को ईश्वर मुक्तिसे संसार में सुख दु ख देने के लिए क्यों लाया? बिना अपराधके कोई सामान्य राजा भी किसी को दंड नहीं देता तो फिर जिसका नाम दयालु न्यायकारी ईश्वर है वह ऐसा अन्याय क्योंकर करे?

पुन पृ० २५९ प० ८ मे लिखा है "ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म और मुण्डन होजाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य डाढी मूंछ और शिर के बाल सदा मुडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुन कभी न रखना और जो शीत

प्रधान देश हो तो काम चार हैं चाहें जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढी मूछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्टभी बालों में रहजाता है।

अब हम पूछते हैं क्या पूर्वोक्त लेख में गोलमाल के व्यतिरिक्त किसी कार्य की सिद्धी भी है, और उसका कौनसा वचन मानने योग्य है।

पुन पृ० २१३ पुराने "सत्यार्थप्रकाश" तथा नवीन के पृ० २६४ प० ३० तथा पृ० २७० प० १९ । २० । २१ । २२ में यह आज्ञा की है कि चारों वर्ण के प्राणियों का एक ही स्थान पर साथ भोजन होना चाहिये चौका धोती छूआछूत व्यर्थ है" परन्तु इस लेख में किसी वेद शास्त्र का प्रमाण नहीं दिया।

पुन पृ० २६६ प० २८ में यह वचन लिख कर "वर्जयेन्मधुमांसं च" मनु० ।

इस का अर्थ यह लिखा है कि "जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गाजा, भंग, अफीम आदि" प्यारे पाठक गण पूर्वोक्त पद का स्पष्ट अर्थ यह है कि शहद और मास त्यागने, देखो गाजा, भाग, अफीम तो स्वामीजी ने शहद का अर्थ लगाया परतु मास का अर्थ कहा गया? इस की बनावट कुछ अवश्य करनी चाहिये थी।

पुन पृ० २७८ प० १४ मे स्वामीजी "मेक्समूलर साहिब" के विषय में लिखते हैं कि वह हमारे देश की सुनी सुनाई टूटी फूटी संस्कृत जानता है और जर्मन देश मे संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करना किसी को नहीं आता, यह वचन, स्वामीजी का मान के उदय और द्वेष के कारण से है।

प्रथम बार के छपे "सत्यार्थप्रकाश" मे अनेक ठिकानों पर मांस खाने की और होम करने की आज्ञा दी अब नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० २८७ प० ५ में लिखते हैं कि मांस भक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्री गमन करने आदि में दोष नहीं है यह कहना छोकड़ा पन है क्योंकि बिना प्राणियों के पीडा दिये मास प्राप्त नहीं होता और बिना अपराध के पीडा देना धर्म्म का काम नहीं। प्रथम बार की छपी "आर्य्याभिविनय" के पृ० ३७ पर लिखा है कि हे ईश्वर (मनसावाचा कर्मणा, अज्ञान से जो पाप हम से हुआ उस को क्षमा कर इस के प्रतिकूल नवीन 'स

स्यार्थप्रकाश' पृ० ३२६ प० ५ में लिखदिया कि 'पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता, बिना भोगे अथवा नहीं कटते' बस जब पाप बिना भोगे कटते या छूटते नहीं फिर तो प्रार्थना करनी सर्वथा व्यर्थ है ।

पुन पृ० ३३८ प० ६ में भागवत के प्रमाण से लिखा है कि प्रहलाद के बाप हिरण्यकश्यपने 'एक लोहे का खंभा आगी मे तपा के उसमे बोला जो तेरा इष्ट देव राम सच्चा हो तो तू इस को पकड़ने से न जलेगा प्रह्लाद पकडन को चला मन में शका हुई जलने से बचूगा वा नहीं ? नारायण ने उस खभे पर छोटी २ चीटियो की पक्ति चलाई' ।

यह लिखना स्वामीजी का सर्वथा झूठ है भागवत मे लोह का खम्भा और उस पर चीटियों का चलना कहीं भी नहीं लिखा ।

पुन पृ० ३३८ पक्ति २८ में 'रथेनवायुवेगेनजगामगोकुलप्रति' यह पद भागवत का बतला कर उस पर मन मानी टीका की है परतु हमको आश्चर्य इस बात का है कि यह वचन स्वकपोल कल्पित बनाकर स्वामीजी को क्या लाभ हुआ वर्तमान समय मे भागवत घर २ मिलता है, और उक्त पुस्तक म उक्त पद कहीं भी नहीं है ।

पुन पृ० ३४३ पक्ति १६ पर "आद्यस्यार्द्रमिन्दुर्भिर्वुभुमिभा" इस पद को लिख कर स्वामीजी यह वचन सिद्धान्त शिरोमणि का बतलाते हैं, परतु सिद्धात शिरोमणि मे यह पद कहीं भी नहीं है ।

" सम्वत् १९३३ की छपी संस्कारविधि पृ० १५९ पक्ति २४ में यह मत्र

नमः शंभवाय च मयोभवायच नमः शंकरायच

मयस्करायच नमः शिवायच शिव तरायच ॥

उक्त मन्त्र में शिव को ईश्वर मान कर नमस्कार किया और इस के प्रतिकूल नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० ३७५ म "ॐनमः शिवाय" इस को बुरा लिख दिया ।

जिन शिष्य लोगों की सहायता से स्वामी जी ने आर्यसमाज लाहौर और अमृतसर में स्थापित होकर सम्पूर्ण पञ्जाब म उत्तम फल पाया उनके प्रथम गुरु प्रसिद्ध श्री नानक साहब को नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० ३६२ प० १० मे मलीन

शब्दों में लिख कर दम्भी तक बतलाया सो नेकी का बदला यही था।

पुन पृ० ३९६ पंक्ति ९ में पृ० ४०० तक स्वामीजी ने एक "आर्य्यावर्त देशीय "राज वंशावली" लिखी है उसकी समीक्षा आगे चलकर दूसरे भाग में लिखी जयगी।

अब तो पृ० ४०१ से पृ० ४७० तक (द्वादश समुल्लास) के अतिरिक्त पृ० १ से लेकर पृ० ६०८ तक जो कुछ जैन धर्म्म के विषय में स्वामीजी ने लिखा है इसका उत्तर लिखा जाता है, इसके पीछे पृ० ४७१ से लेकर पृ० ६०८ तककी समीक्षा लिख यह लेख पूरा करेंगे।

इस स्थान पर यह लिख देना भी उचित है कि नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृ० ४ पंक्ति १७ से पंक्ति २९ तक स्वामी जी ने सर्व दर्शनादि व्यर्थ पुस्तकों द्वारा जो गडबडाध्याय मचाया है सो सर्वथा व्यर्थ ही समझना चाहिये यह लेख यह है।

यद्यपि जो १२ (बारहवें) समुल्लास में चार्वाक का मत जो इस समय क्षीणाऽस्तसा है और यह चार्वाक बौद्ध जैन से बहुत सम्बन्ध अनीश्वर वादादि में रखता है यह चार्वाक सबसे बड़ा नास्तिक है उसकी चेष्टा का रोकना अवश्य है क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसार मे बहुत से अनर्थ प्रवृत्त हो जाय चार्वाक का जो मत है वह बौद्ध और जैन का मत है यह भी १२ वें समुल्लास में संक्षेप से लिखा गया है, और बौद्धों तथा जैनियों का भी चार्वाक के मत के साथ मेल है और कुछ थोडा सा विरोध भी है, और जैन भी बहुत से अंश में चार्वाक और बौद्धों के साथ मेल रखते हैं और थोडी सी बातों मे भेद है। इस लिये जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है यह भेद बारहवें समुल्लास मे दिखलाया है यथायोग वहीं समझलेना जो इसका भिन्न है सो २ बारहवें समुल्लास में दिख लाया है बौद्ध और जैन मत का विषय भी लिखा है इनमे से बौद्धो के दीप वंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्धमतसंग्रह सर्वदर्शनसंग्रह में दिखलाया है, उसमें से यहां लिखा है।

पाठक वृन्द अब हम नवीन "सत्यार्थप्रकाश" की भूमिका से लेकर अंत तक फिर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहते हैं, परन्तु इसमें केवल उसी लेख पर ध्यान दिलाया चाहते हैं जो "जैनधर्म्म से" सम्बन्ध रखता है।

छोटे २ ग्रामों के रहने वाले बहुधा सीधे सादे अनेक मनुष्य अपने ग्रामकी चौपाड़ में बैठकर उसी ग्राम के किसी मुखिया मनुष्य से जब कभी यह प्रश्न करें कि आज कल हमारे देश में राज किसका है ? और सबमे बड़ा हाकिम कौन है ? तब वह मुखिया मनुष्य यद्यपि बिल्कुल चाहे कुछ भी न जानता हो परन्तु मुखिया होने के अभिमान में आनकर उत्तर देता है कि सम्पूर्ण हिन्दुस्तान और लन्दन में कम्पनी साहिब का राज है और कम्पनी साहिब एक स्त्री है जो लन्दन ही में रहती है, उसके दो पुत्र हिन्दुस्तान में रहते हैं एक बड़ा जंगी लाठ दूसरा छोटा मुल्की लाठ है, बड़ा कलकत्ते छोटा शिमलामें रहता है, जंगी लाठ फौज सिपाह का बन्दोबस्त रखता है, मुल्की लाठ धरती का रुपया जिमीदारों से छोटे हाकिमों द्वारा वसूल कराकर लन्दन भेजता रहता है, ॥ इत्यादि ॥

इसी प्रकार नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' पृ० ४ प० २९ से आगे का निम्न लिखित लेख जो स्वामीजीने जैन धर्म्म विषय में लिखा सो जानना लेख यह है, ।

जैनियों के निम्न लिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं उन में से ४ चार मूल सूत्र जैसे १ आवश्यक सूत्र २ विशेषावश्यक सूत्र ३ दशवैं कालिक सूत्र और ४ पाक्षिक सूत्र। ११ ग्यारह अङ्ग, जैसे १ आचाराङ्ग सूत्र, २ सुगडाँग सूत्र, ३ थाणाग सूत्र ४ समवायाग सूत्र, ५ भगवती सूत्र, ६ ज्ञाता धर्म कथासूत्र ७ उपासक दशासूत्र ८ अन्तगडदशा सूत्र, ९ अनुत्तरोववाई सूत्र १० विपाक सूत्र, और ११ प्रश्न व्याकरण सूत्र, १२ बाहर उपाग, जैसे १ उपवाई सूत्र २ रायपसैनी सू० ३ जीवाभिगम सूत्र, ४ पन्नवणा सू० ५ जम्बूद्वीप पन्नति सूत्र ६ चन्दपन्नति सूत्र ७ सूरपन्नति सू० ८ निरियावली सूत्र ९ कप्पिया सू० १० कपवडींसया सू० ११ पुप्फिया सूत्र १२ पुप्फ चूलिया सू० । पांच कल्प सू० जैसे १ उत्तराध्यन सू० २ निशीथ सू० ३ कल्प सू० ४ व्यवहार सू० और ५ जीतकल्प सू० । ६ छः छेद, जैसे १ महा निशीथ् बृहद्वाचना सू० २ महानिशीथ् लघुवाचना सू० ३ मध्यम वाचना सू०४ पिंडनिरुक्ति सू० ५ औघनिरुक्त सू० ६ पर्य्यूषणा सू० । १० दश पयन्न सू० जैसे १ चतुसरण सू० २ पचखाण सू० ३ तदुल वैयालिक सू० ४ भक्ति परिज्ञान सू० ५ महा प्रत्याख्यानसू० ६ चन्दाविजय सू० ७ गणी विजय सू० ८ मरण समाधि सू० ९ देवेन्द्रस्तन सू० १० ससार सू० तथा नन्दी सू० योगोद्धारा

सू० भी प्रमाणिक मानते हैं । ५ पञ्चाङ्ग जैसे १ पूर्व सत ग्रंथों की टीका २ निरु क्ति ३ चरणी ४ भाष्य ये चार अवयव और सब मूल मिल के पचांग कहाते हैं इन मे ढूंढिया अवयवों को नहीं मानते और इनमे भिन्न भी अनेक ग्रथ हैं कि जिनको जैनी लोग मानते हैं । इनका विशेष मत पर विचार १२ बारहवें समुल्लासम देख लीजिये । जैनियो के ग्रन्थों मे लाखों पुनरुक्त दोष हैं और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मत वाले के हाथ मे हो वा छपा हो तो कोई २ उस ग्रंथ को अप्रमाण कहते हैं यह बात उनकी मिथ्या है क्योंकि जिसको कोई माने कोई नहीं इससे वह ग्रथ जैन मतस बाहर नहीं हो सकता । हा जिसको कोई न माने, और न कभी किसी जैनीने माना हो तब तो अप्रमाण हो सकता है परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो इस लिये जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा उस ग्रन्थस्थ विषयक खण्डन मण्डन भी उसी के लिये समझा जाता है । परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थ को मानते जानते हों तो भी सभा वा सम्वाद में बदल जाते हैं इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते है दूसरे मतस्थ को न देते, न सुनाते और न पढाते इस लिये कि उनमें ऐसी २ असम्भव बाते भरी है जिनका कोई भी उत्तर जैनियों मे से नहीं दे सकता, झूठ बात को छोड देना ही उत्तम है ।

पाठक वृन्द पूर्वोक्त लेख से स्वामी जी का अज्ञान पन ही नहीं किंतु धूर्त पन भी सिद्ध होता है; और जो कुछ स्वामी जी ने लिखा सब मिथ्या और व्यर्थ ही है; लालबुझक्कड़ की तरह गप्प शप्प सुनी सुनाई बातो पर मनमानी टीका लिख निज विद्वान बनने को उद्यमी हुये थे परन्तु इस लिखने से तो उलटी उनकी अज्ञानता सिद्ध होती है, यद्यपि जिन जिन सूत्र सिद्धान्तो का नाम स्वामी जी ने पूर्वोक्त लेख मे लिखा वह जैन सिद्धान्त के कोई २ ग्रन्थ अवश्य हैं परन्तु इतना लिख देने से स्वामी जी जैन धर्म्म के जानकार नहीं कहला सकते जब कि उनके लेख में अनेक स्वकपोल कल्पित और झूठे नाम जैन शास्त्रों के देखने में आते हैं, और खयाल करन की बात है कि जैसे मुसलमान लोगों के धर्म्म ग्रन्थ 'कुरान' अंग्रेजों के धर्म्म ग्रन्थो का नाम बायबिल इजील तौरैत है, जिनको बहुधा मनुष्य भले प्रकार जानते हैं, परन्तु अर्बी फारसी अंग्रेजी के पढ़े बिना उन पुस्तकोंके नाम

ान सुनकर कोई उनपर तर्क वा समीक्षा नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना प्राकृत विद्या के पूर्ण व्याकरणी पंडित हुये जैन सिद्धान्त के गूढ़ाशय को जान लेना स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे देह धारियों की बुद्धि से पृथक् था, और जो पत्र स्वामी जी ने मेरठ से ठाकुरदास को लिखवाया उसमें सिद्ध किया था कि मैं प्राकृत विद्या नहीं जानता। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी जी ने नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" की भूमिका पृष्ठ ४ पंक्ति २९ से पृ० ५, पंक्ति २८ तक जो लेख किया वह व्यर्थ झूठ स्वकपोल कल्पित गढ़ा लिया है।

पुनः पृ० ६ पंक्ति १४ से स्वामी जी लिखते हैं कि—

मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल, और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूँ।

प्यारे पाठक गण दुक न्याय कहना पूर्वोक्त वचन का स्वामी जी ने कहां तक पालन किया और किस किस धर्म पुस्तक से क्या क्या सार ग्रहण किया? हमको तो "सत्यार्थ प्रकाश" के पृ० २८३ से पृ० ६०८ तक केवल दूसरों का खंडन और झूठी निन्दा ही दिखलाई देती है।

मुरादाबाद के जगन्नाथदास निज लिखित पुस्तक "दयानन्द पराजय" के पृ० ३ पंक्ति १८ में लिखते हैं कि "दयानन्द जी का गुप्त हाल दिखलाता हूँ जिससे सम्पूर्ण साधारण लोगों पर इनका छल कपट और अविद्वान होना सम्यक् प्रकट हो जाय"।

पाठक वृन्द जगन्नाथ जी को आदि लेकर जिन जिन महाशयों ने स्वामी जी के लेखों पर खंडन मंडन लिखा वे लोग चाहे जिन शब्दों में लिखें परन्तु हम तो जो कुछ लिख रहे हैं, और आगे लिखेंगे उसमें स्वामी जी को कोई भी शब्द अनुचित नहीं लिखेंगे जो कुछ लिखा जायगा उनके ग्रन्थों की रचना का ही खंडन मंडन होगा, इस लिये आशा है कि इस पर दयानन्दीगण भी कुछ बुरा नहीं मानेंगे।

"सत्यार्थ प्रकाश" पृ० ३१ पर स्वामी जी ने अपने शिष्यों के समझाने के लिये वेदी, प्रोक्षणीपात्र, प्रणीता पात्र, आज्यस्थाली, चमसा, इन पांचों की मूर्ति

बनाकर दिखलाई है तथा पृष्ठ ९१ में पुत्र कन्या के विवाह सम्बन्ध के लिये पं माफ की मूर्ति को काम में लाने की आज्ञा दी तो क्या देव मूर्ति से भाव शुद्ध और सानुकूल वस्तु के ज्ञान और स्मरण होने में संदेह करना वा बुरा कहना पक्षपात तथा हठ नहीं तो और क्या समझा जाय ?

पुन पृ० ४७ पंक्ति ४ मे लिखा है ।

१ २ ३ ४ ५
तत्राहिंसासत्या स्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहायमाः । योग सूत्र०

भावार्थ हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री, परिग्रह, इनका त्याग करे ।

पाठक महाशयो जैन शास्त्र मे यही पाच बात मुख्य हैं, और इनही पंच महाव्रत या अणुव्रत कहते हैं, अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह इन सर्वथा त्याग हो तो महाव्रत है सो मुनिका धर्म्म और थोडा थोडा प्रमाण सो त्याग सो अणुव्रत श्रावक का धर्म्म है, हमको आश्चर्य्य और खेद दोनो स्वा जी की लिखावट पर होते हैं, सो आश्चर्य्य तो इस बात का है कि जिस धर्म्म के अनेक सूत्र सिद्धान्तों का नाम स्वामी जी अपने पुस्तक की भूमिका लिखते हैं उनको इतना भी मालूम नहीं कि जैन धर्म्म का मूलतत्व क्या है, और खेद इस बात का है कि बहुधा विषयों को स्वामीजी जान बूझकर भी पक्षपाता प्रतिकूल ही कहते हैं ।

पुन पृ० १३० प० १० मे स्वामी जी दश लक्षणयुक्त धर्म की महि लिखते हैं, और जैन धर्म के समान इस लक्षण धर्म की महिमा किसी धर्म में नहीं फिर स्वामीजी को इस धर्म की निन्दा करते कुछ लज्जा उत्पन्न नहीं होती ?

पुन पृ० २३० प० ७ मे स्वामी जी ने लिखा कि "जैनी कहते हैं कि पृथ्वी घूमती नहीं किंतु नीचे २ चली जाती है" यह लिखना स्वामीजी का सर्वथ झूठ और मनघडन्त है जैन के किसी भी शास्त्र में यह नहीं लिखा कि पृथ्वी नीचे नीचे चली जाती है ।

पुन पृ० २४५ प० ६ में लिखा है कि "जैनी लोग मोक्ष शिला, शिवपुर में जा के चुपचाप बैठे रहना, मानते हैं" ।

जैनियों के इस उपरोक्त लिखने को स्वामी दयानन्द सरस्वती मठ समझते

हैं और आप एक विचित्र प्रकार की नई मोक्ष वर्णन करते हैं जिसको आज तक न किसी विद्वान् ने कथन ही किया और न किसी ने प्रमाणिक ही माना अब हम दयानन्द की मोक्ष पर अपना मत प्रकट करते हैं।

स्वामी जी ने अपनी वेदभाष्यभूमिका पृ० १८१ से जो मुक्ति का स्वरूप लिखा है उसमें पतजली के योग शास्त्र के ग्यारहवें सूत्र का गौतम रचित न्यायशास्त्र के तीन सूत्रों का व्यासकृत वेदान्त सूत्रादि ग्रन्थों का शतपथ ब्राह्मण का, ऋग्वेद के एक मन्त्र का, यजुर्वेद के एक मन्त्र का प्रमाण लिखा है।

अब बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये कि पतजली ने जो मुक्ति स्वरूप लिखा है वह ऋग्वेद के पूर्वोक्त मन्त्र से सर्वथा प्रतिकूल है, और गौतम जी की कही मुक्ति भी वेद मन्त्रों से भिन्न है, क्योंकि गौतम जी मुक्ति में ज्ञान बिलकुल नहीं मानते पाषाण तुल्य स्वपरमान रहित और सुख दु:ख रहित मुक्ति कहते हैं, और आत्मा को सर्व व्यापी मानते हैं, और भेद वादी है क्योंकि आत्मा सत्यामें अनन्द मानते हैं, और स्वामी जी अपनी वेदोक्त मुक्ति में लिखते हैं कि उस मोक्षप्राप्त मनुष्य को पूर्व मुक्त लोग अपने निकट आनन्द में रख लेते हैं और फिर वे परस्पर अपने ज्ञान मे एक दूसरे का प्रीति पूर्वक देखते हैं और मिलते हैं तथा विद्वान् लोग मोक्ष को प्राप्त होकर सदा आनन्द मे रहते हैं, अब सोचना चाहिये कि गौतम की मुक्ति मे तो मुक्तात्मा न कहीं जाता है न कहीं आता है क्योंकि वह सर्व व्यापी है, सुख आनन्द से रहित होता है, स्वामी जी कहते हैं कि जब नया जीव मोक्ष में आता है उसको पहिले के मोक्ष में गये हुये जीव अपने निकट रख लेते हैं। व्यास जी के पिता जो बादरी आचार्य थे उनका मुक्ति विषय में ऐसा मत है कि जब जीव मुक्त दशा को प्राप्त होता है तब वह शुद्ध मन से परमेश्वर के साथ परमानन्द मोक्ष मे रहता है और इन दोनों से भिन्न इन्द्रियादि पदार्थों का अभाव हो जाता है। व्यास जी के मुख्य शिष्य जैमिनी का यह मत है कि जैसे मोक्ष मे मन रहता है वैसे ही शुद्ध सकल्प मय शरीर तथा प्राणादि और इन्द्रियों की शुद्ध शक्ति भी बराबर बनी रहती है, मुक्त जीव सकल्प मात्र से ही शीघ्र छोड़ भी देते हैं और शुद्ध ज्ञान सदा बना रहता है, व्यासजी का मुक्ति विषय में यह मत है कि मुक्ति में भाव और अभाव दोनों ही बने रहते हैं, अर्थात् क्लेश अज्ञान और अशुद्धि आदि दोषों का सर्वथा

अभाव हो जाता है और परमानन्द ज्ञान शुद्धता आदि सब सत्य गुणों का भाव बना रहता है । इत्यादि वेदान्त शास्त्र के बचन हैं ।

इसी प्रकार स्वामी जी ने जिस जिस महात्मा के बचनो का ग्रहण किया उस उसका सिद्धान्त एक दूसरे के प्रतिकूल है, और स्वामीजी का सिद्धान्त इन सब के प्रतिकूल है । फिर जैन की मोक्ष पर तर्क करना बालचेष्टावत् व्यर्थ नहीं तो और क्या समझा जाय इस विषय में विस्तार सहित दूसरे भाग में लिखा जायगा ।

पुन पृ० २७१ पं० १६ मे स्वामी जी लिखते हैं कि प्रथम समुल्लास में आर्यावर्तीय मत मतान्तर, दूसरे मे जैनियो के, तीसरे में ईसाइयो के, और चौथे में मुसलमानों के मतमतान्तरों के खंडन मण्डन के विषय मे लिखेंगे । तथा पृ० २७३ प० ८ में लिखा है कि वेद विरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी सब मतों के मूल हैं वे क्रम से एक के पीछे दूसरा तीसरा चौथा चला है ।

पाठकवृन्द ! यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा व्यर्थ और झूठ है, मनुष्य मात्र का यह स्वाभाविक धर्म है कि जिस विषय को भले प्रकार जानने की सामर्थ्य रखता है, खंडन मंडन भी उसी का कर सकता है, स्वामी जी केवल काम चलाऊ संस्कृत के अतिरिक्त, प्राकृत, अर्बी, अंग्रेजी का एक अक्षर तक नहीं जानते और उनको यह भी मालूम नहीं कि सत्य सनातन आदि धर्म कौन है, फिर वे खंडन मंडन क्योंकर कर सकते हैं, जिस मनुष्य ने बम्बई व कलकत्ता आंखो से न देखा हो वह उसकी गलियों का अन्य मनुष्योंके भरोसे वर्णन करके अपने आपको ज्ञाता सिद्ध किया चाहे तो सिवाय उपहास्य के और कोई फल उसको नहीं मिलता है ।

पुन पृ० २८१ प० २६ में स्वामीजीने ईर्षा और द्वेष से जैनियों को मुसलमान ईसाइयो के साथ मिलादिया यह ठाकुर दास के पत्र व्यवहार से चिढ़ने का फल है ।

पुन पृ० २८७ प० ९ में लिखा है कि वेदादि शास्त्रों का निन्दक बौद्ध व जैन मत प्रचलित हुआ है, इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी जी को ठाकुरदास ने और श्री कनैर सागर जी ने ऐसा जलाया है कि उनको जैन धर्म को बुरा कहते कहते शान्ति नहीं होती ।

पुन पृ० २८८ प० १ से ही लिखा है, कि—

जैनों ने भी और प्रकार की पोप लीला बहुत है सो १२ वें समुल्लास में लिखेंगे बहुतों ने उनका मत स्वीकार किया परन्तु कितनेक जो पर्वत काशी, कन्नौज, पश्चिम, दक्षिण देश वाले थे उन्होंने जैनों का मत स्वीकार नहीं किया था वे जैन वेद का अर्थ न जान कर बाहर की पोप लीला भ्रान्ति से वेदों में ही मान कर वेदों की भी निन्दा करने लगे । उसके पठन पाठन यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्यादि के नियमों को भी नाश किया, जहाँ जितने पुस्तक वेदादि के पाये नष्ट किए आर्यों पर बहुत सी राजसत्ता भी चलाई दुःख दिया जब उनको भय शंका न रही तब अपने मत वाले गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वेद मार्गियों का अपमान और पक्षपात से दण्ड भी देने लगे और आप सुख आराम और घमण्ड में आ फूलकर फिरने लगे ऋषभ देव से ले के महावीर पर्यन्त अपने तीर्थंकरों की बड़ी २ मूर्तियां बनाकर पूजा करने लगे अर्थात् पाषाणादि मूर्तिपूजा की जड़ जैनियों से प्रचलित हुई । परमेश्वर का मानना न्यून हुआ पाषाणादि मूर्तिपूजा में लगे, ऐसा तीन सौ वर्ष पर्यंत आर्यावर्त में जैनों का राज्य रहा प्रायः वेदार्थ ज्ञान आदि से शून्य होगये थे, इस बात को अनुमान से अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुये होंगे ।

प्यारे पाठकवृन्द ! स्वामी जी का पूर्वोक्त लेख बिना किसी प्रमाण के व्यर्थ और विद्वानों के मानने योग्य नहीं हमने न किसी पुस्तक में देखा और न किसी से सुना कि अमुक जैन राजा ने व साधु मुनिराज ने अमुक धर्म की अमुक पुस्तक नष्ट कराई । स्वामी जी की हठधर्मी का यह हाल है कि हमारे बार २ बौद्ध जैन को जुदा सिद्ध कर देने पर भी वह बौद्ध की बुराई को जैनियों के शिर धरने लग रहे हैं, सो यह विद्वानों का काम नहीं है ।

पुनः पृ० ३८८ पं० १६ में यह लिखा है कि—

बाईस सौ वर्ष हुये कि एक शंकराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे कि अहह ! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानिकी बात हुई है, इसको किसी प्रकार हटाना चाहिये शंकराचार्य जी शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु जैन मत के भी पुस्तकों को पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हटावें निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से यह लोग

इन्होंने ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये वहां उस समय सुधन्वा राजा था जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था वहां जा कर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियोंके भी ग्रन्थों को पढ़े हैं और जैन मत को मानते हो इस लिये आपको मैं कहता हूँ कि जैनियोंके पंडितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये इस प्रतिज्ञा पर जो हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार करले और आप भी जीतने वालेका मत स्वीकार कीजियेगा यद्यपि सुधन्वा राजा जैनमत में थे तथापि संस्कृत ग्रंथ पढ़ने से उनको बुद्धिमें कुछ विद्याका प्रकाश था इससे उनके मनमें अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी क्योंकि जो विद्वान होता है वह सत्याऽसत्य की परीक्षा करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देता है। जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान उपदेशक नहीं मिला था तब तक सन्देहमें थे कि इनमें कौनसा सत्य और कौनसा असत्य है जब शंकराचार्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽसत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियों के पंडितों को दूर दूर से बुलाकर सभा कराई उसमें शंकराचार्य्य का वेदमत और जैनियों का वेद विरुद्ध मत था अर्थात् शंकराचार्य्य का पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियों का खंडन और जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खंडन था शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ जैनियों का मत यह था कि सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं यह जगत् और जीव अनादि है इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता इससे विरुद्ध शंकराचार्य्य का मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है यह जगत् और जीव झूठा है क्योंकि उस परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया वही धारण और प्रलय कर्त्ता है और यह जीव और प्रपञ्चस्वप्नवत् है परमेश्वर आप ही सब जगत् रूप होकर लीलाकर रहा है बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खंडित और शंकराचार्य्य का मत अखंडित रहा तब उन जैनियों के पंडित और सुधन्वा राजा ने वेद मत को स्वीकार कर लिया जैनमतको छोड़ दिया पुनः बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओं को लिखकर शंकराचार्य्य से शास्त्रार्थ कराया, परन्तु जैनियों का पराजय समय होने से पराजित होते गये, पश्चात् शंकराचार्य्य के सर्वत्र आर्य्यावर्त

देश में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने करादिया और उन की रक्षा के लिये साथ में नोकर चाकर भी रख दिये उसी समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन पाठन भी चला दश वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्य्यावर्त देश में घूमकर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया, परन्तु शंकराचार्य्य के समय जैन विध्वस अर्थात् जितनी मूर्तियाँ जैनियों की निकलती हैं वे शंकराचार्य्य के समय में टूटी थी और जो बिना टूटी निकलती हैं वे जैनियोंने भूमिमें गाड़ दी थीं कि तोड़ी न जायें वे अब तक कहीं २ भूमिमें से निकलती हैं शंकराचार्य्य के पूर्व शैवमत भी थोड़ासा प्रचलित था उसका भी खण्डन किया वाम मार्ग का खण्डन किया उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेश भक्ति भी थी जैनियों के मंदिर शंकराचार्य्य और सुधन्वाराजान नहीं तुड़वाये थे, क्योंकि उन में वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी जब वेदमत का स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करने का विचार करते ही थे कि इतने में दो जैन ऊपर से कथन मात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात कपटमुनि थे शंकराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे, उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उन की क्षुधा मन्द होगई पश्चात् शरीर में फोड़े फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया तब सब निरुत्साही होगये और जो विद्या का प्रचार होनेवाला था वह भी न होने पाया जो उन्होंने शारीरिकभाष्यादि बनाये थे उनका प्रचार शंकराचार्य्य के शिष्य करने लगे अर्थात जैनियों के खंडन के लिये ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन कीथी उस का उपदेश करने लगे दक्षिण में शृंगेरी पूर्व में भूगोवर्धन उत्तर में जोशी और द्वारका में सारदा मठ बांधकर शंकराचार्य्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान होकर आनन्द करने लगे क्योंकि शंकराचार्य्य के पश्चात् उन के शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी ।

प्यारे पाठकवृन्द जो मनुष्य मादक वस्तु का सेवन करता है वह तो उसी समय तक नशे में रहता है कि जब तक उस मादक वस्तु के नशे की मर्यादा है, परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती के हाथ में लेखनी आतेही, उनको ऐसा मदोन्मत्त बनादेती थी कि वे मदोन्मत्तों की तरह जो मन में आता था अट्ट सट्ट लिख मारते थे । टुक विचार करने का स्थान है कि जिस शंकराचार्य्य का होना सायना

चार्य्य ने वैशाख शुक्ल १० शाक ७१० के रत्न देश के कालवी नगर में लिखा है कि सम्पूर्ण इतिहास तथा तवारीखो से विक्रम् सम्वत ८०० के पहिले और ७०० के पीछे सिद्ध होता है स्वामीजी ने विना किसी प्रमाण के उसको विक्रम से २०० वर्ष पहिले हुआ लिखदिया । तथा सुधन्वा राजा लिखा विक्रम से पहिले कोई सतधन्वा राजा भी हुआ सिद्ध नहीं होता, शंकराचार्य्य का शास्त्रार्थ जो हुआ बौद्ध लोगों के साथ हुआ, जैनियों से नहीं हुआ, इस का प्रमाण शंकर का शिष्य माधवाचार्य्य अपने बनाये शंकर दिग्विजय मे इस प्रकार लिखता है — "आसेतुरातुषाद्रि बौद्धाना वृद्धबालक नाहंतिय सहत्वगोभूत्यं इत्यन्वमनृपा" ।

आनन्दगिरि निज रचित वर्मी पुस्तक के अर्थात् शंकर दिग्विजय के २६ वें अध्याय मे जिस प्रकार बौद्धों के साथ शंकराचार्य्य का शास्त्रार्थ हुआ सो यह लिखता है ।

इदमांह सर्व प्राण्यहिंसा परमो धर्म । परम गुरुभिरिदमुच्यते । रे रे सौगत नीचतर किं किं जल्पसि । अहिंसा कथ धर्म्मो भवितुमर्हति । यागीयहिंसा धर्म्म रूपत्वात् तथाहि अग्निष्टोमादिक्रतु छागादि पशुमान्न यागस्य परमधर्मत्वात् । सर्व देव तृतिमूलत्वाच । तद्द्वारा स्वर्गादि फल दर्शनाच पशुहिंसा श्रुत्याचार तत्परै रङ्गीकरणीया तद्व्यतिरिक्तस्यैव पाखण्डत्वात् सदाचाररता नरकमेव यान्ति । वेदनिन्दापरा येतु सदाचारविवर्जिता । तेसर्वे नरक याति यद्यपिब्रह्मबीजजा । इति मनुवचनात् । हिंसा कर्तव्यत्यनवेदा सहस्रे प्रमाण वर्तते ब्रह्मक्षत्रवैश्य शूद्राणा वेदेतिहास पुराणाचार प्रमाणमेव तदन्या पतितो नरकगामी चेतिसम्यगुपदिष्ट सौगत परमगुरु नत्वा निरस्तसमस्ताभिमान पद्मपादादि गुरुशिष्याणा , पादरक्ष धारणाधिकारकुशल सतत तदुच्छिष्टान्नभक्षणपुष्टतनुरभवत् । इत्यनन्तानदगिरिकृतौ षड्विंशत् प्रकरण ॥ २६ ॥

(अर्थ) सौगत कहता है कि अहिंसा परम धर्म्म है, तब शंकर कहता है रे रे सौगत नीचों मे नीच, क्या क्या कहता है अहिंसा क्यों कर धर्म्म हो सकता है यज्ञ हिंसा को धर्म्मरूप होने से सोई दिखाते हैं, अग्निष्टोमादि यज्ञ में छागादि पशु का मारना परम धर्म्म है, और सर्व देवता तृप्त हो जाते है, और इस हिंसासे स्वर्ग मिलता है, इस वास्ते धर्म्म है; पशु हिंसा श्रुतिका आचार है, अन्य मतवालों

को भी अंगीकार करने योग्य है, वैदिक हिंसा के उपरान्त सर्व पाखंड है, जो पाखण्ड मानते वे नरक में जाते हैं, वेद की निंदा करते हैं, और जो वेदोक्ताचार वर्जित हैं वे सर्व नरक में जायगे, मद्यकाबीज क्यों न हो? यह मनुनेकहा है।

हिंसा करना इस मे वेदों की हजारों श्रुतिया प्रमाण देती हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इनको वेद, इतिहास, पुराणोंका कहा प्रमाण है, इससे अन्य कुछ माने तो नरकगामी है, यह सुन के सौगत शंकर के पद्मपादादि शिष्यों का नौकर बनके उनकी जूतियों का रखने वाला हुआ और उनके उच्छिष्ट से मग्न रहने लगा।

इससे सिद्ध होता है कि शंकर जो मांस भक्षियों का पक्षी था उसने मांस भक्षी बौद्धों ही को परास्त किया, दयाधर्मी जैनियों का परास्त करना शंकर जैसे मांसभक्षी से क्योंकर बन पड़ता था, यदि जैनियों से शास्त्रार्थ होता तो उनके किसी पंडित वा आचार्य्य का नाम भी अवश्य होता जिसको शंकर ने परास्त किया, परन्तु मूठ प्रपञ्च के पात्र नहीं होते इस लिये नाम कहां से लिखते। इस विषय में स्वामी जी का सम्पूर्ण लेख बिना प्रमाण और मिथ्या है, यह कहना विद्वानों का अत्यन्त सत्य कि मूठ बोलने वाले को अपने वाक्य का स्मरण नहीं रहता राजा विक्रम से शंकर स्वामीका होना तीन सौ वर्ष पहिले भी लिखते हैं और कहते हैं कि जो मूर्त्तिया पृथिवी तलसे अब जैनियों की निकलती हैं वे शंकर स्वामी के समय की टूटी फूटी तथा गाड़ी हुई हैं, अजी स्वामी जी महाराज आज कल जितनी मूर्त्ति पृथिवी तल से जैनियों की निकलती हैं उन सबके ऊपर विक्रम राजा तथा शालिवाहन का सम्वत खुदा होता है बिना सम्वत् की कोई मूर्त्ति पृथिवी तल से नहीं निकली सो क्या सम्वत् भी उन पर शंकर स्वामी के समय और राजा विक्रम से ३०० तथा शालिवाहन से ४३५ वर्ष पहिले ही खोदा गया था? यथार्थ बात तो यह है कि शंकर के समय कोई मूर्त्ति किसीभी धर्म की पृथिवी में नहीं गाड़ी गई किंतु जब महमूद गजनवी आदि दुष्ट यवन बादशाहो का सम्पूर्ण हिन्दू मात्र पर अत्याचार बढ़ा तो बहुधा मूर्त्तिया जैन वैष्णव सब ही धर्मों की गाड़ दी गई थीं, और यह लिखना भी स्वामी जी का मूठ है कि शंकर स्वामी ने वाममार्गियों का खंडन किया, क्योंकि आगमप्रकाश ग्रन्थ का रचने वाला लिखता है कि शंकर स्वामी अन्त में शाक्त अर्थात् वाममार्गी थे, क्योंकि आनन्दगिरि इस शंकर

दिग्विजय में लिखा है कि शंकर स्वामी ने श्रीचक्र की स्थापना की और श्रीचक्र वाममार्गियों का मुख्य देव है, शंकर दिग्विजय के ६५ में अध्याय में श्रीचक्र की बहुत बड़ी कीर्ति गाई है, शृङ्गेरी, द्वारिकादि ठिकानो पर इनके मठ में श्रीचक्र की स्थापना है।

पुन: पृष्ठ २९५ पंक्ति २६ से स्वामी जी लिखते हैं कि "शंकराचार्य्य आदि ने तो जैनियों के मत के खंडन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुत से स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध भी कर लेते हैं"

इस लेख से भी यही सिद्ध किया जा सकता है कि शंकर स्वामी का मत सिद्धान्त विद्वानों के लिये माननीय नहीं था, और स्वामी जी लिखते हैं कि "दो जैन ऊपर से कथन मात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपट मुनि थे शंकराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे, उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधामन्द हो गई इत्यादि०" सो यह भी स्वामी जी की स्वकपोल कल्पना है शंकराचार्य्य का जीवन चरित्र शंकर दिग्विजय में विस्तार पूर्वक लिखा है उसमें यह वृत्तान्त कहीं भी नहीं है और स्वामी जी को झूठ लिखने और उस पर कदाग्रह वा हठ करने की इतनी उमंग है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं है, यह विषय संसार में किसी से भी छिपा हुआ नहीं है कि राजा भर्तृहरि विक्रमादित्य का बड़ा भाई था और कवि कालीदास राजा विक्रम के ही समय म हुआ, परन्तु स्वामी जी नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के पृ० २९९ पर यह लिख मारा कि विक्रमादित्य से पीछे राजा भर्तृहरि और पाँच सौ वर्ष पीछे अर्थात राजा भोज के समय बकरी चराने वाला कालीदास हुआ" ।

पुन पृ० ३०० पंक्ति १५ मे लिखा है कि "जब राजा भोज के पश्चात् जैनी लोग अपने मंदिरों में मूर्ति स्थापन करने और दर्शन पर्शन करने को आने जाने लगे" ।

यह लिखना भी बिना किसी प्रमाणके सर्वथा झूठ और मनोक्त है, क्योंकि राजा भोज से पहिले की बनी हुई जैन की लाखों मूर्ति जैन मंदिरों में विद्यमान हैं और यह लेख स्वामी जी के ही पूर्वोक्त लेख का विरोधी है ।

पुनः पृ० ३०१ पंक्ति २६ से लेकर पृ० ३०२ पंक्ति ३ तक यह लेख और जैनियों की कथा में भी लोग जाने लगे जैनियों के पोप इन पुराणियों के पोपों के चेलों को बहकाने लगे तब पुराणियों ने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने चेले जैनी हो जायगे पश्चात् पोपों ने यही सम्मति की कि जैनियों के सदृश अपने भी अवतार मन्दिर मूर्ति और कथा के पुस्तक बनावें इन लोगो ने जैनियों के चौवीस तीर्थंकरों के सदृश चौवीस अवतार मन्दिर और मूर्तिया बनाई और जैसे जैनियों के आदि और उत्तर पुराणादि हैं वैसे अठार-रह पुराण बनाने लगे ।

(क) यह लिखना भी बिना किसी प्रमाणके सर्वथा मिथ्या है, परन्तु यह मान लेने में कुछ हानि नहीं है रामानुज और वल्लभाचार्य्य ने जैनियों के धर्मकी प्रबलता से जलकर नवीन मत खड़े किये तब अनेक बात जैनियों की लेकर उनको निज इच्छानुसार बदल भी दिया है ।

पुनः पृ० ३०८ पं० ५ मे स्वामी जी यह प्रश्नोत्तर लिखते हैं ।

(प्रश्न) मूर्तिपूजा कहा से चली ? (उत्तर) जैनियों से ।

इस पर हमारी तर्क यह है कि मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७५ में जो देवमूर्ति पूजन की आज्ञा है सो क्या स्वामी जी को यह निश्चय होगया कि मनुस्मृति से पहिले भी जैनधर्म था ।

पुनः पृ० ३०८ पं० ५ मे दूसरा प्रश्न यह लिखा है ।

(प्रश्न) मूर्तिपूजा जैनियों ने कहा से चलाई ? (उत्तर) अपनी मूर्खता से । (प्रश्न) जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देखके अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है ? (उत्तर) जीव चेतन और मूर्ति जड़ क्या मूर्ति के सदृश जीव भी हो जायगा ? यह मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है जैनियों ने चलाई है इस लिये इनका खण्डन १२ वें समुल्लास मे करेंगे । (प्रश्न) शाक्त आदि ने मूर्तियों मे जैनियों का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्तियों के सदृश वैष्णवाऽऽदि की मूर्तिया नहीं हैं । (उत्तर) हा यह ठीक है जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते इस लिये जैनों की मूर्तिया से विरुद्ध बनाई, क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना

मुख्य उनका काम था जैसे जैनों ने मूर्तिया नग्नी, ध्यानावस्थित् और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं उनसे विरुद्ध वैष्णवादिने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्री के सहित रागरंग भोग विषयासक्ति सहिताकार खडी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख घंटा घड़ियाल आदि बाजे नहीं बजाते ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी, पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला मे आ फसे इत्यादि० ।

इस विषय में हम विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं देखते, स्वा० दयानन्द सरस्वती का यह हाल है कि एक वचन को जिस विषय में अपना उपकारी समझ ग्रहण करते हैं उसको जब वादानुवाद में खंडित होता जानते हैं तो शीघ्र ही त्याग देते हैं, और फिर काम पड़ने पर ग्रहण कर लेते हैं, देखो इस नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के पृ० ४१ में वेदी, प्रोक्षणी, प्रणीता, आज्यस्थाली, चमसा- के के चित्र बना कर उनके जानने के लिये दिखलाये हैं, तथा पृ० ९१ में वर कन्याके फोटोग्राफ मगाने भेजनेका उपदेश दिया अब यहा शांतिमुद्राधारी वीतराग भगवान् की मूर्ति को बुरा कहने लग गये, यह हठ दुराग्रह नहीं तो और क्या समझा जाय ?

सत्य बात तो यह है कि मूर्ति के बिना संसार में कोई भी कार्य नहींचले। जितने वर्णाश्रम हैं सब में मूर्तिपूजा चल रही है, कुछ इसी बात पर ध्यान देना उचित नहीं कि मूर्तिपूजा फल पुष्पादिक से ही होती है, नहीं मित्र ! नदी, पहाड़, बन, नगर, देशादिक के चिन्ह (नक्शे) बनाकर उनसे लाभ लेना भी मूर्तिपूजा में गिनाजाता है, और सच्चे मनमे विचार किया जाय तो पुस्तक ग्रन्थादिक भी मूर्ति ही हैं। पुस्तक वाल्मीकीय रामायण ४४ सर्ग श्लोक ४२। ४३ मे लिखा है कि रावण शिव जी की पूजा करता था, सो स्वामी दयानन्द सरस्वती को इस पर भी संतोष न हुआ तो हम क्या करें, क्योंकि वे तो इस पुस्तक पर बड़ा भरोसा रखते थे।

पुन पृ० ३२८ प० १ से स्वामी जी लिखते हैं कि "यह मूर्तिपूजा अढाई तीन सहस्र वर्ष के इधर २ वाममार्गी और जैनियों से चली है प्रथम आर्यावर्त में नहीं थी और ये तीर्थ भी नहीं थे जब जैनियों ने गिरनार, पालीटाना, शिखर, शत्रुंजय और आबू आदि तीर्थ बनाए उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये

जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहे वह पडोंकी पुरानी से पुरानी वही और तांबे के पत्र आदि लेख देखे तो निश्चय हो जायगा कि य सब तीर्थ पांच सौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता इससे आधुनिक हैं" ।

प्यारे पाठकवृन्द ! यहं भी लेख स्वामी जी का यथार्थ नहीं है, मूर्तिपूजाके पुरातन होने का प्रमाण तो वाल्मीकीय रामायण में शिवजी की पूजा करना रावण का तथा मनुस्मृति अध्याय ७ श्लोक १७५ में ऊपर लिखा गया उतना ही बहुत है, अब तीर्थों के विषय में यह कहा जाता है कि शिखर महात्म्य, गिरनार महात्म्य, सिद्धाचल महात्म्य को पक्षपात रहित होकर देखने से भले प्रकार निश्चय हो सकता है, कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का कहना और लिखना कहां तक सत्य है, इसी लिये हम इस विषय में विशेष लिखना नहीं चाहते ।

पुन स्वामी जी पृ० ३८४ प० १९ में लिखते हैं कि "जैन लोग भी नव कार मत्र जपकर पाप छूठना" तथा पृ० ३८६ प० २७ में "मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं तथा पृ० ३८७ प० २४ से जैनियो के पास जाकर पूछा उन्होंने भी वैसा ही कहा, परन्तु इतना विशेष कहा कि "जिनधर्म" के बिना सब धर्म खोटे, जगत् का कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत अनादि काल से जैसा का वैसा बना और बना रहेगा आ तू हमारा चेला होजा, क्योंकि हम सम्यक्त्वी अर्थात सब प्रकार से अच्छे हैं । उत्तम बात को मानते हैं जैन मार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं" ।

उक्त तीनों लेख स्वामीजी के पक्षपात रूपी अग्निकर दग्ध हुये हृदय की साक्षी दे रहे हैं, संसार के सम्पूर्ण प्राणी अपनी २ उन्नति का उपाय करते हैं, और जिस धर्म को ग्रहण करते हैं उसको मोक्ष का द्वार बतलाने वाला समझ कर स्वीकार करते हैं, परन्तु यह जैन धर्म के किसी भी पुस्तक में नहीं लिखा कि मिथ्या दृष्टि अभव्यों को बुला २ कर अपना शिष्य बनाना चाहिये, यह केवल स्वामी जी की मनगढन्त लीला उस दुःख का कारण है जो लाला ठाकुरदासजी के पत्र व्यवहार तथा श्रीमान् साधु क्वेर सागर जी के नोटिस लगाने को देख कर उनको उत्पन्न हुआ था ।

पुन पृ० २९२ प० १५ मे स्वामी जी लिखते हैं कि "जब ऐसे हैं तभी तो वेद मार्ग विरोधी वाममार्गादि सम्प्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढ़ गये अब भी बढते जाते हैं।

यह लिखना भी स्वामी जी का ठीक नहीं है क्योंकि प्रथम काल में जितने जैनी इस आर्यावर्त में थे उनकी अपेक्षा अब तो एक रुपये मे एक पैसा भी नहीं फिर तो बढते जाना क्योंकर सिद्ध होगया।

अब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी रचित नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के द्वादश समुल्लास की भूमिका का खंडन लिखा जाता है इस खंडन मे जितना लेख स्वामी जी का है उसकी आदि मे (द) और जितना उत्तर उसकी आदि मे (क) यह अवश्य होगा पाठक महाशयो को जानना और स्मरण रखना चाहिये।

(द) अब आर्य्यावर्तस्थ मनुष्यों मे सत्याऽसत्य का यथावत् निर्णय कराने वाले वेद विद्या छूटकर अविद्या फैल के मतमतान्तर खडे हुये, यही जैन आदि के विद्या बिरुद्ध मत प्रचार का निमित्त हुआ क्योंकि वाल्मीकीय और महाभारतादि म जैनियो का नाम मात्र भी नहीं लिखा और जैनियो के ग्रन्थों मे वाल्मीकीय और भारत मे कथित् "रामकृष्णादि" की गाथा बडे बिस्तार पूर्वक लिखी हैं इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला क्योंकि जैसा अपने मत को बहुत प्राचीन जैनी लोग लिखते हैं वैसा होता तो वाल्मीकीय आदि ग्रन्थो मे उनकी कथा अवश्य होती इस लिये जैन मत इन ग्रन्थो के पीछे चला है।

(क) उक्त लेख करने से स्वामी दयानन्द सरस्वती का केवल पक्षपात ही नहीं किंतु यह भी सिद्ध होता है कि स्वामी जी ने "वाल्मीकीय रामायण" और "महाभारत" का कभी दर्शन भी नहीं किया, यदि किया होता तो ऐसा झूठा लेख वे भूलकर भी नहीं लिखते, देखो योगवासिष्ट नामक पुस्तक के कथारम्भ मे लिखा है कि ब्रह्मा जी ने भारद्वाज को कहा तेरा गुरु वाल्मीक जहा रहता है तू उसके पास जाकर आत्मबोध महारामायण का श्रवण कर, जो तेरे गुरु ने आरम्भ किया है, इतना कहा और भारद्वाज को साथ लेकर ब्रह्मा जी वाल्मीक जी के पास आये और कहने लगे हे मुनियों मे श्रेष्ठ वाल्मीक यह जो राम के स्वभाव के कथन का तुमने आरम्भ किया है तिस उद्यम का त्याग नहीं करना इसको आदि से अन्त

पर्य्यन्त समाप्त करना, इतना कह ब्रह्मा जी अन्तर्ध्यान होगये, और वाल्मीक जी ने कथा लिखना आरम्भ कर समाप्त की।

उक्त कथा के छत्तीस हजार श्लोक हैं उनमे प्रथम वैराग्य प्रकरण अहंकार निषेधाध्याय में रामचन्द्र जी ने वसिष्ठ जी से ऐसा कहा है।

॥ श्लोक ॥

नाहं रामो नमे वांछा विषयेषु न मे मनः ।
शांतिमाशितुमिच्छामि-वीतरागो जिनो यथा ॥१॥

इसमें रामचन्द्रजी जिन समान होनेकी इच्छा करते हैं, अब खयाल करना चाहिये, यह वचन हमने अपनी तरफसे बनाकर तो नहीं लिखा सत्य कहना वाल्मीकीय रामायण मे जैन का विषय है कि नहीं ?

(वादी का तर्क) हम इस उत्तरको ठीक नहीं मानते क्योंकि योगवासिष्ठ को तो स्वामी जी नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० ७१ पंक्ति २० मे स्वत अप्रमाणीक कथन कर चुके हैं, हम तो केवल वाल्मीकीय रामायण का प्रमाण चाहते हैं।

(हमारा उत्तर) अच्छा साहब इसी प्रकार सही, देखो बाबू हरिश्चन्द्र जी भारतेन्दु काशी निवासी ने एक पुस्तक लिखा जिसका नाम "रामायण का समय" है उक्त पुस्तकके पृ० ३ प० ६ से वाल्मीकीय रामायण विषय इस प्रकार लिखा है।

अयोध्या के वर्णन मे उसकी गलियो में जैन फकीरों का फिरना लिखा है इससे प्रकट है कि (वाल्मीकीय) रामायण के बनने से पहिले जैनियो का मत था।

तथा इसी पुस्तक के पृ० ५ प० १६ से यह लिखा है कि "१०८ सर्ग मे जाबालिमुनि ने चार्वाक मत वर्णन किया है। और फिर १०९ सर्ग में बुधका नाम और उसके मत का वर्णन है। इससे प्रकट है कि ये दोनों वेद के विरुद्ध मत उस समय में भी हिन्दुस्तान मे फैले हुये थे। अभी हम ऊपर वालकाण्ड में जैनियों के उस काल मे रहने का जिक्र कर चुके हैं इत्यादि०"।

(क्र.) पाठकवृन्द कहो तो सही इससे बढ कर और प्रमाण क्या हो सकता है ?।

(वादी का प्रश्न) अच्छा साहिब यह तो मानलिया अब महाभारत में भी तो कोई जैन का प्रमाण बतलाओ ?

(हमारा उत्तर) देखो मिन महाभारत में श्री नेमनाथजी की इस प्रकार चढ़ाई लिखी है यह श्री नेमनाथजी जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर है।

(श्लोक)

युगे युगे महापुण्यां दृश्यते द्वारिकापुरी।
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासेशशिभूषणः ॥ १ ॥
रेवताद्रौ जिनोनेमियुगादिर्विमलाचले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥ २ ॥

(वादी का तर्क) यह श्लोक महाभारत में पीछे से मिलादिये हैं असल में तो ऐसा सुना जाता है कि यह श्लोक प्रभास पुराण के हैं।

(हमारा उत्तर) प्रभास पुराण भारत से कोई जुदा पुस्तक नहीं है क्योंकि पुराण केवल अष्टादश हैं जिन के नाम इस प्रकार हैं, ब्राह्म पुराण १ पद्म पुराण २ विष्णु पुराण ३ शिव पुराण ४ नारदीय पुराण, ५ मारकण्डेय पुराण ७ भविष्य पुराण ८ ब्रह्म वैवर्त ९ लिङ्ग पुराण १० वाराह पुराण ११ स्कन्द पुराण १२ वामन पुराण १४ मत्स्य पुराण १५ गरुड़ पुराण १६ ब्रह्माण्ड पुराण १७ भागवत १८ इन अष्टादश पुराणों के अतिरिक्त कोई उन्नीसवां प्रभास पुराण नहीं किंतु महाभारत ही है परन्तु तुम यह श्लोक रहने दो हम महाभारत का ही और प्रमाण देते हैं।

(श्लोक)

आरोह स्वरथं पार्थ गांडीवं च करेकुरु। निर्जितां मेदिनींमन्ये निर्ग्रंथो यदिसम्मुखः ॥ १ ॥

यह श्लोक उस समयका है जब अर्जुन महाभारत में युद्ध करने को चला और उसके उत्तम शकुन प्राप्त होनेपर कृष्ण बोले, हे ? अर्जुन रथमें चढ़ और गांडीव धनुष हाथ में ले मैं मानता हू कि, तैने पृथिवी जीतली क्योंकि निर्ग्रंथ मुनि सम्मुख आये बहुत शुभ शकुन हुआ।

(वादी का तर्क) उक्त श्लोक में निर्ग्रंथ का नाम है स्पष्ट जैन का विषय नहीं है।

(हमारा उत्तर) सो स्पष्ट भी दिखलाते हैं।

(श्लोक)

अकारादि हकारांत मूर्द्धाधोरेफसंयुतम् । नादविन्दु कलाक्रांतं चन्द्रमण्डल सन्निभम् ॥ १ ॥

एतदेव परतत्वं योविजानातिभावतः । संसार बन्धनं छित्वा सयाति परमांगतिम् ॥ २ ॥

(अर्थ) अकार आदि में हकार अन्त में और नीचे ऊपर रकार और नाद बिन्दु सहित चन्द्रमा के मण्डल की तुल्य ऐसा अर्हं जो तत्व है यही परम तत्व है इस तत्व को जो भाव से जाने सो संसार के बन्धन को काटकर बैकुंठ को जाता है

(वादी का प्रश्न) क्या इस विषय में कोई मनुस्मृति का भी प्रमाण है ?

(हमारा उत्तर) हां ! है, देखो वृद्धमनुस्मृति में यह श्लोक है ।

कुलादिबीज सर्वेषा माद्यो विमल वाहनः ।

चक्षुष्मांश्च यशस्वीचाऽभिचन्द्रः प्रसेनजित् ॥ ८६ ॥

मरुदेवश्च नाभिश्च भरते कुलसत्तमाः ।

अष्टमे मरुदेव्यांच नाभेर्जातो गुरुक्रमः ॥ ८७ ॥

उक्त श्लोक जैन की सनातनता सिद्ध करते हैं, भावार्थ जैनियों ने जिनको युग की आदि में कुलकर करके माना है, मनुस्मृति में उनका ही मनु करके माना है और देखो ! जिस व्यास ने वेदों को संहिता रूप किया उसने एक ब्रह्म सूत्र बनाया जिसके द्वितीयाध्याय पाद के इस "नैकस्मिन्नसंभवात् ३३" इस सूत्र पर शंकराचार्य्य ने निज भाष्य में जैन की सप्तभंगी वाणीका खंडन लिखा इससे सिद्ध हुआ व्यास के समय जैन धर्म था ।

(वादी का प्रश्न) अच्छा जी तो क्या इस प्रकार का लेख वेदों में भी कहीं मिल सकता है ?

(हमारा उत्तर) हां ! है, देखो ऋग्वेद का मंत्र ।

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ।

ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये ॥

और यजुर्वेद मे भी कहा है, ॥ मंत्र ॥

ॐनमोऽर्हतो ऋषभाय ॐ ऋषभ पवित्रं पुरहूत मध्वरं । यज्ञेषु नग्नं परम माहसंस्तुतावारं शत्रुजयंतं शुरिन्द्रमाहुतिरितिस्वाहा ॥

पुन और मंत्र ॥

ॐत्रातार मिन्द्र ऋषभं वदन्ति अमृतारमिन्द्र हवे सुगतंसुपार्श्वे। इन्द्रहवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमान पुरहूतिमिन्द्रमाहुतिरितिस्वाहा ॥

पुन नग्न की आहुति का मंत्र ॥

ॐनग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमिवीरम् । पुरुष महंतमादित्यवर्णं तमसा पुरस्तात स्वाहा ॥

पुन ऋग्वेद में नग्न महिमा ।

ॐ पवित्रं नग्नमुपस्पृसा महे येषां नग्नंयेषां जातं येषां वीरं सुवीरम् ।

पुन ऋग्वेद म० १ अ० १४ सूत्र १०

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिनेमिः ।

क्यों साहिब सत्य कहना, वेद मंत्रो से जैन धर्म्म की अनादि सिद्ध है, या नहीं ?

(द) कोई कहे कि जैनियों के ग्रन्थों में से कथाओं को लेकर वाल्मीकीय आदि ग्रन्थ बने होंगे तो उनसे पूछना चाहिये कि वाल्मीकीय आदि में तुम्हारे ग्रन्थो का नाम तथा लेख क्यों नही ? और तुम्हारे ग्रन्थोंमे क्यों है,? क्या पिता के जन्म का दर्शन पुत्र कर सकता है ? कभी नहीं । इससे यही सिद्ध होता है कि जैन बौद्ध मत शैव शाक्तादि मतों के पीछे चला है ।

(क) स्वामी जी राम लक्ष्मण कृष्ण बलदेव तथा वाल्मीक व्यासादिक क बाइबिल, तौरेत, इंजील कुरान में कुछ भी वर्णन नहीं तो क्या यह सब पुस्तक भारत रामायण के पुराने सिद्ध हो जायगें ? कभी नहीं इसी प्रकार जैनों का कथन भारत रामायण मे न होने से जैन नवीन नहीं हो सकता परन्तु हमने तो भारत रामायण क्या वेदों मे भी जैन सिद्ध कर दिया, और जिनको आवागमन पर दृढ विश्वास वे यह भी कह सकते हैं कि पुत्र पिता के जन्म का उत्सव देख सकता है परन्

यह गृढ चर्चा है यहा विस्तार पूर्वक लिखने का अवसर नहीं है।

(द) अब इस १२ बारहवें समुल्लास मे जो २ जैनियों के मत विषयक लिखा गया है सो उनके ग्रन्थों के पते पूर्वक लिखा है इसमे जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो २ हमने इनके मत विषय में लिखा है वह केवल सत्याऽसत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ।

(क) स्वामी अपराध क्षमा आपने ऐसी घड़ी जन्म ही नहीं लिया था जो यथार्थ और पक्षपात रहित लेख करते। स्वकपोल कल्पना करना और निर्दोष को सदोष कहना यह तो आपका मुख्य धर्म था।

(द) इस लेख को जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे सबको सत्याऽसत्य के निर्णय मे विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा जब तक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद या लेख न किया जाय तब तक सत्याऽसत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्याऽसत्य निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा अन्धकार मे पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है इस लिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारा मनुष्य जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो।

(क) स्वामी जी किसी विद्वान गुरु के शिष्य होकर विद्या पढने में तो अपना अपमान समझते हैं और परम दयामय सनातन जैन धर्मका सारांश जानने के अभिलाषी हुये वाद विवाद के बहाने से जो अपना मनोरथ सिद्ध किया चाहते हैं यह कब हो सकता है, जो जैन के सच्चे श्रद्धावान हैं उनको तो वाद विवाद से प्रयोजन ही क्या है ? और जो नवीन हैं उनको सामर्थ नहीं इस लिये स्वामी दया-नन्द सरस्वती का सम्पूर्ण श्रम व्यर्थ है।

(द) और यह बौद्ध जैन मत का विषय विना इनके अन्य मत वालों को अपूर्व लाभ और बोध करने वाला होगा, क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मत वाले को देखने, पढने वा लिखने को भी नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष "आर्यसमाज" मुम्बई के मंत्री "सेठ सेवकलाल कृष्णदास" के पुरु-षार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं तथा काशीस्थ "जैन प्रभाकर" यन्त्रालय में छपने और

मुम्बई मे "प्रकरण रत्नाकर" ग्रन्थ के छपने से भी सब लोगों को जैनियों का मत देखना सहज हुआ है । भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मतके पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना ।

(क) जो विवेकी पुरुष होते हैं वेही विद्वान् कहलाते हैं और उनका यही परम धर्म्म है कि सब कार्य्य विवेक सहित करें, आर्य्य लोग अपने भोजन पा आदि को म्लेच्छ और चाण्डालादिक के स्पर्श से सदैव इस लिए बचाया करते हैं कि उनके स्पर्श से वह अप्रमाण हो जाता है । इसी प्रकार जैनी लोग अपने धर्म ग्रन्थो को (जो उनके आत्मा को निर्मल करने वाले हैं) ऐसे प्राणी को नहीं देते जो उसके देखने का अधिकारी नहीं । इस विषय मे स्वामी जी का लिखना ऐसा है जैसे कोई भंगी, ढेढ, चमार किसी क्षत्रिय कुलोत्पन्न राजकन्या से विवाह करने की अभिलाषा कर खेद के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं पावे । और जो पुस्तक छापे में छप कर बाजार मे बिकने लगती है उसको जैनी लोग ऐसा समझते है कि जैसे किसी उत्तम कुल की जन्मी कन्या धर्म और न्यात भ्रष्ट हो वेश्या हो गई ।

(द) इसी से विदित होता है कि इन ग्रंथों के बनाने वालो को प्रथम ही शंका थी कि इन ग्रंथो मे असम्भव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगे तो खण्डन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरो के ग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में श्रद्धा नहीं रहेगी । अस्तु जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किंतु दूसरों के दोष देखने मे अत्युत्सुक रहते हैं । यह न्याय की बात नहीं क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकाल के पश्चात् दूसरे के दोषो में दृष्टि देके निकालें । अब इन बौद्ध जैनियों के मत का विषय सब सज्जनों के सन्मुख रखता हूँ जैसा है वैसा विचारें ।

(क) प्यारे पाठकगण ! सच दूसरों ही को उपदेश देना जानते हैं खुद स्वामी जी को ही हठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं आता था यह क्योंकर सिद्ध हुआ कि जैन ग्रथकारो को प्रथम ही से शंका थी ? जैन आम्नाय के लाखो ग्रथ इस समय भी पृथ्वी पर विद्यमान हैं किसकी मजाल है जो उन पर लेखनी चलाने हा स्वामी जी की तरह व्यर्थ गाल बजाने का सा काम हर कोई भी कर जानता है, यदि स्वामी जी सत्यवक्ता थे तो साफ क्यों न कह दिया कि हमारे माता पिता

का यह नाम है, और जैसे यार (जार) पुरुष किसी भले घर की स्त्री का गुस ढका देखकर कहे कि यह चक्षुरहित व नकटी है, तो उसके इस कहनेसे वह लज्जा त्याग कर मुख नहीं दिखावेगी। इसी प्रकार स्वामी जी के कहने से कोई जैनी अपने धर्म ग्रन्थों को गलियारे की गेंद नहीं बना सकता! खैर पाठकवृन्द! दूसरे भाग * मे हम वही उत्तर लिखेंगे जो स्वामीजीकी यथार्थ पोल खोले इस भूमिका का उत्तर तो इतना ही बहुत है। इति "सत्यार्थप्रकाश" द्वादश समुल्लास भूमिकाया समीक्षा समाप्तम्।

पुन पृ० ५५८ पं० ९ मे स्वामी जी लिखते हैं कि "जो दूसरो के मतोंको कि जिसमें हजारों करोडों मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपने का सच्चा उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है? क्योंकि किसी मत मे सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते"।

न्यायवानों को टुक ध्यान देना उचित है कि पूर्वोक्त लेख मे खुद स्वामी जी ही झूठे मिथ्या वादी सिद्ध होते है, और जैन बौद्ध पुराणी ईसाई मुसलमान सब सच्चे ठहरते है क्योंकि स्वामी जी ने उक्त सब धर्मों को झूठा बतलाया है।

पुन पृ० ६०१ प० १४ से लिखा है कि "चारों वेदों के ब्राह्मण, ६ अंग ६ उपांग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्या रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परत प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन है उनको अप्रमाण मानता हूँ।

इस पर मंगलदेव पराजय पृ० ३१ प० ७ पर लिखा है कि "यहां ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थों में वेद विरुद्ध वचन कहने से स्पष्ट सिद्ध है कि स्वामी जी को ब्रह्मादि महर्षियों से अधिक विद्वान् होने का अभिमान था और उनका

---

* सम्पूर्ण "सत्यार्थप्रकाश" चतुर्दश समुल्लास का उत्तर दूसरे भाग में स्पष्ट रूप पर लिखा गया है, परन्तु उसके छपने में अभी द्रव्यके अभावकर विलम्ब मालूम होता है, इसलिये केवल द्वादश समुल्लास का उत्तर "जैन सुधा बिन्दु" नाम से जुदा छपाया गया है।

अज्ञान उन्हीं के लिखे हुये सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों मे सम्यक् प्रकट है" ।

आर्योद्देश्य रत्नमाला की सख्या २९ में मुक्ति का स्वरूप इस प्रकार लिखा है कि—

२९ मुक्ति । अर्थात् जिससे सब बुरे कामों और जन्म मरणादि दु.ख शरीर से छूट कर सुख स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो के सुख ही मे रहना मुक्तिकहाती है।

इसके प्रतिकूल नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' पृ० ६०२ पंक्ति २३ में यों लिखा है

१०—"मुक्ति" अर्थात् सब दुखों से छूटकर बंध रहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुन संसार में आना" इसी प्रकार आर्योद्देश्य रत्नमालाके प्रतिकूल नवीन "सत्यार्थप्रकाश" में अनेक वचन हैं ।

जो आर्य राजवंशावली स्वामी जी ने नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के पृ० ३९७ से ४०० तक लिखी है उसके विषय में लिखा है कि यह विषय, विद्यार्थी सम्मिलित "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" और "मोहनचन्द्रिका" से अनुवाद किया है । यह पाक्षिक पत्रिका श्री नाथद्वारे से निकलती है इसके सम्पादक ने मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १९ । २० किरण अर्थात् दो पाक्षिक पत्र में छापा था । और अनुभव होता है कि स्वामी जी के पास यह पत्रिका पौष मास मे आई होगी जो पुस्तक के पृ० ३९५ के पश्चात् सम्मिलित हुई, इससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि जब पौष मास तक "सत्यार्थप्रकाश" के ४०० पृ० पूरे हुये तो पूरा ग्रन्थ स्वामी जी के उदयपुर रहते रहते ही पूरा हो गया होगा परन्तु स्वामीजी ने उसके अन्तमें पूर्ण होनेका सम्वत्, मास, दिन, तारीख कुछ भी नहीं लिखा मालूम नहीं ऐसा क्योंहुआ ? इति सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा सम्पूर्णम् ।

आश्विन सम्वत् १९३९ में ऋग्वेदभाष्य अंक ४२ । ४३ छपकर प्रकाशित हुआ । कार्तिक सम्वत् १९३९ में यजुर्वेदभाष्य अंक ४२ । ४३ वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से छपकर प्रकाशित हुआ, और स्वामी जी के उदयपुर रहते हुये ही अजमेर नगर से प्रकाशित होने वाले "देश हितैषी" नामक पत्र सख्या ७ मास कार्तिक सम्वत् १९३९ में मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबाद निवासी का दिया हुआ निम्नलिखित

विज्ञापन प्रकाशित हुआ था ।

॥ मुन्शी इन्द्रमणि जी का दिया हुआ विज्ञापन ॥

प्रकट हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की सम्मति से जगन्नाथदास की प्रश्नोत्तरी के खण्डन मे एक व्याख्यान सर्वथा मिथ्या देशहितैषी 'नामक मासिक पत्र अजमेर मे एक उचित वक्ता के नाम से मुद्रित हुआ है, और उसमे प्राय मेरा नाम भी निन्दा के साथ लिखा है उसका उत्तर भी शीघ्र ही मासिक पत्र के द्वारा (जो कि हम धर्म्माधर्म के निर्णय मे प्रचलित करना चाहते हैं) मुद्रित होकर सज्जनों के अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जायगा, परन्तु व्याख्यान के अंत मे जो यह लिखा है कि जगन्नाथदास और इन्द्रमणि की प्रतिज्ञा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहे वह आर्य्यसमाचार मेरठ के लाला रामसरन दास आदि भद्र पुरुषों से पूछ देखे कि अन्य शास्त्रियो के विवाद विषय के शांति कारक व्यवहार प्रसग मे इन्होंने कैसा २ विपरीत व्यवहार किया है मैंने अद्य पर्यन्त उस विषय को स्वामी जी की अति निन्दा का कारण जानकर मुद्रित नहीं कराया परन्तु जब कि वे उलटा चोर कोतवाल को डांटे इस दृष्टात् के सदृस अब मेरी मिथ्या निन्दा लोगों से करने और छपवाने लगे तब उस विषय का प्रकाशित कर देना अत्यावश्यक जाना । विदित हो कि जिस समय मुझ पर मुसलमानों के झगडे मे ५००) रुपये दण्ड हुआ वो स्वामी जी ने समाजों को पत्र लिखे कि मुन्शी इन्द्रमणि की सहायता के लिये चन्दा करके हमारे तथा लाला रामशरण दास सभासद आर्य्यसमाज मेरठ के पास भेजो वहां से एकत्र करके मुन्शी जी के पास भेजा जायगा जिससे कि वह उक्त दण्ड क्षमा होने के लिये अपना मुकद्दमा लडावें, स्वामी जी के लेखानुसार, लाहोर, अमृतसर रुड़की, फर्रुखाबाद, फीरोजपुर, शाहजहांपुर, औरंगाबाद, दारजिलिङ्ग, गुरदासपुर झेलम, मुलतान, बटाला, आदि के सज्जनों ने यथोचित द्रव्य इकट्ठा करके स्वामी जी तथा लाला रामशरण दास जी के पास भेजना प्रारम्भ किया जब कि उक्त मुकद्दमे की अपील जजी मुरादाबाद मे दायर थी तो मुझको ६००) मिस्टर हिल साहिब वैरिस्टर हाईकोर्ट के पास भेजने की आवश्यकता हुई तब मैंने

आप मेरठ जाकर लाला रामशरण दास से कहाँ कि ६००) रुपये बैरिस्टर साहिब के पास भेजने हैं जिसमें ४००) चार सौ तो मेरे पास हैं २००) चन्दे के रुपये में से जो तुम्हारे पास जमा हुआ है दे दीजिये लाला साहिब ने उत्तर दिया कि यहाँ से तो अभी तुमको रुपया न मिलेगा वहीं से कुछ यत्न करके भेज दो फिर मैंने उनसे प्रश्न किया कि अब तक आपके पास कितना रुपया जमा हुआ है तो उत्तर दिया कि समाज से बतलाने की आज्ञा नहीं है, धन्य है जिसकी सहायता के लिये सज्जनों ने धन भेजा उसको देना क्या यह भी न बतलाया जाय कि कितना द्रव्य है, निदान मैं वहां से अपने स्थान को चला आया और एक सज्जन की सहायता से बैरिस्टर साहिब को ६००) रुपये भेज दिये, फिर जब जजी मुरादाबाद से ५००) जुरमाने मे से ४००) रुपये कम होकर १००) रुपये शेष रहे तब लाला राम सरनदास जी मुरादाबाद आये थे मैंने उनसे कहा कि हाईकोर्टमें अपील करना है, रुपये भेजिये तब भी लाला साहिब ने वही उत्तर दिया कि यहा से तो रुपया न मिलेगा, वहीं से यत्न करके हाईकोर्ट मे अपील कर दीजिये, फिर लाला रामसरणदास जी अपने स्थान को चले गये और मैंने रुपये के लिये कई बार स्वामी जी को तथा लाला रामशरण दास जी को लिखा मुझे दोनों जगह से कुछ उत्तर न मिला तब मैंने भारत मित्र कलकत्ते में * यह छपवाया कि जिन सज्जनो को मेरे मुकदमें में सहायता करनी हो वह जो देना चाहे वह मेरे पास भेजें अन्य जगह का भेजा हुआ द्रव्य मेरे को नहीं मिलता, फिर स्वामीजी को लिखाकि इस मुकदमें के लिये आपके तथा रामसरणदास के पास धनजमा हुआ औरहमको नहीं मिलता यदि आप का विचार ऐसा ही है तो स्पष्ट लिख दीजिये हम हाई कोर्टका अपील न करें ? इस लिखा पढ़ी के उपरान्त स्वामीजीने ६००) रुपये तो भेजे और शेषधन रामशरणदास जी के पास रहा, हाँ जिन महाशयोंने मेरे पास धन भेजा वह मेरे पास पहुँचा और उन्हों के सहाय से इस मुकद्दमें का काम चला, यहा यह विषय संक्षेप से निवेदन किया गया विस्तार पूर्वक फिर प्रकट किया जावेगा । अब बुद्धिमान न्याय करें कि जो धन सज्जनो ने मेरी सहायता के निमित्त स्वामीजी तथा रामशरण

* मुन्शी इन्द्रमणि के उस विज्ञापन की नकल जो भारत मित्र में छपी थी उसी इस लिये नहीं लिखी कि उसका सारांश इसमें आ चुका है ।

णदासजी के पास भेजा और उन्होंने वह सम्पूर्ण मुझको न दिया किंतु आप उसके स्वामी बनबैठे तो अन्य मार्गियों के विवाद विषय के शांतिकारक व्यवहार प्रसंग में स्वामीजी और रामशरणदास जीने विपरीत व्यहार किया है या मैंने (इन्द्रमणि मुरादाबाद) ।

स्वामीजी की मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारीसे भी अधिक प्रीतिथी उनकी बढाई आर्य्यसमाचार मेरठ संख्या ८ जिल्द ४ में इस प्रकार लिखी है ।

ऋषि सिफत मुनि यकअत चशमय इस्लाह मन्बअफलाह हिकमत पनाह फजीलत दस्तगाह सिदक मुजस्सिम् महतरम मुकर्रम मअजम जनाब मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी ।

मार्गशिर्ष सम्वत् १९३९ मे ऋग्वेदभाष्य अंक ४४ । ४५ वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ ।

पौष सम्वत् १९३९ मे वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से स्वामीजी रचित पुस्तक अव्ययार्थ १ आख्यातिक १ सौवर १ परिभाषिक १ धातुपाठ १ गणपाठ १ उणादिकोष १ यह सात पृथक् २ और यजुर्वेदभाष्य अंक ४४ । ४५ छपकर प्रकाशित हुये । और पौष शुक्ला १ बुधवार का लिखा एक लेख माघ सम्वत् १९३९ के देश हितैषी में उचित वक्ता के नामसे प्रकाशित हुआ जिसको मुन्शी इन्द्रमणि जी मुरादाबादी खास स्वामीजी का ही लिखा हुआ खयाल करते हैं नकल उसकी यह है,

श्रीयुत देश हितैषी सम्पादक समीपेषु, ।

मान्यवर नमस्ते ।

विदित हो कि एक मुन्शी इन्द्रमणि जी का विज्ञापनरूप मेरे पास आया इसका उत्तर बहुत लम्बा है परन्तु इस समय इस पत्र के थोड़े से उत्तर को आप अपने पत्र में स्थान देके मुझको कृतार्थ कीजिये । यदि मुन्शी इद्रमणिजी अपने लेखानुसार सच्चे हों तो उस व्यवहार में अन्यत्र मे जितना आय व्यय हुआ है आप के पत्र (दे० हि०) में छपवा के प्रसिद्ध करें और इसी प्रकार लालारामशरणदास जी भी करें । जिसके देखने मे सज्जन लोगों को स्वयं सत्याऽसत्य का विचार हो जायगा । अर्थात् समझ लेंगे । और उस हिसाबके नीचे यह भी लिखा होकि जिस २ भद्र आर्य्य जनने मुन्शीजी और मुसलमान मुरादाबादके झगड़े में जितने २ रुपये

जिस २ के पास भेजे हों और जिसकी २ रसीद भी उन के पास हो नाम लेख पूर्वक वह २ देशहितैषी पत्र सम्पादक के पास भेजें और उस २ के पत्र को आप अपने पत्र में छापकर प्रसिद्ध कर दिया करें जिससे सत्य और असत्य सबके साम्हने प्रकाशित होजाय इसमें सत्यतो यह है कि मुन्शी जी झूठा अपराध स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और लालारामशरणदास रईस मेरठ के ऊपर आरोपित करते हैं वह सब अपराध मुन्शीजी ही का है क्योंकि जब मुन्शी जी पर मजिस्ट्रेट मुरादाबादने ५००) रु० दण्ड किये थे उस के पश्चात् मुन्शीजी मेरठ में आये (जहा उस समय स्वामीजी भी उपस्थित थे) और कहाकि यह विवाद सब वेदमतानुयाइयों के ऊपर समझना चाहिये न केवल मुझ परइस पर स्वामीजी और अन्य सब सज्जनोंने कहा कि यह ठीक है क्योंकि मुन्शीजी ने वेदमत की रक्षा के लिये इतना बड़ा परिश्रम किया है इस लिये इस समय इस मामलेमें सब वैदिकोंको सहायता करना उचित है, इस पर सब की यही सम्मति हुई कि इस बात के लिये एक सभा नियत हो और चन्दा इकट्ठा करे जिसमे उसके आय व्ययका हिसाब वह सभा रक्खे और मुंशीजी को उसमें से इतना धन दिया जाय कि जितना खर्च उचित होना हो । अत को यह सभा मेरठ में नियत हुई और मुंशीजी से कहा कि जो कोई आपके पास रुपये भेजे उसको आप भी इस सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदासजी के पास भेज दिया करें और उसके आय व्ययकी परताल (जाच) यह सभा किया करे और हिसाबभी लेवे इन सब बातों को मुन्शी जी ने भी स्वीकार स्वामीजी आदिके सम्मुख कियाथा और वह भी उसी समय निश्चय हुआथा कि सिवाय उस सभा के सभासदोंके दूसरे से उस धन का आयव्यय व संख्या प्रसिद्ध तब तक न करनी चाहिये कि जब तक यह कार्य पूरा न हो जाय, यदि चदे का धन कम आवे और खर्च अधिक करना हो तो किसी योग्य धनाढ्य पुरुष से सभा लेकर कार्य्य करे इसी लिये लाला रामशरण दास जी ने जमा हुये धन की सख्या मुन्शी जी को नहीं बतलाई थी। क्योंकि सभा की आज्ञा बतलानेकी नहीं कि इस गुण को मुन्शीजी ने दोष समझा, धन्य है मुन्शीजीकी बुद्धिमत्ताको इससे सब सज्जन लोग समझ सकते हैं कि यह मुन्शी जी को संख्या न बतलाने में लाला रामशरणदास जी का दोष है ? व इस पर क्रोधित होकर यथा तथा कुवाच्य कहने लिखने में मुन्शी इंद्रमणि जी का ? इस

विपरीत व्यवहार का कारण यह विदित होता है कि जब इधर उधर से बहुत धन मुन्शी जी के पास आने लगा तब लोभ के वश में होकर जो पूर्वोक्त नियमानुसार अर्थात् जितना धन मुन्शी के पास आवे वह मेरठ सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदास जी के पास तो भेजना दूर रहा किंतु जब लाला रामशरणदास जी ने कई बार पत्र भेज कर हिसाब मांगा तो मुन्शी जी ने मौन साध के हिसाब नहीं दिया, तब लाला रामशरणदास जी को निश्चय हुआ कि मुन्शीजी के मनमें कुछ अन्य आशा है इस बात के निश्चयार्थ लाला श्यामसुन्दर रईस मुरादाबाद के पास लाला रामशरणदास जी ने पत्र भेजा कि मुन्शी जी से हिसाब पूछ कर मेरे पास भेजो उनको भी मुन्शी जी ने हिसाब नहीं दिया किंतु इस सर्व वैदिक मत के रवार्थ धन को अपना निज धन समझ लिया तब से लाला रामशरणदास जी ने मुन्शी जी को धन देना बन्द किया और स्वामी जी को पत्र द्वारा विदित किया तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इस समय इस बात के होने से कार्य में विघ्न होगा कार्य होने दीजिये और ६००) रु० जो मांगते हैं देदीजिये तब उन्होंने देदिये और इनसे अधिक धन मुन्शीजी को कितना दिया और कितना लाला रामशरणदास जी के पास जमा रहा यह बात हिसाब छपने से सब को प्रसिद्ध हो जायगी और स्वामी जी ने उक्त लाला श्यामसुन्दर कोठी वाले रईस मुरादाबाद के पास पत्रभेजा कि मुन्शीजी से हिसाब लेकर ला० रामशरणदासजी के पास भिजवा दीजिये उन्होंने उत्तर दिया कि मुन्शी जी हिसाब नहीं बतलाते, धन्य रे धन, तेरे में बड़ी आकर्षण शक्ति है तू बड़े २ को भी धर्म से डिगाकर नीचे गिरा देता है, फिर जब देहरादून से आते समय मेरठ के स्टेशन पर लाला रामशरणदासादि से मेल हुआ तब मुन्शी जी के विषय की बात सुन बड़ा आश्चर्य मान के उनसे (स्वामी जी ने) कहा कि मैं कोयल इसीलिये ठहरके वहां मुन्शीजी को बुलाकर समझा दूंगा स्वामीजी ने कोयल से आकर मुन्शीजी को बुलानेके लिये तार दिया उसके उत्तर में मुन्शीजी ने तार में खबरदी कि मैं बीमार हूँ नारायणदास प्रयागको गयाहै अर्थात् मैं नहीं आ सकता। पश्चात् स्वामीजी ने आगरे में आकर मुन्शीजी के पास पत्र भेजा कि यदि यह बात सत्य है तो इसमें आपकी बड़ी निन्दा होगी आप यहां शीघ्र आइये । मुन्शीजी ने क्रोधित होके असभ्यताकी बात जो कि उनके लिखनेयोग्य न थी लाला रामशरण-

दासजी की निन्दा पूर्वक बहुतसी लिखी और यह भी उस पत्रमें लिखा कि आप लाला रामशरणदासजी से हिसाब मगवाइये तब स्वामीजी ने लाला रामशरणदास जी को लिखा कि आप हिसाब लिखकर मेरे पास यहां भेज दीजिये जब मैं आपके हिसाब को मुन्शीजी को दिखा दूगा तब वे भी अपना हिसाब देंगे इसके थोड़े ही दिनों के पश्चात् मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासजी आदि मथुरा होते हुये आगरेमें स्वामी जीके पास आये जब स्वामीजी ने उनसे कहा कि हिसाब लाये हो या नहीं तब मुशी जी ने कहा कि हा लाएहैं, परन्तु पहिले लाला रामशरणदासजीका हिसाब मगवालें तब हम भी दिखादेंगे तब स्वामीजी ने कहा कि जब आपके पास हिसाब है तो क्यों नहीं दिखलाते तब पुन मुन्शीजी और लाला जगन्नाथदासजी ने कहा कि उनका हिसाब आने दीजिये तब दिखलावेंगे, पाठकगणो परमेश्वरकी कृपा से और लाला राम शरणदास जी की सचाई से दूसरे ही दिन मेरठ से हिसाब आगया स्वामी जी ने मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासको दिखलादिया पश्चात् स्वामीजीने कहा कि अब तो तुम दिखलाओ, तब मुन्शी जी के कहने से लाला जगन्नाथदास जी ने बेग को हाथ लगाया इधर उधर हाथ फेरफार कर कहा कि मुन्शी जी वह हिसाब का कागज तो मुरादाबाद ही में भूल आया हू, सभ्यगणो! देखो क्या मिली हुई गुरु चेले की भक्तिहै तब स्वामीजी ने कहा कि जितना स्मरण हो उतनाही कठसे लिखवाइये, तब मुंशीजी लिखवाने लगे अनुमान है कि २०००) दो हजार तक का हिसाब तो लिख- वाया और कहने लगे कि अब मुझे याद नहीं है हम मुरादाबाद पहुँच कर शीघ्र हिसाब भेज देंगे सो आज तक नहीं भेजा। अब आप लोग इन बातों से विचार लेवें कि मुशी जी सच्चे हैं व लाला रामशरणदास जी फिर मुंशी जी और लाला जगन्नाथ जी व्यर्थ वितण्डावाद करने लगे और कहा कि २५०) लाला बलभद्रास जी ने भेजेथे सो इस हिसाबमें जमा क्यों नहीं ? तब स्वामीजी ने कहाकि वे रुपये तो गुरुदासपुर से मेरे नाम आये थे मैंने लाला रामशरणदासजीको दियेथे न जाने उन्होंने जमा क्यों नहीं किए इसका समाचार मैं लिख कर मंगवा दूंगा, स्वामी जी ने उसी दिन लाला रामशरणदासजी को पत्र लिख उत्तर मंगवाया तब उन्होंने लिखा कि यह मेरे मुशी की भूल से लाहौर के रुपयों के साथ गुरुदासपुर के भी २५०) जमा लिखे गये हैं अर्थात् जिस दिन १५०) रुपया लाहौर समाज से आये

रे उसी दिन २५०) के नोट आपने भी दिये थे भूल से ४००) लाहौर समाज के नाम से जमा किए हैं अब मुन्शी जी इसका निश्चय करावें अर्थात् इन २५०) रु० के सिवाय किसी ने स्वामी जी के पास रुपया नहीं भेजा यदि भेजा हो तो जिसके पास स्वामीजी की हस्ताक्षरी रसीद होगी भले ही प्रसिद्धि के लिये छपवा देवे किंतु स्वा० जी की कुछ इससे विपरीत बात हो तो स्वामी जी प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि सिवाय २५०) के मेरे पास एक कौडी भी किसी की नहीं आई क्योंकि जो कोई स्वामी जी से पूछता वा पत्र भेजता था तो स्वामी जी यही उत्तर देते थे, कि जो भेजना हो सो लाला रामशरणदास जी के पास मेरठ सभा को भेजो क्योंकि उसी सभा के आधीन यह सब प्रबन्ध है । इस उत्तम प्रबन्ध को तोड़ने वाले मुन्शी जी हैं कि जिन्होंने भारतमित्रादि समाचारों मे अपना मतलब सिद्ध करने के लिये अंड बंड छपवाकर स्वप्रयोजन सिद्ध किया और अपनी प्रशंसा कर बट्टा लगाया, शोक है यह 'धन' बुरी बला है, जो बडे २ चतुरों को भी फंसा लेता है, उसी दिन स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि हिसाब ठीक २ मेरठ सभा में भेज दीजिए जो एक नियम हुआ है उसका तोड़ना अच्छा नहीं आप पूर्वक्त नियमानुसार बर्तिये जिससे प्रीति पूर्वक सब सहायक रहें इसी में अच्छा है, विरोध होना अच्छा नहीं तब तो मुन्शी जी और लाला जगन्नाथ दास जी दोनों क्रोधाविष्ट होकर कहने लगे कि हम से हिसाब लेने वाला कौन है इसके मालिक हम हैं हमारे पर यह सब मामला चला है, हमारे नाम चन्दा जो आता है हमारा ही है और लाला जगन्नाथदासजी बोले कि यदि आप से कोई वैदिक यन्त्रालय का हिसाब पूछे तो क्या आप देंगे स्वामी जी बोले कि कल लेते हो वह आज ही लो यहा कोई गुप्त नहीं किंतु जब कोई आर्य्यसमाज का प्रतिष्ठित सभासद हिसाब लेना चाहे उसको कोई अटकाव नहीं फिर स्वामी जी ने मुन्शी जी को एकांत मे लेजा के समझाया * कि ऐसी बात करना आप को उचित नहीं है एक तो वह बात जो मेरठ में आपने कही थी कि यह सब वैदिक धर्म्म वालों का मामला है मेरा अकेलेका नहीं और इससे विरुद्ध आज की बात है कि मेरे ही अकेले का मामला आदि है । सुनिये

* यह प्रकट है कि बहुधा बातों में स्वामी जी गुप्त भाव से भी काम लेते थे ।

दासजी की निन्दा पूर्वक बहुतसी लिखी और यह भी उस पत्रमें लिखा कि आप लाला रामशरणदासजी से हिसाब मंगवाइये तब स्वामीजी ने लाला रामशरणदास जी को लिखा कि आप हिसाब लिखकर मेरे पास यहा भेज दीजिये जब मैं आपके हिसाब को मुन्शीजी को दिखा दूगा तब वे भी अपना हिसाब देंगे इसके थोड़े ही दिनों के पश्चात् मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासजी आदि मथुरा होते हुये आगरेमें स्वामी जीके पास आये जब स्वामीजी ने उनसे कहा कि हिसाब लाये हो या नहीं तब मुशी जी ने कहा कि हा लाएहैं, परन्तु पहिले लाला रामशरणदासजीका हिसाब मगवालें तब हम भी दिखादेंगे तब स्वामीजी ने कहा कि जब आपके पास हिसाब है तो क्यों नहीं दिखलाते तब पुन मुन्शीजी और लाला जगन्नाथदासजी ने कहा कि उनका हिसाब आने दीजिये तब दिखलावेंगे, पाठकगणो परमेश्वरकी कृपा से और लाला रामशरणदास जी की सचाई से दूसरे ही दिन मेरठ से हिसाब आगया स्वामी जी ने मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासको दिखलादिया पश्चात् स्वामीजीने कहा कि अब तो तुम दिखलाओ, तब मुन्शी जी के कहने से लाला जगन्नाथदास जी ने बेग को हाथ लगाया इधर उधर हाथ फेरफार कर कहा कि मुन्शी जी वह हिसाब का कागज तो मुरादाबाद ही में भूल आया हू, सभ्यगणो! देखो क्या मिली हुई गुरु चेले की भक्तिहै तब स्वामीजी ने कहा कि जितना स्मरण हो उतनाही कंठसे लिखवाइये, तब मुंशीजी लिखवाने लगे अनुमान है कि २०००) दो हजार तक का हिसाब तो लिख वाया और कहने लगे कि अब मुझे याद नहीं है हम मुरादाबाद पहुँच कर शीघ्र हिसाब भेज देंगे सो आज तक नहीं भेजा। अब आप लोग इन बातों से विचार लेवें कि मुंशी जी सच्चे हैं व लाला रामशरणदास जी फिर मुंशी जी और लाला जगन्नाथ जी व्यर्थ वितण्डावाद करने लगे और कहा कि २५०) लाला बलभद्रदास जी ने भेजेथे सो इस हिसाबमें जमा क्यों नहीं? तब स्वामीजी ने कहाकि वे रुपये तो गुरुदासपुर से मेरे नाम आये थे मैंने लाला रामशरणदासजीको दियेथे न जाने उन्होंने जमा क्यों नहीं किए इसका समाचार मैं लिख कर मंगवा दूंगा, स्वामी जी ने उसी दिन लाला रामशरणदासजी को पत्र लिख उत्तर मगवाया तब उन्होंने लिखा कि यह मेरे मुंशी की भूल से लाहौर के रुपयों के साथ गुरुदासपुर के भी २५०) जमा लिखे गये हैं अर्थात् जिस दिन १५०) रुपया लाहौर समाज से आये

थे उसी दिन २५०) के नोट आपने भी दिये थे भूल से ४००) लाहौर समाज के नाम से जमा किए हैं अब मुन्शी जी इसका निश्चय करावें अर्थात् इन २५०) रु० के सिवाय किसी ने स्वामी जी के पास रुपया नहीं भेजा यदि भेजा हो तो जिसके पास स्वामीजी की हस्ताक्षरी रसीद होगी भले ही प्रसिद्धि के लिये छपवा देवे किंतु स्वा० जी की कुछ इससे विपरीत बात हो तो स्वामी जी प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि सिवाय २५०) के मेरे पास एक कौड़ी भी किसी की नहीं आई क्योंकि जो कोई स्वामी जी से पूछता था पत्र भेजता था तो स्वामी जी यही उत्तर देते थे, कि जो भेजना हो सो लाला रामशरणदास जी के पास मेरठ सभा को भेजो क्योंकि उसी सभा के आधीन यह सब प्रबन्ध है। इस उत्तम प्रबन्ध को तोड़ने वाले मुन्शी जी हैं कि जिन्होंने भारतमित्रादि समाचारों में अपना मतलब सिद्ध करने के लिये अंड बंड छपवाकर स्वप्रयोजन सिद्ध किया और अपनी प्रशंसा कर बट्टा लगाया, शोक है यह 'धन' बुरी बला है, जो बड़े २ चतुरों को भी फंसा लेता है, उसी दिन स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि हिसाब ठीक २ मेरठ सभा में भेज दीजिए जो एक नियम हुआ है उसका तोड़ना अच्छा नहीं आप पूर्वकृत नियमानुसार वर्तिये जिससे प्रीति पूर्वक सब सहायक रहें इसी में अच्छा है, विरोध होना अच्छा नहीं तब तो मुन्शी जी और लाला जगन्नाथ दास जी दोनों क्रोधाविष्ट होकर कहने लगे कि हम से हिसाब लेने वाला कौन है इसके मालिक हम हैं हमारे पर यह सब मामला चला है, हमारे नाम चन्दा जो आता है हमारा ही है और लाला जगन्नाथदासजी बोले कि यदि आप से कोई वैदिक यन्त्रालय का हिसाब पूछे तो क्या आप देंगे स्वामी जी बोले कि कल लेते हो वह आज ही लो यहां कोई गुप्त नहीं किंतु जब कोई आर्य्यसमाज का प्रतिष्ठित सभासद हिसाब लेना चाहे उसको कोई अटकाव नहीं फिर स्वामी जी ने मुन्शी जी को एकांत में लेजा के समझाया * कि ऐसी बात करना आप को उचित नहीं है एक तो वह बात जो मेरठ में आपने कही थी कि यह सब वैदिक धर्म्म वालों का मामला है मेरा अकेले का नहीं और इससे विरुद्ध आज की बात है कि मेरे ही अकेले का मामला आदि है। सुनिये

* यह प्रकट है कि बहुधा बातों में स्वामी जी गुप्त भाव से भी काम लेते थे ।

मुन्शी जी यदि मैं आपको पहले से ऐसा जानता तो आपके साथ एक क्षणमात्र भी न ठहरता और आपका कुछ भी सामर्थ्य नहीं था कि अकेले इस प्रकार सहायता प्राप्त कर सकते । अस्तु मैं तो उसी बात को समझा हूँ कि यह सब वैदिक मतानुयाइयों के साथ की बात है । तब तो मुन्शी जी कुछ शांत हुए, पीछे स्वामी जी ने कहा कि अस्तु अब शेष कार्य्य आप सिद्ध कीजिये और प्रयाग में दो पुरुषों का नाम लिखवाया कि उनकी सम्मति से सब काम कीजियेगा, और मुरादाबाद में पहुँच के हिसाब मेरठ में शीघ्र भेज दीजियेगा, मुन्शी जी ने कहा कि जाते ही भेज दूगा सो भी न किया और न हिसाब भेजा करते और भेजते तो जब उनके मन में शुद्ध भाव होता प्रयाग में भी गुप्त व्यय कर कराके (जैसा कि मुरादाबाद जजी में व्यय व्यवस्था हुई थी) अपनी नियत का फल पाकर चले आये फिर भी न जाने किस २ सज्जन पुरुष के पुरुषार्थ से श्रीमान् गवर्नरजनरल साहिब बहादुर से प्रार्थना करके १००) रुपये का दण्ड भी माफ कराया गया, यदि अब भी मुन्शी जी अपनी बात को सच्चा करना चाहें तो मुसलमानों के साथ के मामले में जहां से जितना २ धन, जिस २ ने भेजा हो उन सबका धन नाम ठिकाना आदि लिखें और जितना २ जिस कार्य्य में व्यय हुआ वह प्रसिद्ध सब समाचारों में छपवा दें और जितना धन उस मामले के विषय में व्यय से शेष रहा हो उसको मेरठ सभा में भेज देवें क्योंकि जो मेरठ सभा का यह विचार निश्चय हुआ था कि यदि मुन्शी जी के मामले से चन्दे का धन बचे तो उसका क्या किया जाय इस पर सबकी यही सम्मति हुई थी कि उस धन को ॥) आने ब्याज में किसी धनाढ्य के पास रक्खा जाय और जब अन्य मतावलम्बियों के साथ वैदिक आर्य्यों का विवाद राजन्याय घर में चले तब उसी में से इसका व्यय किया जाय अन्यत्र नहीं क्योंकि यह धन इसी लिये इकट्ठा किया जाता है और जैसा मुन्शी जी पर कष्ट पड़ा है सम्भव है कि अन्यपर भी कभी न कभी आन पड़े इस लिये इस धन की स्थिरता और उन्नति सदा करते जाना चाहिये । परन्तु पाठक गण ! इस महोपकारक कार्य्य को मुन्शी जी के लोभने बढ़ने न दिया, अब बुद्धिमान लोग विचार लेवें कि इसमें स्वामी जी का और लाला रामशरण दास जी का अन्यथा व्यवहार है वा मुन्शी इन्द्रमणि जी का अधिक तिरना

बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं क्योंकि प्राज्ञजन थोड़े ही लेख से बहुत समझ लेते हैं, अलमिति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ॥ निधि रामाङ्क चन्द्रेऽब्दे पौष मासे सिते दले । प्रतिपत्सौम्य वारेहि पत्रमेतद् लेखितम् ॥ १ ॥ सम्वत १९३९ पौष शुक्ला० १ बुधवासरे।

(वही आपका परम मित्र उचित वक्ता)

॥ देशहितैषी ॥ हमने अपने नियमानुसार दोनों महाशयों के पत्र यथावत् प्रकाश कर दिये अब हम इतना और कह सकते हैं कि जिस प्रकार से हमारे पत्र प्रेरक "उचित वक्ता" ने जो मुन्शी जी के प्रति लिखा है कि "अपनी बात को सच्ची करने के लिये इस मामले में जहा २ से जितना रुपया जिस २ ने भेजा हो उनका नाम धन ठिकानादि सहित लिखें और जितना जिस जिस कार्य्य मे खर्च हुआ हो प्रसिद्ध सब समाचारों मे छपवा दें इत्यादि" वास्तव में यह बहुत उत्तम बात है और ऐसा करने में मुन्शी जी को लेशमात्र भी कलङ्क नहीं लग सकता और वैसे मुन्शीजी इससे विरुद्ध अपना अमूल्य समय वृथा खोकर वादानुवाद से समाचारो के कालम काले भले ही किया करो कभी इस कलङ्क से नहीं बच सकते और यह हम सत्य कहते हैं कि जो सच्चा होता है उसको टाल-मटोल करने से क्या प्रयोजन। यदि मुन्शी इन्द्रमणिजी सच्चे हैं तो अपना हिसाब समाचारपत्रों द्वारा प्रकाशित कर अपनी सत्यताका परिचय दिखावें अन्यथा व्यवहार करने से मुन्शी जी के लिये अच्छा फल नहीं निकलते दीखता दूसरे अब हम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और लाला रामशरणदास जी से भी सविनय प्रार्थना करते हैं कि यदि हमारे पत्र प्रेरक उचित वक्ता का यह कथन सत्य है तो आप महाशयो को भी उचित है कि जितना २ रुपया मुन्शी इन्द्रमणि जी के मुकद्दमे के विषयका आप लोगोंके पास आया है उसको किसी समाचारपत्र द्वारा प्रकाशित कर इस विषय का शीघ्र निर्णय करना योग्य है और जब यह निश्चय हो जाय कि इतना रुपया मुन्शी जी की सहायता में आया और इतना खर्च होकर इतना बचा उस बचे हुये धन को उसी नियमानुसार (जो मुन्शी जी आदि ने मेरठ समाज में स्वीकार किया था) किसी महाजन की कोठी में ॥) के सूद पर दे दिया जाय और जब २ अन्य मत वालों से वैदिक मतानुयायियों का

झगड़ा पड़े तो इस रुपये से सहायता ली जाया करे । (सपादक देशहितैषी)

पूर्वोक्त लेख का यथार्थ उत्तर कई मास पीछे मुन्शी जी के शिष्य लाला जगन्नाथ दास ने उर्दू अक्षरों में पुस्तकाकार सुदर्शन यन्त्रालय मुरादाबाद में छपाकर प्रकाशित किया जिसमें प्रथम ही यह लिखा है ।

मुन्शी इन्द्रमणि का इस्तिगास स्वामी दयानन्द सरस्वती का संन्यास मय लफ पंडित जगन्नाथ दास मतवअ सुदर्शन मुरादाबाद में मुन्शी नारायणदास के अहतमाम से मत्बूअ हुआ ।

अब उर्दू से नागरी में अनुवाद करके हम यहां लिखते हैं, ।

परमात्मा जयति ।

सत्यमेव जयतेनानृत सत्येनपन्था वितती देवयान ।

आर्य्य भाइयों को विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक लेख खेद कारक सर्वथा मिथ्या मुन्शी इन्द्रमणि के विषय में "देश हितैषी" मासिकपत्र मास माघ सम्वत् १९३९ मुताबिक मास फरवरी सन् १८८३ ई० में अन्य मनुष्य के नाम से मुद्रित कराया है यह कार्य्य महानिंदनीय है आर्य्य पुरुषों के करने योग्य नहीं है क्योंकि जैसा आत्मा होता है, उसके प्रतिकूल चलना महा पाप है जैसे कहा है, ।

अन्यथा सन्तमात्मान मन्यथा सत्सुभाषते ।
किंन तेन कृतंपापं चौरिणात्मापहारिणा ॥ १ ॥

अब मैं प्रथम उसके लेख को लिखता हूँ फिर उत्तर लिखता हू जिससे आर्य्यगण सत्याऽसत्य भली प्रकार निर्णय कर सकें * ।

जिन साहिबों ने मुन्शी जी को चन्दा दिया उन्होंने उनको अपने हस्ता क्षरी रसीद दे दी इस लिये स्वामी जी को उनसे हिसाब मांगना उचित नहीं है बस

---

* लाला जगन्नाथ दास ने अपनी पुस्तक इस तरह पर रची है कि प्रथम स्वामी जी का लेख फिर अपना परन्तु हम यहा केवल लाला जगन्नाथ दास जी का ही लेख ग्रहण करते हैं क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती का लेख ऊपर सम्पूर्ण लिखा जा चुका है ।

मुन्शी जी को क्या जरूरत है कि आमदनी व खर्च का हिसाब मुद्रित करावें इ स्वामी दयानन्द सरस्वती को प्रथम दिन से ही उचित था कि अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिये सारी आमदनी व खर्च चन्दा का हिसाब मुन्शीजी को देते कि स्वामी जी ने जा बजा लोगों को पत्र लिखे कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें के लिये चन्दा एकत्र करके हमारे पास भेजो, इसी प्रकार लाला रामशरणदास को मुकद्दमें के कचहरी में दायर रहते रहते उचित था कि चन्दा के द्रव्य की संख्या से मुन्शी जी को सूचित करते कि उन्होंने मुन्शी इन्द्रमणिजी के नाम से स्थान २ में चन्दा लेकर अपने घर अमानतके तौरपर जमा किया आश्चर्य है कि इन दोनों महाशयों ने अब तकभी कुछ प्रगट नहीं किया कि कितना रुपया उनके पास आया और कितना खर्च हुआ और कितना शेष है न्यायवान विचारें कि क्या इनको यही उचित था कि चन्दे का रुपया न तो मुकद्दमे में लगावें और न मुन्शी इन्द्रमणि को देवें अब ढाई वर्ष पीछे जब उनको मुशी इन्द्रमणि ने दबाया तो झूठे बहाने करने लगे मुशी इन्द्रमणिका दावा झूठ नहीं किंतु अक्षर २ सत्य है कि स्वामी जी और उक्त लाला जी न बहुधा शहर नगरों के योग्य आर्य्य पुरुषों को पत्र पठाये कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें के लिये चन्दा करके हमारे पास रुपया रवाना करो हम ज्यों का त्यों उनको दे देंगे (परन्तु प्रथम से ही उनको एक कौड़ी देने का इरादा नहीं था) जब उक्त मुकद्दमे की अपील जजी मुरादाबाद मे दायर थी मुन्शी इन्द्रमणि को छः सौ रुपये बैरिस्टर हिल साहिब के पास भेजने की आवश्यकता हुई तो मुन्शी इन्द्रमणि ने खुद मेरठ जाकर लाला रामशरणदास से कहा कि छः सौ रुपया बैरिस्टर साहिब के पास भेजना है चार सौ तो मेरे पास हैं दोसो चन्दा के रुपये मे से जो आपके पास बतौर अमानत जमा है इनायतकीजिये, लाला रामशरणदास ने जवाब दियाकि यहा से तो अभी तुमको कुछ न मिलेगा, मुरादाबादही सेतदबीर करके भेज दो और इस सपूर्ण कार्य के कार्याध्यक्ष स्वामी दयानन्द जी हैं इस लिये यह अपराध उनका ही है, किन्तु लाला रामशरणदासका विशेष अपराध नहीं है, उन्होंने तो व्यर्थ स्वामी जी की बातों मे आकर बदनामी का टोकरा शिर पर उठाया जो गुरु कि अधर्म का उपदेश करे उसको शीघ्र त्याग देना चाहिये । देखो—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथ प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ १ ॥

फिर जो तुम कहते हो कि बिलकुल क्सूर मुन्शी जी का है सो महामिथ्या है, क्योंकि जब लोगों ने मुन्शी जी के मुकद्दमें के लिये स्वामीजी और लालासाहब के पास रुपया भेजा और स्वामी जी ने उस रुपये को खुद गडप करना चाहा तो ऐसी हालत में स्वामी जी से मवाखजा करना मुन्शी जी का अपराध क्योंकर हो सकता है किस वास्ते कि स्वामी जी और लाला साहब मुन्शी जी के पास रुपया पहुँचाने के मार्ग थे यह रुपया स्वामी जी के व्यय के लिए एकत्रित नहीं हुआ था यहा से आर्य भाई झूठ सच का स्वत. निर्णय कर सक्ते हैं।

स्वामी जी अपने लेख से यह सिद्ध करते हैं कि मुन्शी जी ने स्वामीजी से खुद चंदा एकत्रित करने की प्रार्थना की परतु यह सर्वथा झूठ है, यथार्थ तो यह है कि स्वामी जी मुशी जी को आप ही तार देकर बुलाया परतु जब मुशी जी का तार पहुँचने पर भी मेरठ नहीं गये तो स्वामी जी ने चिट्ठी भेज कर मुन्शी जी को बुलाया तब वे प्यारेलाल तहवीलदार साबिक तहसील सम्भलको साथ लेकर स्वामी जी के पास गए अगर मान लिया जावे कि उन्होंने यह ही कहा कि मुकदमा मजकूर कुल वेदमतानुयाइयो के ऊपर है तो उसमें कोई बुराई की बात नहीं है कि यथार्थ में झगडा संपूर्ण वैदिक मत वालों पर था इस हेतु उक्त मामलेमें वह लोगभी भागी हुए जो कि स्वामी जी के प्रतिकूल थे जैसे लाला मथुरादास जनरल एकाउण्टेण्ट हेड क्लर्क और लाला निहालचन्द ठेकेदार जेल और सेठ रामरतन इस प्रकार के और बहुधा मनुष्य हैं, कि जिनके नाम से स्वामी जी भली प्रकार भेदी हैं, निदान मुन्शी इन्द्रमणि ने स्वामीजी या लाला रामशरणदास से चदा करने के लिए किसी समय भी प्रार्थना नहीं की, मुरादाबाद मे चदा के लिए कमीशन होने वाली थी कि समाचार सुन कर धर्म के जोश मे आकर स्वामी जी आदिक भी शामिल हो गए, इस बात की साक्षी के वास्ते लाला रामशरण दास का एक खत रजिष्ट्री शुदा जो कि लाला श्यामसुंदर रईस मुरादाबाद के नाम आया था इस प्रकार है।

नवाजिज फरमाय यह लाला श्यामसुदर साहब जाद इनायतहुम् ।

बाद नमस्ते के गुजारिश यह है, कि जुबानी मास्टर शादीराम के मालूम हुआ कि जनाब का इरादा वास्ते चदा करने खर्च मुकद्दमे मालूमें के बाद का है

यानी जो कुछ मुकद्दमें में खर्च होवे उसका चंदा बादको वसूल किया जावे, स्वा
जी महाराज से जो इसका जिक्र हुआ तो यह करार पाई कि चंदा एकत्रित करन
मुकद्दमे से पहिले चाहिए, पीछे दिक्कत होगी और बहुत कम वसूल होगा इस लि
चंदा भी आपको तकलीफ देता है कि मेरी राय नाकिस में भी स्वामीजी का कहन
यथार्थ है तदनुसार करना ही उचित है, और यह भी जानना चाहता हूं कि उ
मुकद्दमे के विषय कमेटी की क्या सम्मति निश्चित हुई, यदि अभी तक कमेटी न
हुई हो तो उसका शीघ्र प्रबन्ध होना चाहिये और उसकी सम्मति के समाचार मु
दास से भी शीघ्र पठाइए, और मुंशी इन्द्रमणि साहब को इससे पहिले निज निवे
दन पत्र द्वारा लिखा था कि उक्त महाशय राजा कश्मीर और बलरामपुर व राज
पटियाला को मुकद्दमे के हाल से भेदी करें और जैसी कोशिश कि नवाब रामपु
ने की है वैसी ही इन महाशयों से कराई जावे, ज्यादा नमस्ते। रकीमें नियाज
रामशरणदास, अज मेरठ, मवर्रखा २ अगस्त सन् १८८० ई०।

इस पत्र के लेख से प्रकट है कि मुन्शी इन्द्रमणि के मित्रों का विचार उक्त
मुकद्दमे के पूर्ण होने पर चंदा करनेका था परंतु स्वामी दयानन्द सरस्वती और
लाला रामशरणदास ने उनको मुकद्दमे के फैसला होने से पहिले ही चंदा करने
पर उपस्थित किया, अब एक कथा और भी सुनिये कि स्वामी जी ने तो थोडा
सा झूठ बोला कि मुन्शी इन्द्रमणि चंदा के लिये हमसे प्रार्थी हुए किंतु उनके
चेले लाला जवाहरसिंह सक्रेटरी आर्यसमाज लाहौर ने इस कहलावत के अनु-
सार "बड़े मियां सो बड़े मियां, छोटे मियां सुभान अल्लाह" झूठ बोलने में आकाश
पाताल को मिला दिया, वृत्तांत इस प्रकार है कि तारीख २१ जनवरी सन्
१८८३ ई० आर्य्यसमाज लाहौर के सामने मुन्शी इन्द्रमणि की निन्दा और
बुराई अपने आपको कलङ्कित करके कहने लगे कि हमारे पास लाला रामशरण
दास की चिट्ठी मेरठ से आई है, उसमें लिखा है कि जब तारीख मुकद्दमा में
बीस दिन शेष थे तब इन्द्रमणि खुद मेरठ आया और हमारे मकान पर आ
कर लम्बा पड़ गया और कहने लगा कि अब हमको तुम ही बचाले वाले हो
उस समय हमने उससे कहा कि कुछ डर नहीं है, और उसी समय हमने एक वकील
कर दिया और एक आदमी जिस का नाम शादीलाल है उसके साथ किया कि

मुकद्दमें के अंत तक वह इन्द्रमणि के संग मुरादाबाद में रहा और अब इन्द्रमणि ने भारत मित्र कलकत्ते में यह लिखवाया कि जिन महाशयों को मेरे झगड़े की सहायता के लिये द्रव्य देना स्वीकार हो वह सीधा मेरे पास भेज देवे दूसरी जगह का भेजा रुपया मुझ को नहीं मिलता उस समय बहुधा मनुष्यों ने सीधा मुरादाबाद रुपया भेजा जब हमने इन्द्रमणि से कहा कि अब तक तुम्हारे पास कितना रुपया आया और कितना खर्च हुआ इस आमदनी और खर्च का हिसाब हम को लिख कर दो तो इन्द्रमणि ने हिसाब देने से इनकार किया तब हम भी रुपया देने से चुप कर गये क्योंकि हमने रुपया उसके झगड़ा मिटानेकी सहायता के लिये इकट्ठा किया था कुछ उस के घर के खर्च के लिये नहीं किया था और इन्द्रमणि ने जो विज्ञापन में लिखा है कि मेरे तो केवल छ सौ रुपया हाथ आया शेष स्वामीजी और लाला रामशरण दास के पास रहा यह भी झूठ है, हमारे तो नौ सौ छप्पन ९५६) रुपये और कई आने खर्च हुये और चारसौ कई रुपये हमारे पास बतौर अमानत शेष हैं, जिस काम के लिये लोग कहेंगे उस में लगावेंगे यहां तक चिट्ठी का लेख है जो कि जवाहिरसिंह के कहने मूजिब कोई चिट्ठी रामशरण दास ने उनके पास भेजी हो हम को बिलकुल विश्वास नहीं है किंतु यह लाला जवाहिरसिंह की ही मनगढन्त तुहमत उक्त लाला साहिब पर मालूम होती है, सो हम जानते हैं कि आर्य्यसमाज में नाम लिखाने का शायद यही फल हो, और शायद यह लेख लाला रामशरण दास ने किया है तो बड़े आश्चर्य और खेद की बात है, स्वामीजी का लेख लालाजी को झूठा करता है और उक्त लालाजी का लेख स्वामीजी के लेख को मिथ्या सिद्ध करता है क्योंकि स्वामीजी ने देशहितैषी पत्र में मुद्रित कराया है कि मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ में आये और कहा कि यह मुकद्दमा सब वेदमतानुगाइयों पर है और लालारामशरण दास जवाहिरसिंह को लिखते हैं कि तारीख मुकद्दमें से २० दिन पहिले इन्द्रमणि खुद मेरठ आकर हमारे मकान पर राम्या हुन गया और कहने लगा कि अब हम को तुम ही बचाने वाले हो इत्यादि० ।

देखो आर्य्य भाईयो गुरु सच्चे हैं या चेले ? परमेश्वर का धन्यवाद है कि मुन्शी इन्द्रमणि के सत्य के प्रभाव से गुरु चेले को झूठा करता है और चेला गुरु

को इस झूठ का क्या ठिकाना है कि तारीख मुकद्दमे से २० दिन पहिले मेरठ आया हे आर्य्य भ्रातृगण इस विषय मे अदालत गवाह है कि तारीख २२ जौलाई सन् १८८० ई० को मुन्शी इन्द्रमणि पर मजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने मुकद्दमा कायम किया और दूसरे दिन शहादत की तातील थी तीसरे दिन पांच सौ रुपये जुरमाना करके मुकद्दमे का अंत कर दिया बस २० दिन का कब अवकाश मिला कि मेरठ जाने की नौबत पहुँची, अगर लाला रामशरण दास की यह मुराद है, कि जजी में अपील के पेश होने से २० दिन पहिले मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ आये तो यह भी झूठ है, क्योंकि उस समय मुन्शी इन्द्रमणि को क्या भय था कि लाला रामशरण दास की ईश्वरता पर भरोसा करके उनके मकान पर लम्बे पडते और कहते कि अब हमको तुम ही बचाने वाले हो क्योंकि मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक अत फल अधिक तर यह था कि जजी मुरादाबाद से अपील नामंजूर होकर मजिस्ट्रेट का हुक्म बहाल रहता और पांच सौ रुपये दण्डके थे उनमे से चार सौ नहीं छूटते, भय था तो पहिली कचहरी मे ही था कि दो वर्ष तक की कैद भी सम्भव थी, मु० इन्द्रमणि तो एक परमात्मा का दास है, ब्रह्मा के सामने भी लम्बा नहीं पडेगा और हरगिज नहीं कहेगा कि हम को तुम ही बचाने वाले हो क्योंकि लम्बा पडना केवल परमात्मा के सन्मुख उचित है कि साष्टाङ्ग दण्डवत परमेश्वर के अतिरिक्त और किसी को नहीं की जाती है, और वही सबको कष्टों से बचाने वाला है, हमने फर्ज किया कि मुन्शी इन्द्रमणि उस झगडे के भय से कोई अनुचित उपाय भी करे परन्तु लाला रामशरण दास का आर्य्यपन कहाँ गया कि अपने को दण्डवत कराने को प्रसन्न हुये, और अपने मन मे विचार बैठे कि हम ही मुन्शी इन्द्रमणि को आफत से बचाने वाले हैं, इस राक्षसी विचार का क्या ठीक है, इसी निरते पर लाला साहिब अपने समाज को राजधानी बनाया चाहते हैं और एक लाख रुपया सब समाजों से जमा करके उपदेशक मण्डली स्थापित करने का इरादा करते हैं शायद है कि जैन राजाओं की तरह अपनी ईश्वरता प्रकट करावेंगे और यही उपदेश सुनावेंगे कि सम्पूर्ण समाजी जन लाला रामशरण दास के मकान को किवला व काबा (ईश्वर का मकान बैकुण्ठ) समान करें और सब ओर से उधर को ही झुकें, फिर यह जो लाला साहिब लिखते हैं कि इसी समय

हमने एक वकील कर दिया सरासर झूठ है और उनके झूठ होने पर अदालत मुरादाबाद और हाईकोर्ट गवाह हैं कि मजिष्ट्रेट के यहाँ मुन्शी इन्द्रमणि के वकील बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ थे और जजी मे मिस्टर हिल साहिब बैरिस्टर और बाबू रत्नचन्द्र और बाबू नरेन्द्रचन्द्र और लाला माधोदास वकील हाईकोर्ट और बाबू बैजनाथ वकील जजी ने तन मन से पैरवी की थी, अब लाला रामशरण दास और लाला जवाहिरसिंह शपथ पूर्वक कहें कि इनमें से उनका भेजा हुआ वकील कौनसा है, और किसने उनकी गांठ से फीसपाई है, फिर लाला साहिब ने जो लिखा है कि एक आदमी जिसका नाम शादीलाल है उस के साथ भेजा, इस का उत्तर यह है कि मुन्शी इन्द्रमणि के अभाग्य वस लाला शादीराम की भी मान हानि हुई, उक्त वचन से सिद्ध होता है कि चिट्ठी का विषय सर्वथा जवाहिरसिंह की बनावट है लाला रामशरण दास मास्टर शादीराम के विषय में भूलकर भी ऐसे शब्द न लिखें क्योंकि मास्टर शादीराम लालारामशरण दास के तद्वत् हैं, फिर लाला साहिब ने जो लिखा है कि जब इन्द्रमणि ने भारत मित्र कलकत्ते में यह लिखवाया * उसका उत्तर यह है कि जिले में मुकदमा दायरथा और मिस्टर हिल साहिब के पास छः सौ रुपया भेजने की आवश्यकता थी उस समय मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ गये और लाला रामशरण दास से कहा कि चन्दा के रुपये मे से दो सौ रुपये इनायत कीजिये तब लाला साहिब ने जवाब दिया कि रुपया यहा से न मिलेगा, इस बात से मुन्शी इन्द्रमणि ने समझ लिया कि लाला साहिब के दिल में कुछ हेर फेर है, तब तो उन्होंने शीघ्रता से भारत मित्रादि अखबारों में मुद्रित करा दिया कि जिन साहिबों को मेरे झगड़े की सहायता के लिये चंदा देना स्वीकार हो वह मेरे ही पास सीधा मुरादाबाद भेज दें दूसरों की मारफत भेजा हुआ चंदा मुझको नहीं मिलता, भारत मित्रादि के मुद्रित होते ही स्वामी जी के शुद्ध अंतःकरण की गंध सारे आर्यावर्त में फैल गई, क्योंकि लाला रामशरणदास के अधिदेव व प्रेरक स्वामी जी थे, फिर लाला साहब जो लिखते हैं कि उस समय बहुधा मनुष्यों ने सीधे मुरादाबाद रुपया भेजा इसका उत्तर यह है कि भारत मित्रादि में प्रकाशित हो जाने पर स्वामी जी के मन का

* ऐसा प्रथम आ चुका है ।

ईद लोगों को विदित हुआ तो अवश्य उनके पास चन्दा भेजने से बहुधा मनुष्य रुक गये और भेजने वालों ने सीधा मुन्शी जी के पास भेजना प्रारम्भ किया इससे यह सिद्ध होता है कि चन्दा देने वालों को केवल मुन्शी इन्द्रमणि की ही सहायता करनी प्रियथी, और स्वामी जी को उनके ही नाम से चन्दा दिया था, परन्तु जब लोगों को अखबारों द्वारा स्वामी जी का हाल खुला तो कुछ लोगों ने स्वामी जी के पास चन्दा भेजने से हाथ खेंच लिया, अब स्वामी जी कहते हैं कि चन्दा हमारी बदौलत था सर्वथा झूठ है, फिर लाला साहिब जो लिखते हैं कि इन्द्रमणिने हिसाब देने से इनकार किया उसका उत्तर यह है कि जब मुन्शीजी ने स्वामीजी की नीयत मे अन्तर देखा तो शीघ्र भारत मित्रादि पत्रों द्वारा प्रकाशित कराया और उनसे कहा कि तुमको हमसे हिसाब लेनेका मजाज नहीं है तुमने हमारे नाम से लाहौर व अमृतसर व फीरोजपुर व झेलम बटाला व मुलतान वगैरह से चन्दा जमा किया और अब तक एक कौड़ी मुकद्दमे मे न लगी, इस वास्ते तुम हमको हिसाब दो कि तुमने अपने तई मुन्शी इन्द्रमणि का एजट प्रकट किया है फिर लाला साहिब ने जो लिखा है कि तब हम भी रुपये देने से चुप हो रहे उसका उत्तर यह है कि तुमने दिया ही क्या ? जो देने से चुप हो रहे, जब कि प्रथम बारही तुमने दोसौ रुपये देने में टाल-मटोल बतलाई फिर किस मुँह से कहते हो कि हम भी रुपये देने से चुप हो रहे, फिर ला० साहिब जो कहते हैं कि हमने रुपया उसके मुकद्दमे के लिये इकट्ठा किया था उसका जवाब यह है कि धन्यवाद है परमात्मा को कि स्वामी जी के चेले ही ने उनकी हठधर्मी पर गवाही दी क्योंकि स्वामी जी ने मुन्शी इन्द्रमणिको आगरा से निज पत्र तारीख २९ नवम्बर सन १८८० ई० द्वारा लिखा है कि यह चन्दा का रुपया वैदिक फंड कहलावेगा और आर्य्यों के लिये इस फंड में रुपया जमा होता रहेगा । वह चिट्ठी स्वामी जी की हमारे पास मौजूद है, जिसका दिल चाहे देख ले स्वामी जी की लिखावट से प्रकट है कि इस चन्दा में मुन्शी इन्द्रमणि की प्रधानता नहीं है किन्तु यह द्रव्य सर्वत्र आर्य्यों के लिये है, इतने पर भी अगर किसी को स्वामी जी की ईमानदारी और सचाई में शंका रहे तो आश्चर्य की बात है। हां यह सत्य है कि आरम्भ में स्वामीजी और लाला रामशरणदास की नीयत यही थी कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें के लिये चन्दा करके रुपया एकत्र करें,

परंतु जब इधर उधर से अधिक द्रव्य आ गया तो स्वामीजी के मन में दम्भ उत्पन्न हुआ बस लाला साहिब को कि असल में स्वामी जी के लाला ही थे अमानत में खयानत करने पर खड़ा करके उचित अनुचित मनमानी कहने लगे, फिर लाला साहिब जो कहते हैं कि हमारे नौ सौ छप्पन रुपये कई आने खर्च हुए और चार सौ कई रुपए हमारे पास बतौर अमानत के शेष हैं, उसका उत्तर यह है कि मुंशी इन्द्रमणि लाला साहिब को मिथ्या वादी नहीं कहते चन्दा का रुपया उनके पास था उन्होंने जिस काम में उचित समझा वहां लगाया मुंशी इन्द्रमणि को उसमें कुछ उजर नहीं है, मुंशी इन्द्रमणि को तो यही कहना है कि लाहौर व अमृतसर व झेलम व बटाला व फीरोजपुर व हैदराबाद, वगैरह, से स्वामी जी और लाला साहिब के पास कई हजार रुपया चन्दा का जमा हुआ उसमें से उन्होंने हमको केवल छ सौ रुपए दिए, अढाई वर्ष पीछे अब कहते हैं कि हमारे पास चार सौ कई रुपए शेष रहे हैं, फिर लाला साहिब जो कहते हैं कि जिस काम में लोग कहेंगे उसमें लगावेंगे उसका जवाब इस तरह पर है कि यह इमानदारी है अढाई वर्ष तक तो कुछ जाहर न किया अब मूर्खों की रायके प्रार्थी हुये कि जो कुछ लोग कहेंगे वही करेंगे। लोग कौन होते हैं कि इस मामले में सम्मति देवें, और जिन महाशयों के पास से वह रुपया आया है वे पहिले ही अपनी सम्मति देचुके हैं, वरन बहुधा महाशयोंने मुन्शी इन्द्रमणि को पत्र लिखे हैं कि हमने इतना रुपया तुम्हारे मुकद्दमे के खर्च के वास्ते स्वामीजी और लाला राम शरण दास के पास मेरठ भेजा है वे शीघ्र आपके पास भेजेंगे। इस आशय के अनेक पत्र चन्दा देनेवालों के हमारे पास हैं आगे चलकर कुछ प्रकाशित करेंगे, जो चिट्ठी कि जवाहिरसिंह सेक्रेटरीने आर्यसमाज लाहौर मे तारीख २१ जनवरी सन् १८८१ ई० को लाला रामशरण के नामसे अपने झूठे व्याख्यान मे पढी थी यहां तक उसका उत्तर हुआ अब फिर स्वामीजी के लेखपर उत्तर आरम्भ होता है स्वामीजी "सब" शब्द से आपका क्या प्रयोजन है ? क्या सब मेरठ समाज के सभासदों कोही आप सब कहते हो या चन्दादेनेवालों को ? और क्या उस सभा के नियत होने से पहिले आपने कुल चन्दादेने वालो को सभा के हाल की सूचना दी कि इस तरह पर सभा नियत हुई है, चन्दा इकट्ठा किया जावे और उससेंदे कुछ मुन्शी इन्द्रमणि के मुक-

दमें में खर्च होवे और शेष द्रव्य किसी साहूकार के पास आठ आना सैकड़ा ब्याज पर जमा रहै, या चन्दा देने वालों को यह लिखा था कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुक़-दमें के खर्च के लिए चन्दा जमा करके स्वामी जी या रामशरण दास के पास रवाना करो यहा से मुन्शी जी के पास भेजा जायगा, यदि आपने सभा के नियत होने के समाचार चन्दा देने वालों को विदित कर दिए थे तो उन्होंने मुंशी इन्द्रमणि को इस विषय के पत्र क्यों लिखे कि हमने अमुक तारीख को इतना रुपया तुम्हारे मुकद्दमे के खर्च के वास्ते स्वामी जी या लाला साहिब के पास भेजा है वह आपके पास भेजेंगे, बल्कि यह भी लिखते कि इस तरह सभा नियत हुई है कि चन्दा के रुपये में से कुछ रुपया तुम्हारे मुकद्दमे के खर्च में लगेगा और शेष एक साहूकार के पास ब्याज़ जमा रहेगा, लेकिन उन पत्रों में इस बात का नाम निशान तक नहीं है, अगर आपने सभा के द्वारा से उनको भेजी नहीं किया किन्तु केवल यही लिख दिया कि उक्त मुकद्दमे के लिये रुपया इकट्ठा करके हमारे पास रवाना करो यहा से मुन्शी जी की सेवा में भेजा जावेगा तो आपकी मक्कारी और फरेब बाजी सिद्ध हुई, और जो तुम यह कहो कि मेरठ समाज के सभासदों ने सभा बनाई तो हम कहते हैं कि उनको क्या अधिकार है कि बिना आज्ञा चन्दा देने वालों के सभा नियत करें। और झूठ सच तो इसी पर खुल जायगा कि आर्य्यभ्रातृगण मेरठ समाज के सभासदों से सभा नियत होने का हाल पूछें मैं आशा करता हूँ कि वे लोग धर्म्म को नहीं त्यागेंगे क्योंकि आर्य्यों मे नाम लिखाया है आगे उनकी खुशी मन में आवे सो करें सत्य ही परमात्मा को प्यारा है, फिर स्वामी जी कहते हैं कि मुंशी जी को खर्च के लायक रुपया दिया जाय उसका उत्तर यह है कि लाला राम-शरण दास भी उक्त सभा के प्रधान थे और उन्होंने सभाके नियम को तोड़ डाला धन्यवाद क्योंकि जिस समय प्रथमबार मुंशी इन्द्रमणि दो सौ रुपए के लिये मेरठ गये तो उन्होंने जवाब दिया कि अभी तुमको यहा से रुपया न मिलेगा वहा ही से [illegible] मके कार्रवाई कर लो स्वामी जी साहिब ने उदयपुर में बैठकर सभा का [illegible] गड़ा कि जिससे लाला साहिब भी बदनाम हुए। क्या यह सभा स्वामी [illegible] रामशरण दास ने की या सब चन्दा देने वालों की सलाह से हुई? [illegible] बैठकर जो दिल में आया वह खुद मन गढ़त मन-

सूत्रा गाठकर सभा नाम धर दिया तो, खैर परन्तु चन्दा देने वालों को समाचार तक नहीं दिया कि इस तरह सभा नियत हुई है, फिर क्योंकर माना जाय कि वह सभा चन्दा देने वालों के जानकारी में नियत हुई, अब तक तो सभा का कुछ चर्चा ही नहीं था अढाई वर्ष पीछे यह बहाना बनाया इसीका नाम ईमानदारी है, अगर स्वामी जी अपनी बात पर सच्चे हैं और बकौल उनके सभा नियत हुई है तो जिस समय लाला रामशरणदास लाला शादीराम सहित अक्टूबर सन् १८८१ ई० में मुरादाबाद पधारे तो लालाश्याम सुन्दर रईस मुरादाबाद के मकान पर मुंशी इन्द्रमणि को अलग लेजाकर उन्होंने किस वास्ते कहा कि मेरे पास जिस कदर चन्दा का द्रव्य शेष है मैं वो स्वामी जी के पास भेजदूगा उनको उचित है कि आपको दें, इससे सिद्ध होता है कि उक्त लाला साहिब भी सभा के हालसे भेदी नहीं यदि असल में कोई सभा होती और लाला साहिबको मालूम होता तो वे मुन्शी इन्द्रमणि से यही कहते कि तुम नियत सभा के प्रतिकूल करते हो कि स्वामी जी से चन्दा का द्रव्य मागते हो, फिर स्वामी जी जो लिखते हैं कि इन सारी बातों को मुंशी जी ने भी स्वामी जो आदि के सन्मुख स्वीकार किया था उसका उत्तर यह है कि यदि मुंशी इन्द्रमणिने आपकी सारी बात स्वीकार करली थी तो किस वास्ते लाला रामशरण दास से दरियाफ्त किया कि आपके पास अब तक कितना रुपया चन्दा का आया है, और उक्त लाला साहिब ने उसका जवाब किस वास्ते इस तरह पर दिया कि बतलाने के लिये समाज की आज्ञा नहीं है यदि स्वामी जी सच्चे होते और सभा का नियत होना भी सच होता तो लाला रामशरणदास मुन्शी इन्द्रमणि के प्रश्न का यही उत्तर देते कि सभा में तुम इस बात को स्वीकार कर चुके हो कि तुम्हारे लिये चन्दा की संख्या बतलाई नहीं जायगी। खेद का विषय है कि कहा तक झूठ बनाओगे क्या सन्यासियों का यही धर्म्म है ? फिर लोगों को यह धोका देना कि स्वामी जी के सन्मुख मुन्शी इन्द्रमणि ने सारी बातें स्वीकार ली थी आप ही मुद्दई और आप ही गवाह सत्य तो यह है कि जब जनाब को झूठे दावे पर कोई गवाह न मिला तो अपने दावे को उचितवक्ता से कि मनुष्य मूर्ख है सम्बन्ध करके आप ही गवाह बने क्या आर्य्यों का जाल साजी ही धर्म्म है ? आर्य्याभाई इन्साफ करें कि सभा नियत करने के खुद स्वामी जी मुद्दई हैं, फिर उनका ही साक्षी

देना क्योंकर स्वीकार करने योग्य है इसके अतिरिक्त लाला श्याम सुन्दर से जो कि मुरादाबाद के एक साहूकार हैं और लाला रामशरणदास के मर्ममाराटर दुर्गाचरण साहिब ने सख्या १० का "देश हितैषी" पत्र देखकर कहा कि आपको भी उस सभा के हाल की खबर है तो लाला श्यामसुन्दर साहिब ने इनकार साफ किया कि मुझको बिल्कुल खबर नहीं है, यहां से प्रकट है कि यदि कोई सभा होती तो लाला श्यामसुन्दर अवश्य भेदी होते क्योंकि मुकद्दमें के बने रहते लाला रामशरणदास अनेक बार मुरादाबाद पधारे और कई कई दिन तक लाला श्यामसुन्दर के मकान पर सुशोभित रहे और मास सितम्बर सन् १८८१ ई० में ही वे वक्त लाला साहिब के मकान पर थे परन्तु सभा का कुछ भी जिक्र नहीं, किया तथा मास अक्टूबर सन् १८८२ ई० मे लाला श्यामसुन्दरजी मेरठ आर्य्यसमाजके वार्षिकोत्सव पर मेरठ पधारे और लाला रामशरणके पास रहे और मुंशी इन्द्रमणि की निन्दा के ग्रन्थ पढ़े गये परन्तु सभा का कोई वर्णन नहीं हुआ, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सभा की कथा उदयपुर में बैठ कर बनाई गई इस के अतिरिक्त जब मुकद्दमा फ़ौजी मुरादाबाद में पेश था और उसके लिये लाला रामशरण दास मुरादाबाद पधारे थे तो लाला ब्रजरत्न लघु भ्राता श्यामसुन्दर साहिब ने उन से पूछाकि अब तक मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमे में चन्दा का रुपया कितना आपके पास आया है तो उत्तर दिया कि बतलाने के लिये समाज की आज्ञा नहीं है, देखो उस समय तक भी यदि सभा का कुछ प्रबंध होता तो अवश्य लाला रामशरण दास लाला ब्रजरत्न साहिब को यही उत्तर देते कि अमुक समय मेरठ में सभा नियत हुई थी उस में यही निश्चित हुआ था कि चन्दा के रुपये की सख्या किसी को न बतलाई जावे इस बाबते में नहीं बतलासकता, लेकिन लाला रामशरणदास ने इस प्रकार का वार्तालाप नहीं किया बड़े आश्चर्य्य की बात है कि मेरठ शहरमें ऐसी बड़ी सभा नियत हो और जिन मनुष्यों का उससे सम्बन्ध है उनको भी उस की खबर न हो, इसके सिवाय जिस समय मुन्शी इन्द्रमणि का विज्ञापन लाहौरमें पहुँचा तो जवाहिरसिंह सेक्रेटरीने लाला रामशरणदास से यथार्थ हाल दरियाफ्त किया तुम्हारे और मुन्शी इन्द्रमणि के मध्य क्या झगड़ा है, और लाला साहिब ने उसका उत्तर लिखा जवाहिरसिंह ने २१ जनवरी सन् हाल के दिन मुंशी इन्द्रमणिकी निंदायुत एक व्याख्यान

को किस वास्ते बतलाया, यह नियम तोड़ना नहीं था तो क्या था ? इससे भी सिद्ध हुआ कि स्वामी जी ने सभा का ढकोसला उदयपुर में गढा है, आश्चर्य्य इस बात का है कि लाला रामशरणदास के कथनानुसार नौ सौ छप्पन रुपये कई आने तो चन्दा में से खर्च हुये और चार सौ कई शेष अमानत रहे अब आर्य्य पुरुष विचारें कि यह तो चौदा सौ रुपये का हिसाब हुआ, चार हजार छ सौ कहा कहां गए ? यही स्वामी जी की सत्यता है । अगर एक लाख रुपया उपदेशक मंडली के बहाने से उन्होंने जमाकर कर लिया तो क्या रंग लावेगा ? कर्ज लेकर तो आप मुकद्दमे में क्या लगाते जब कि आपके पास चन्दाका अधिक द्रव्य जमा था और मुँशी इन्द्रमणि को बैरिष्टर के पास भेजने के लिये दो सौ रुपए की आवश्यकता थी उस समय भी आपने कौड़ी न दी, बस आपकी नियम प्रतिकूलता में कुछ शक नहीं है मुंशी इन्द्रमणि के वास्ते चन्दा की सख्या बतलान से सभा किस लिए रुकी शायद कि सभा ने मनसूबा गाठा था कि चन्दा के रुपये गडप करलें, यदि मुँशी इन्द्रमणि को सख्या मालूम होगी तो सभा से मवाख़ज़ करेंगे, इस वास्ते सभा ने पेशबन्दी के लिये मुशी इन्द्रमणि को जुदा किया, बाहरी सभा तेरी सत्य शीलता और बड़ी समझ इसको कोई भी ईमानदारी नहीं कहेगा, कि जिसके नाम से चन्दा इकट्ठा होवे उसको सख्या तक भी न बतलाई जावे, इसको चतुराई वही लोग जानेंगे कि जो गुरू जी के अधर्म्म को भी धर्म्म समझते हैं पराया माल मारने पर कमरबन्दी कर रहे हैं, जब कि स्वामी जी के पास इधर उधर से चंदा का रुपया बहुत जमा होगया तब लालच के आधीन होकर उसके गडप करने की नीयत की, जिसके नाम से चंदा लिया उसको देना तो जुदा रहा सख्या तक बतलाना भी उचित न समझा इसी का नाम सन्यास है, और यही त्यागकी प्रशंसा है, निःशक इससे सम्पूर्ण प्राणी जान सकते हैं कि लाला रामशरण का इतना कसूर है कि चंदा का द्रव्य गडप करने में स्वामी जी के आधीन हुये, पूरा अपराध स्वामीजी का है, कि पृथ्वी को शिरपर उठाया और उक्त लाला साहिब को अपना शरीक किया, मुशी इन्द्रमणि ने तो उनकी सेवामे यह निवेदन किया था कि धर्म्म विषयक वादानुवाद अभी पूरा नहीं हुआ है, स्वामी जी और लाला साहिब को कुछ अधिकार नहीं है कि यह दोनों तो इस कामके थे कि चंदा का रुपया इधर से लेकर उधर पहुँचा देवें परन्तु यह तो खुद मालिक बन बैठे, नाना प्रकार से इनको समझाया गया कि इस

रुपये से मुसलमानों पर नालिश दायर करो परन्तु इन्होंने चुप करली, फिर स्वामी जी कहते हैं कि मुन्शीजी ने अनुचित वाक्य कहे यह सर्वथा झूठ है किंतु खुद इन्होंने अनेक अप शब्दों से भरे पत्र आगरे से मुन्शीजी के नाम पठाये थे वह हमारे पास हैं विस्तार के भय से यहां नहीं लिखे और दम्भ तो स्वामी जी ने किया कि मुन्शी इन्द्रमणिके नाममें छः हजार रुपया इकट्ठा कर उनको बडी कठिनता से केवल छः सौ दिये अब अढाई वर्ष पीछे चौदा सौ रुपए का हिसाब प्रकट करते हैं शेषका आचमन कर गये इस दम्भ का कारण यह है कि ससारी लालचने उनको भुला दिया खेद का स्थान है कि लाला रामशरण दास भी उनके कारण व्यर्थ बदनाम हुये, हम परमात्मा को मध्यस्थ करके कहते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणि ने उनसे किसी प्रकार का नियम नहीं किया यदि मुन्शी इन्द्रमणि ने स्वामी जी से यह प्रण किया था कि अपने पास का आया हुआ चन्दा का द्रव्य भी उक्त लाला साहिब के पास भेजता रहूँगा तो स्वामी जी ने मुन्शी इन्द्रमणि को इस विषय की चिट्ठी मेरठ से क्यों लिखी कि इतना रुपया चंदा का पजाब से मेरठ आया है, और फर्रुखाबाद वगैरह से आने वाला है सब आपके पास भेजा जाता है (यह चिट्ठी अगस्त सन् १८८० ई० की भाद्रपद सम्वत् १९३७ में ऊपर लिखी जा चुकी है) इसके अनुसार लाला आनन्दीलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ का खत तारीख २७ अगस्त सन् १८८० ई० तीन टुकड़े नोट के सहित मुन्शी इन्द्रमणि के पास आया कि यह नोट तुम्हारे मुकद्दमे की सहायता के लिये लाहौर से आए हैं सो आपके पास पहुँचते हैं। अब आर्य्य भाई न्याय करें कि यदि मेरठ में कोई सभा नियत होती और मुन्शी इन्द्रमणि ने उस सभा में प्रण किया होता तो उनके प्रतिकूल मुशी जी के पास लाहौर के नोट मेरठ से किस वास्ते रवाने किये जाते, क्योंकि स्वामी जी के कथनानुसार प्रण तो यह था कि सब स्थानों का चन्दा ला० साहिब के घर जमा रहे और मुंशी इन्द्रमणि भी उनही के खजाने में दाखिल करते रहें। यहां तक तो स्वामी जी की नीयत शुद्ध थी पीछे उनके मन में यह विचार पैदा हुआ कि चन्दा का द्रव्य मुशी इन्द्रमणि को न देना चाहिए लाला साहिब के इकट्ठा रहना उचित है बस २८ अगस्त सन् १८८० ई० को लाला [illegible] लाल मन्त्री से इस आशय का पत्र मुन्शी इन्द्रमणि जी के पास भिजवा[illegible]

नोट के टुकडे वेद भाष्य की सहायता मे फर्रुखाबाद को भेजे जाते थे हमारे समाज के चपरासी की भूल से तुम्हारे पास चले गए इस लिए उनको मेरठ लौटा दीजिये बस वे नोट उसी समय लौटा दिए गए अब विद्वान् पुरुष विचार करें कि चपरासी की भूल मे यह हो सकता था कि मुरादाबाद के लिफाफे में फर्रुखाबाद का खत रख दे और फर्रुखाबाद के लिफाफे में मुरादाबाद का या नोट जिस लिफाफे मे रखने चाहिए उसमें न रक्खे दूसरे में रख दे परंतु यह तो बतलाओ कि नोटों की साथ जो पत्र था कि यह नोट तुम्हारे मुकद्दमे की सहायता के लिये लाहौर से आये थे इस वास्ते अब तुम्हारे पास भेजे जाते हैं, वह किसने लिखा था ? क्या यह जालसाजी भी चपरासी ही की थी ? अब स्वामी जी आपने धर्म्म और ईमान से वर्णन करें कि यह सारी कार्रवाई किसकी आज्ञा से हुई थी, इसके अतिरिक्त विद्वान खत जानते है कि रुपए का खर्च मुन्शी इन्द्रमणि के पास था वह ऐसा प्रण क्यों करते कि जितना रुपया मुझको मिलेगा मैं लाला रामशरण दास के पास भेज दूंगा क्योंकि उलटे पत्थर पहाड़को कोई नहीं लादता किंतु स्वामी जी और लाला साहिब ही ने मुंशी जी से प्रण किया था कि हम तुम्हारे मुकद्दमे के खर्च के वास्ते चंदा जमा करते हैं जिस समय आपको आवश्यकता हो हम से रुपए मंगा लेना, और इसी प्रकार चंदा देने वालो से भी प्रण किया कि तुम लोग मुंशी इन्द्रमणि के मुकद्दमे के लिये चंदा फराहम करके हमारे पास भेजो हम उक्त मुकद्दमे में खर्च करेंगे, जब चारों ओर से आशा [illegible] अधिक रुपया आया शीघ्र गुरु चेलन निज प्रण त्याग दिया, क्योंकि अभी एक महीना भी न हुआ था कि मुंशी इन्द्रमणिने मिस्टर हिल साहिब बैरिस्टर के लिये दो सौ रुपये मांगे तो उनको जवाब साफ दिया कि तुमको यहां से कुछ न मिलेगा अब स्वामी जी परमात्मा को अंतर्यामी जानकर कह दें, कि उन्होंने यह प्रण किया था नहीं और फिर तोड दिया या नहीं बस मुंशीजी ने शीघ्र ही भारत मित्रादि पत्रोंमें इनके प्रण तोडने को प्रकाशित कर दिया, और जान लिया कि इनका गुप्त विचार कुछ और है, इस सूरत मे यह गुरु चेले कौन हैं जो मुंशी इन्द्रमणि से हिसाब लेवें, क्या उन्होंने कोई खजाना उनके आधीन कर रक्खा है ? यथार्थ यही है कि इन दोनो महाशयोंने अपने बचाव के लिये यह ढंग रचा है कि मुंशी इन्द्रमणि हिसाब

नहीं देते विद्वान् जानते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणि इनका किस चीजका हिसाब देते कि आरम्भसे ही उनकी स्वार्थ साधनता देखकर उनसे पृथक् हो बैठे थे और भारत मित्रादि पत्रोंमें विज्ञापन दे चुके कि इनके पास हमारे मुकद्दमेके लिए कोई साहिब रुपया नहीं भेजें कि जितना अब तक इनके पास चन्दा आया है उसमेंसे थोड़ी देना नहीं चाहते किंतु मुन्शी इन्द्रमणि इनसे हिसाब मांग सकते हैं कि उन्होंने इनके मुकद्दमें के वास्ते अपने पास रुपया जमा किया और मुन्शी इन्द्रमणिके पास भेजने के जिम्मेदार रहे । आर्य भाई विचार करें कि इस ईमानदारी का क्या ठिकाना है कि जो रुपया खास मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें के वास्ते चन्दा किया गया है, उसको सम्पूर्ण वैदिक मत की रक्षा के लिये नियत करते हैं स्वामीजी महाराज यह रुपया वैदिकमत की सहायता के लिए बिलकुल भी न था है, किंतु केवल एक मुकद्दमे के लिये दे जो मुन्शी इन्द्रमणिपर मुसलमानों की तर्फसे दायर हुआ, स्वामीजी महाराज कहां तक झूठ बढ़ाने करेंगे, तुक ख्याल करो कि आपने इसमें पहिले क्या कहा है, और अब क्या कहते हो जब आप सन् १८८० ई० में बमुकाम आगरा राय गिरधरलाल साहब वकील की कोठी पर विराजमान थे उस समय आपका हस्ताक्षरी पत्र तारीख २९ नवम्बर का हमारे पास मौजूद है उसमें आपने लिखा है कि अब यह रुपया बराबर वैदिक फंड कहलावेगा, फिर जब मुन्शी इन्द्रमणि ने उस पत्र के उत्तर में आपकी इस लिखावट का खंडन किया तो आपने उसका उत्तर ६ दिसम्बर सन् १८८० ई० में लिखा कि वैदिक फंड मुन्शी की भूल से लिखा गया है, हमने तो यह लिखवायाथा कि यह वैदिकमतकी सहायता का फंड कहलावेगा । आपकी यह चिट्ठी भी हमारे पास मौजूद है, और देश हितैषी अजमेर के मजमूनमें आपने वैदिकमत के प्रथम शब्द सत्य बढ़ाया है, परन्तु स्वामीजीके दस्तखती तारीख २४ नवम्बर सन् १८८० ई० का लाला श्यामसुन्दर रईस मुरादाबाद के नामका हमारे पास है उसमें स्वामीजी ने लिखाया है कि चन्दा किसी की खास जाति के वास्ते नहीं हुआ केवल देश की भलाईके लिये है, स्वामीजीकी एक दूसरी प्रतिकूल लिखावट से यही सिद्ध होता है कि आपने रुपया गडप करने के लिये भांति २ के झूठ बनाये, फिर यह जो आपने लिखा कि उस समय में लाला रामशरणदास ने मुन्शी जी को रुपया देना बंद कर दिया उसका उत्तर यह है कि उक्त

लाला जी ने मुन्शी जी को दिया ही क्या था कि जिसके पीछे देना बंद कर दिया, जिस समय बैरिस्टर साहब को देने के वास्ते मुंशी इन्द्रमणि ने दो सौ रुपये चंदा के रुपयों में से मांगे तो उन महात्मा धर्मावतार ने साफ जवाब दिया कि यहां से कुछ नहीं मिलेगा, बस मुंशी इन्द्रमणि ने जान लिया कि कुछ दालमें कालाहै, और स्वामी जी ने विश्वास की शराब में नमक मिलाया है फिर जो आप कहते हैं कि स्वामी जी ने कहा कि **काममें हर्ज होगा** यह सर्वथा झूठ है, कि काम में हर्ज न हो यह समझ कर आपने मुन्शी इन्द्रमणि को रुपया हरगिज नहीं दिया बल्कि जब उन्होंने लगातार आपको इस विषयके पत्र लिखे कि यदि इस समय भी रुपये न दोगे तो हम चंदा देने वालों को ख़बर करेंगे कि स्वामी जी ने आरंभ मुकद्दमे से मेरे नाम पर चंदा जमा किया और अब तक मुझको एक कौड़ी भी नहीं दी तब आपने अपनी बदनामी से डर कर छः सौ रुपए मुन्शी इन्द्रमणि को दिए यदि आपको यह ख्याल होता कि काम में हर्ज न होवे तो आरंभ मुकद्दमे में बैरिस्टर साहब के लिये मुन्शी जी को दो सौ रुपए देने से हरगिज इनकार न करते। मुद्दत गुजरी कि मुन्शी इन्द्रमणि स्वामी जी से चंदाके रुपयोंका हिसाब मांगते रहे और स्वामी जी बहानों के साथ टालते रहे, हिसाब तो जुदा रहा चंदाकी सख्या तक मुन्शी जी को नहीं बतलाई, अब तक तुम भी कहते थे कि हमने मुन्शीजी को छः सौ रुपए दिए हैं, और वह भी स्वीकार करते थे और करते हैं, अब उस पर तुर्रा यह लगाया कि कितना रुपया मुन्शी जी को दिया और कितना उक्त लाला साहब के पास जमा रहा यह बात स्वामी जी को याद होगी कि उन्होंने आगरामें मुन्शी अलखधारीके एक मित्रसे कहा था कि चंदाका छः हजार रुपया मेरठमें एक दूकान पर जमा है, अब देखिए छः हजार रुपए में से कितने का हिसाब मुद्रित कराते हैं कितना अपने पास शेष बतलाते हैं और कितना उक्त लाला साहबके पास जमा बतलाते हैं यदि हिसाब ठीक २ मुद्रित करा देंगे तो लोगों को मालूम हो जावेगा कि चंदा का इतना रुपया स्वामी जी और लाला साहब के यहां बतौर अमानत के जमा है, परन्तु दोनों महाशयों का छुटकारा उस समय संभव है जब कि कौड़ी २ चंदा का द्रव्य मुन्शी इन्द्रमणि को दे देवें, क्योंकि इस चंदाके अधिकारी वही हैं, और उन्हीं के नाम से चंदा इकट्ठा किया गया है। अगर लाला रामशरणदास

आदि ने मुन्शी इन्द्रमणि के विषय कुवाक्य बोले तो वे जानें मुन्शीजीसे उनके विषय अब तक कोई अपराध नहीं हुआ मुन्शी जी तो सपूर्ण आर्यों के तन मन से शुभ चिंतक हैं यदि लाला रामशरणदास आदि नें स्वामी जी से यही कहा कि मुन्शीजी हिसाब नहीं देते तो यथार्थ मे सत्य और उचितहै कि मुन्शी इन्द्रमणि प्रथम दिवस ही से कहते हैं कि स्वामीजी और लाला साहब को मुझसे हिसाब लेनेका अधिकार नहीं है कि उन्होने कोई कारखाना खजाना मेरे आधीन नहीं किया बल्कि उनको उचितहै कि मुझको चंदाके द्रव्यका हिसाब समझावें कि क्या आया और कितना खर्चहुआ कि उन्होने मेरे नामसे चदा इकठ्ठाकिया, सो हिसाब देना तो एक तरफ रहा आजतक उनकी सख्या भी मुझको नहीं बतलाते और जिस दिनसे मैंने सख्या पूछने का तकाजा आरभ किया है, इधर उधर मेरी निंदा करते फिरते हैं बल्कि इतने पर भी सतोष न करके मेरे विषयमे मिथ्या लेख मुद्रित कराते हैं, स्वामीजी का कोयल जाना और वहा विराजना इसी वास्ते था कि कोयल से बाबू तोताराम और राय बद्रीदास आदि वकीलों ने उक्त मुकद्दमे के लिये कुछ चदा इकट्ठा किया था कि जिस समय स्वामीजी को यह समाचार मिला तो चदा लेनेके लिये देहरादूनसे कोयल आये, परंतु मुन्शी इन्द्रमणि ने पहिले ही बाबू तोताराम को निज पत्रद्वारा प्रगट कर दिया था कि यदि आपने चदा खोला है तो वह सीधा मेरे पास रवाना करें दूसरों को दिया हुआ रुपया बहुधा मार्ग ही मे गड़प होता है, बस जब स्वा० जी ने बाबू साहब से चदा का जिकर किया तो उन्होंने मुन्शी इन्द्रमणि का खत दिखलाया तब स्वामीजी खेदित होकेकहने लगे कि चदा का द्रव्य किसी साहूकार के पास भेजना चाहिये जिसके पास से रुपया आचुका है । यह सारा हाल बाबू तोताराम वकील कोयल के कार्ड नागरी से जोकि स्वामीजी के कोयल आने के पीछे मुन्शी इद्रमणि के पास उक्तबाबू साहिब ने भेजा था प्रकट होता है, यथार्थ नकल उसकी यह है ।

मित्रवर आप का पत्र आया, यहा का चदा मेरेप्रबन्धसे जमा हो रहा है जिस समय भेजने के लायक इकट्ठा हो जायगा तबही आपकी खिदमत मे पहुंचेगा स्वामी दयानन्दजी के कहने से जानागया कि चदा का रुपया किसी साहूकार के पास भेजना चाहिये जिसके यहा से रुपया आचुका है परन्तु मेरा इरादा तो आपके

पास भेजने का है, आप जो उचित समझें वह करें ।

(तोताराम मुहरिर भारत बन्धु).

बाबू माधव के पत्र में शब्द किसी साहूकार से स्वामी जी की मुराद लाला रामशरणदास से है और (जिसके यहाँ मे रुपया आचुका है) उस से स्वामीजी की गर्ज यह है कि चंदा का रुपया लाला रामशरणदास जी के पास भेजना उचित है कि उनके यहा से रुपया बतौर कर्ज के मुकद्दमें के खर्च के लिये आचुका है, देखो यह कितना बडा झूठा है, लाला रामशरण दास ने तो चदे ही के रुपये म से मुन्शी जी को दोसौ रुपये न दिये अपने घर से कर्ज तो क्या देते यहा से मालूम होता है कि स्वामीजी का अभिप्राय यही था कि किसी बहानेसे चन्दाका रुपया उस लाला के खजाने मे दाखिल करादे फिर इस स्थान से यह भी सिद्ध होता है कि चदा स्वामीजी की कोशिश से नहीं हुआ किंतु वे- गर २ मागते फिरे और नहीं मिला, जितनी चिट्ठया कि मुन्शीजी के नाम आगरा से स्वामी जी ने लिखी थीं वह सब हमारे पास मौजूद हैं, उनकी लिखावट मे अत्यंत असभ्यता भरी हुई है, और जो जवाब कि मुन्शी इन्द्रमणि ने उनकी चिठ्ठियों के स्वामीजीको तहरीरकिये थे उनकी नकल भी हमारे पास है, जिन साहबों का देखना मजूर होवे मुलाहिजा करलें स्थानाभाव से नकल करना उचित नही समझा, हा ! यह बात अवश्य सत्य है कि आप लोगों ने निज प्रण तोड़ कर आवश्यकता के समय चदा के द्रव्य मे से दोसौ रुपये देने से इनकार किया, किंतु सख्या तक नहीं बतलाई कि कितना रुपया अब तक यहा जमा हुआ है बस विचारलो इसमें आपही की निन्दा होगी कि मुन्शीजी के नाम से हजारो रुपया इकट्ठा किया और उनको बडी कठिनतासे केवल द सौ रुपये दिये और शेप को आप ही डकार गए, और यह स्वामी जी की बड़ी तुहमत है कि मुन्शी जी ने रामशरणदास की निन्दा लिखी यदि स्वामी जी सत्यवादी हैं तो मुन्शी जी का लेख दिखलावें, यह तो स्वामी जी ही मे गुण है कि जिसकी निज मुख से बड़ाई करते हैं उसकी निन्दा करने से कुछ भय नहीं करते हैं, प्रथम कर्नेल अलकाट को पाताल लोक का ऋषि बतलाया था परतु जब उन्होंने स्वामी जी की गुप्त लीला प्रकट की कि यह लोग विद्या से अनभिज्ञ हैं कुछ नहीं जानते तब स्वा० जी उनको नास्तिक कहने लगे । इसी प्रकार रिसाले आर्यदर्पण के विषय प्रथम तो

वेदभाष्य के टाइटिल पेज पर विज्ञापन दिया कि यह रिसाला वेदानुकूल है, जब कि मुन्शी बख्तावरसिंह ने उनकी नौकरी छोड़ दी तो प्रकाशित किया कि आर्य-दर्पण किसी आर्य के प्रबन्ध से नहीं है । आगरा में मुन्शी इन्द्रमणि का बुलाने का सबब यह था कि वहां उनका सामने करके चन्दा जमा करें और उक्त लाला के घर भेज दें । जिस दिन स्वामी जी का आगरे में व्याख्यान पूरा हुआ तो अनुमान दो सौ प्रतिष्ठित पुरुष आगरे के वहां उपस्थित थे राय गिरधरलाल साहब वकील अदालत आगरा ने खड़े हो कर स्वामी जी का धन्यवाद किया और स्वामी जी के सकेत से वकील साहिब कहने लगे कि यह मुन्शी इन्द्रमणि आये हैं, उस समय मुन्शीजी को मालूम हुआ कि स्वामी ने मुझको और लाला गिरधरलाल साहिब को धोका देकर अपना मनसूबा गाठा है, बस उसी समय पंडित जगन्नाथ दास ने मुन्शी इन्द्रमणि की सम्मति से राय गिरधरलाल साहिबको रोक दिया कि चन्दा का जिकर न कीजिये मुन्शीजी को स्वीकार नहीं है पहिलाही द्रव्य पूरा हमारे हाथ नहीं आया तब रायसाहिबने चन्दा का विषय छोड़कर दूसरा विषय आरम्भ किया और स्वामीजी को यह कहना बहुत बुरा लगा परन्तु प्रकट में कुछ न कहसके यहाँ तो परमेश्वर की कृपा भी कारगर हुई और उक्त लाला की सचाई भी काम आई लेकिन जिस समय मुन्शी जी न उस हिसाब को देखकर स्वामी जी से कहा कि यह बिना शिरपैर है इसमें बहुधा स्थानों का रुपया जमा नहीं है शायद कि वह आपके पास हो तब स्वामी जी सूरत बिगाड़ कर बोले कि तुम्हारे कहने का क्या प्रमाण है ? उस समय मुन्शी जी ने एक चिट्ठी गुरुदासपुरकी दिखलाई जिसमें लाला बख्तावरराम साहिबने मुन्शी जी को लिखा था कि इतना रुपया तुम्हारे मुकद्दमे की सहायता के वास्ते मैंने स्वामीजी की सेवा में रवाना किया है, उन्होंने आपके पास भेजा होगा यह चिट्ठी देखते ही स्वामी जी नीची दृष्टि करके बोले कि गुरुदासपुर के रुपये मेरे पास आये तो हैं शायद मैंने रामशरणदासके पास भेज दिए, देखिये रामशरणदास को मैं अभी लिखता हूँ यथार्थ हाल मालूम हो जायगा, इसके पीछे आठ दश दिन मुन्शी इन्द्रमणि आगरे में विराजमान रहे परन्तु लाला रामशरणदास के पास से कुछ उत्तर नहीं आया उस समय स्वामी जी और उक्त लाला साहिबकी सचाई कहां मारी गई कि दश दिन तक मुह न दिखलाया गुरु चेले की मिली भगत इसी

का नाम है, तत्पश्चात् मुन्शी साहिब मुरादाबाद चले आये।

दो वर्ष तक भी गुरु चेले की सचाई ने प्रकाश न किया अब दो वर्ष पीछे मुन्शी की भूल बतलाते हैं, तफ़सील उसकी आगे आवेगी तत्पश्चात् जो स्वामी जी ने लिखा है कि मुंशी जी के कहने से पंडित जगन्नाथदास ने बेग को हाथ लगाकर कहा हिसाब का कागज तो मैं मुरादाबाद ही भूल आया। यह सब स्वामी जी की बनावट और गप्प है क्योंकि मुन्शी इन्द्रमणि ने तो इन दोनों गुरु चेलों की सत्य शीलता उसी दिन जान ली थी कि जब उनको दो सौ रुपए न दिए और चंदा की संख्या के बतलाने से इन्कार किया और जब ही भारतमित्र आदि समाचार पत्रों में विज्ञापन दिये और अपने मित्रों को पत्र लिखे कि दोनों की नीयत शुद्ध नहीं है इनके पास मेरे मुकद्दमे की बाबत् कोई महाशय रुपया न भेजे कि इनसे मुझको कौड़ी वसूल होने की आशा नहीं है और इसी लिखा पढ़ी के अनुसार मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी और पंडित चतुर्भुज शास्त्री जी ने जा बजा पश्चिमोत्तर प्रदेश में स्वामी जी की नेक नीयत के लेक्चर और व्याख्यान देने आरम्भ कर दिये जब कि सत्य समाचार इस प्रकार है तो मुंशी इन्द्रमणि इनको किस तरह पर हिसाब देते। प्रथम दिवस से ही उनकी चालाकी से भेदी होकर पृथक् हो गये थे। कौन विद्वान स्वीकार कर सकता है कि उक्त दोनों महाशय तो चंदा के द्रव्य में से एक कौड़ी तक मुन्शी जी को न देवें। और न उसकी संख्या बतलावें, और मुन्शी जी उनको अपना स्वामी समझें अब सम्पूर्ण आर्य्य-भाई समझ सकते हैं कि मुन्शी जी सच्चे हैं या दोनों गुरु चेले चोर की चोरी पकड़ना वितंडावाद नहीं है, स्वामी जी यह भी नहीं जानते कि वितंडा किसको कहते हैं, उसके साथ शब्द **वाद** के लगाने की क्या आवश्यकता है कि वाद और वितंडा में बड़ा अंतर है, मुन्शी जी ने ये ही नहीं कहा था कि केवल लाला बल्लभदास का रुपया जमा नहीं है किंतु यह कहा था कि इस हिसाब में मेलाराम घटाला व्यास आदि का बहुधा रुपया जमा नहीं है, उस समय स्वामी जी जलकर बोले कि क्या मेलाराम आदि से तुमको किसी ने लिखा है? मुंशी जी ने उत्तर दिया कि हां लिखा है और एक चिट्ठी लाला बल्लभ दासकी दिखलाई जिसके देखते ही स्वामी जी इधर उधर देखते रह गए। जिस दिन मुन्शी जी ने लाला बल्लभदास

की चिट्ठी दिखलाई थी उसके आठ दिन पीछे तक मुन्शी इन्द्रमणि जी स्वामी जी के पास और आगरे में रहे परन्तु लाला रामशरण दास की कोई चिट्ठी नहीं आई यदि आई होगी तो स्वामीजीने गुप्त रक्खी होगी अब दो वर्ष पीछे यह ढकोसला बनाया कि रामशरणदास के मुँशी की भूल से लाहौर गुरुदासपुर के रुपये मिलाकर जमाकर दिये इस झूठ का क्या ठिकाना है, । और यह भी सर्वथा झूठ है कि लाहौर और गुरुदासपुर के रुपये एक ही दिन आये थे क्योंकि लाहौर के रुपयों से गुरुदासपुर के रुपये तेरह चौदह दिन पीछे आये हैं और उसकी साक्षी में एक चिट्ठी स्वामीजी की और दूसरी लाला वल्लभदास की है स्वामीजी की चिट्ठी तारीख २६ अगस्त सन् १८८० ई० पहिले सम्वत् १९३७ मे लिखी जाचुकी है, उस में मुंशी इन्द्रमणि को मेरठ से लिखा है कि पजाब के अढाई सौ या तीन सौ रुपये आपके पास पहुँचे होंगे, आज हम यहाँ के सभासदों से दरियाफ्त करेंगे कि रुपये भेजे या नहीं अगर न भेजे होंगे तो हम भिजवाते हैं, चार दिन हुये कि हमने यहा के सभासदों के वास्ते भेजने रुपये के कह दिया है । जब कि चिट्ठी २६ अगस्त की लिखी है तो २६ से ४ दिन पहिले भावार्थ २२ अगस्त को स्वामीजी ने मेरठ के समाज सभासदो से कह दिया कि पजाब के रुपये मुशी इन्द्रमणि के पास रवाना करदो । इससे जानागया कि वे रुपये २२ से पहिले या २२ही को लाहौर से आये थे । बस स्वामीजी के कहने मूजब लाला आनन्दलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठने २७ अगस्त को दो सौ रुपए के नोट मुन्शी जी के पास रवाना किए और लिखा कि यह लाहौर के चन्दा का रुपया है । फिर इसके पीछे क्या हुआ वह विस्तार सहित ऊपर लिख चुके हैं, और लाला वल्लभदास की चिट्ठी तारीख ३ सितम्बर सन् १८८० ई० मे लिखा है कि गुरुदासपुर के चन्दा के इतने रुपये ३१ अगस्त सन् १८८० ई० को हमने स्वामी जी के पास व मुकाम मेरठ भेजे हैं यह आपके पास पहुचेंगे। यहा से प्रकट है कि गुरुदासपुर के रुपए स्वामीजी के पास मनिआर्डर द्वारा चौथी व पाँचवी सितम्बर को आए होंगे इससे दोनों के मध्य तेरा या चौदा दिन का अतर है, एक दिन नहीं आए, इस लिए स्वामी जी के मिथ्या भाषणमें कुछ शका नहीं है, अब आर्य्यभाई पक्षपातको त्यागकर न्याय करें कि जिस सूरत में दोनो स्थानो के रुपए तेरा चौदा दिन के अतर से आए हैं तो रामशर-

णदास के मुन्शी की भूल क्यों कर हो सकती है और वह दोनों को एक साथ क्यों कर जमा कर सकता था, अब गुप्त यह है कि लाला बल्लभदास की उक्त चिट्ठी में गुरुदासपुर के डेढसौ रुपये स्वामीजी के पास भेजने लिखे हैं और यह भी लिखा है कि और भी कोशिश कर रहा हूँ जो कुछ और हो सकेगा किया जावेगा। क्या आश्चर्य है कि इन डेड सौ के पीछे अढाई सौ रुपये दूसरी बार स्वामी जी के पास बल्लभराम ने भेजे होंगे, परन्तु लाहौर के रुपए के साथ यह भी जमा नहीं हो सकते कि इनमे और लाहौर के में तेरह चौदह दिन से भी अधिक अंतर होना सम्भव है, इनका आना उनके पीछेही हो सकता है, यदि यह मान लिया जाय कि ला० बल्लभदास ने डेढ सौ के पीछे अढाई सौ दूसरीबार भेजे और यह ला० रामशरणदास के मुन्शी की भूल से लाहौर के रुपयों के साथ जमा हो गए परन्तु उन डेढ सौ का फिर भी पता न लगा कि गुरुने गड़प किये या चेले ने। देखो इन डेढ सौ रुपये की बाबत स्वामीजी ने अनेक झूठ बनाये, प्रथम यह कि ला० रामशरणदास को लिखकर जवाब मगवाया दूसरा यह कि दोनों स्थानों के रुपए भूलसे मिल कर जमा हो गए तीसरा यह कि लाहौर और गुरुदासपुर के रुपये एक दिन आये और चौथा यह कि लाहौर के चार सौ रुपयों को डेढ सौ बतलाया लाहौर के जिन महाशयों ने रुपया भेजा है वे हमारी लिखावट को देख कर भले प्रकार जान जायगे, और स्वामी जी की सचाई के अच्छी तरह भेदी होवेंगे कौन विश्वास कर सकता है कि लाहौर के हजारो शुभचिंतक मुन्शी इन्द्रमणि के रहते हैं और हजारों स्वामी जी के विश्वासी बसते हैं वहा से केवल डेढ सौ रुपया चदा होवे, अगर स्वामी जी के पास इन अढाई सौ के सिवाय कुछ नहीं आया तो छ हजार कहा गये जिनकी बाबत स्वामी जी ने मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी से आगरे में कहा था कि मुन्शी इद्रमणि के मुकद्दमें में अब तक चदा के छ हजार रुपए आए हैं, और मेरठ मे एक दुकान पर जमा हैं, ला० रामशरणदास तो अपने पास चौदह सौ के लगभग आये हुए स्वीकार करते हैं, छ हजार का शेष भाग किसके घर गया मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी का पत्र पहिले लिखा जा चुका है, सभा का ढकोसला अढाई वर्ष पीछे गढ़ा गया है, इसका खण्डन प्रथम ही हो चुका है पुन पुन करने की आवश्यकता नहीं है, यदि मान भी लिया जाय कि सभा स्थापित हुई भी तो उसके प्रतिकूल करने वाले और प्रणत्यागी स्वामी जी ही हैं, कि उन्होंने

मुकद्दमे के आरम्भ में ही लाला रामशरणदास को दो सौ रुपया देने से रोक दिया और जिस काम के लिये रुपया जमा किया था उसमें आरम्भ ही से खर्च करना नहीं चाहा तब मुन्शी इन्द्रमणि ने उनकी नेक निमती प्रकाशित कर दी और भारतमित्रादि समाचार पत्रो मे मुद्रित करा दिया कि स्वामी जी ने मेरे मुकद्दमे के बहाने से हजारों रुपया इकट्ठा किया और मुकद्दमे मे एक कौड़ी खर्च करना नहीं चाहते बस स्वामी जीने भी मुंशी जी की निन्दा करनी प्रारम्भ की, आर्य भाई न्याय करें कि यदि इस मामले मे स्वामी जी का कुछ स्वत सबध नहीं था तो उसी समय मुन्शी इन्द्रमणि को चदा के द्रव्य का हिसाब देकर पृथक् क्यों नहीं होगए। परन्तु पृथक् क्योंकर होते लालच तो लगा हुआ था, अनेक वार मुन्शी इन्द्रमणिने उनको समझाया कि तुमने चदा मेरे मुकद्दमे के बहाने से लिया है तो उसी मे खर्च करना उचित है और हाईकोर्ट के अपील के लिये मुझको उचित द्रव्य दीजिये वरना बदनामी होगी और सन्यास को कलक लगेगा। परन्तु वह ऐसा कब सुनने वाले थे, तब लाचार मुन्शी जी ने भी उनको आडे हाथो लिया कि यदि तुम मुकद्दमे के खर्च मे कुछ नहीं लगाते तो हम चदा देने वालो को आपके गुप्त भेदसे भेदी करते हैं, उस समय गुरु चेले ने गोष्ठी करके और अपनी बदनामी से डर कर छ सौ रुपए हाईकोर्ट की अपील के वास्ते दिये। यथार्थ मे मुन्शी इन्द्रमणि से स्वामी जी को हिसाब लेने का अधिकार नहीं है, कि उन्होंने मुन्शीजी की एजेंटी (मुख़्तयारी) स्वीकार की है, उनके नाम से चदा लिया और लोगो को लिखा कि मुन्शी जी के मुकद्दमे के वास्ते रुपया जमा करके हमारे पास भेजो हम उनको भेजेंगे। बस मुन्शी जी कह सकते हैं कि दयानन्द सरस्वती कौन है जो हमसे हिसाब मागें बल्कि मुन्शी जी उनसे हिसाब ले सकते हैं, क्योंकि देने वालो ने चदा स्वामी जी के पास इस लिये भेजा है कि वे सर्वत्र मुन्शी जी को देवें, अगर मुन्शी जी ने ये ही कहा कि हमारे ही नाम चंदा आता है तो क्या आश्चर्य है, जिन महाशयों ने चदा का रुपया स्वामी जी के पास भेजा है उन्होंने मुन्शी जी ही के नाम से रवाना किया है, यहां मैं अपने वचन के प्रमाण मे कुछ चदा देने वालों के पत्र,जो मुंशी इन्द्रमणि के नाम इस विषय मे आये हैं, उनका खुलासा लिखता हूँ जिनसे सिद्ध होता है कि चदा का द्रव्य मुन्शी जी के वास्ते स्वामीजी और लाला रामशरणदास

के पास भेजा गया था ।

(१) बाबू रत्नचन्द साहब सेक्रेटरी आर्यसमाज लाहौर संपादक आर्य अखबार अपने संख्या ११४ तारीख ३० अगस्त सन् १८८० ई० के पत्र में लिखते हैं कि कुछ रुपया यहां से जमा करके मेरठ भेजा गया है और कुछ जमा हो रहा है जब वह भी जमा हो जावेगा उसी जगह इरसाल कर दिया जावेगा आप आर्य-समाज मेरठ से रुपया मंगालें ।

(२) लाला विशुनदास साहब सेक्रेटरी आर्यसमाज फीरोजपुर अपने २३ सितम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में लिखते हैं कि चलते महीने की १९ तारीख को एक हुण्डी २२३॥=) दो सौ तेईस रुपया ग्यारह आना की आपके मुकद्दमे के खर्च की सहायता के लिये स्वामी जी की आज्ञानुसार लाला रामशरणदास साहब रईस मेरठ के पास भेज चुका हूं आशा है कि वहां से रुपया आपके पास पहुँचेगा इत्यादि० ।

(३) लाला वल्लभदास जी ३ सितम्बर सन १८८० ई० को गुरुदास पुर से लिखते हैं कि यहां से समाज के सभासद और कुछ शहर के और अमले के लोगों पर सब हाल विदित किया गया उन्होंने मुहब्बत के साथ डेढ सौ रुपए नौ आने चन्दा करके दिए सो हमने घ तारीख ३१ अगस्त सन् १८८० ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को मेरठ भेज दिए हैं सो आपके पास पहुँचेंगे और भी कोशिस कर रहा हूँ जो कुछ और होवेगा किया जावेगा गुरुदासपुर एक छोटा सा गांव है ।

(४) लाला रामचरण साहब रईस फर्रुखाबाद २३ अगस्त सन् १८८० ई० को लिखते हैं कि आपके विषय में चन्दा करने के लिए अन्तरंग सभा हुई और सभासदों की यह सम्मति हुई कि सौ रुपए भेजने अवश्य चाहिए और पैंतीस रुपएके अनुमान लाला मदनमोहनलाल की आमद रफ्त में खर्च हुए हैं वह भी सभाकोष पर पड़ेंगे, अब आपको सूचित करता हूँ कि आप के लिये बराबर उक्त रुपया मनी आर्डर द्वारा भेज दिया जावेगा, और भी जो काम हमारे लायक हो और हम से हो सकेगा उसके करने में किसी प्रकार की कोताही न होगी ।

(५) फिर २७ अगस्त को उक्त लाला रामचरण लिखते हैं कि आपका

पत्र बैरिस्टर के विषय और अन्य लेखों सहित आया बड़ी खुशी हुई और एक चिट्ठी नागरीमें आपको भेजी थी इसपत्र में उसका कुछ हाल नहीं शायद कि पहुँची होगी, और प्रथम सौ रुपए यहां की समाज से स्वीकार हुए हैं यह आज्ञा हो तो आपकी सेवा में रवाने किये जावें या मेरठ समाज में उसके मन्त्री के लेखानुसार भेज दिए जावें और यहां के समाज से तीन सौ और लाहौर आदि की समाज से डेढ़ हजार जमा हुआ है।

(६) और उक्त रामचरण का लेख है कि जो चन्दा यहां से सौ रुपए हुआ था स्वामी जी के लेखानुसार लाला रामशरणदास के पास मेरठ भेज दिया गया अब सब रुपया जो कुछ औरसमाजों से हुआ है सब आपके पास जल्द भेज दिया जावेगा १७ अगस्त सन् १८८० ई० *

(७) फिर फर्रुखाबाद ही से १७ सितम्बर को बाबू जगन्नाथप्रसाद रईस लिखते हैं कि आपका ३१ अगस्त का लिखा पत्र पाया हाल मालूम हुआ आप खातिर जमा रखिये खर्च के अनुसार रुपया आपके पास पहुँच जावेगा, समाज फर्रुखाबाद का रुपया मेरठ रामशरणदास के पास भेज दिया गया मालूम होता है कि और समाजों का रुपया भी उनही की मारफत आपके पास पहुँचा होगा, और जो न पहुँचा होगा तो अब पहुच जावेगा, आपको किसी तरहकी तकलीफ न होगी

(८) मुन्शी जानकी प्रसाद सब पोस्ट मास्टर रुड़की अपने १५ सितम्बर सन् १८८० ई० के पत्र मे लिखते हैं कि आपके मुकद्दमे का हाल सुनकर यहां के हिन्दुओं को अत्यन्त खेद हुआ है, जिसका लिखना व्यर्थ है संक्षिप्त वृत्तान्त यह है कि यहां के लोगों ने एक सभा करके कुछ रुपया उक्त मुकद्दमे की सहायता में देने को एकत्र किया है यदि आज्ञा हो तो भेज दिया जाय, बिना पूछे भेजना इस लिए उचित नहीं समझा गया कि जनाब को बुरा न लगे, और मुकद्दमें के हाल मे सूचित करते रहोगे तो दूसरा प्रबन्ध किया जायगा, यहांके आर्य्यसमाज से सौ रुपए मुन्शी आनन्द लाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ द्वारा भेजे गये हैं आशा है कि आपके पास पहुँचे होंगे पहुँच के समाचार अवश्य लिखियेगा इत्यादि० ॥

इसी प्रकार के अनेक पत्र हमारे पास मौजूद हैं परन्तु स्थानाभाव से

* यह तारीख १४ सितम्बर मालूम होती है भूल से १४ अगस्त छप गई है।

दाखिल नहीं किये गये आठ ही बहुत हैं और स्वामी जी के झूठा करने को इतना ही प्रमाण अधिक है और उनके देखने से विदित होता है कि चन्दा मुन्शी जी ही के मुकद्दमे के वास्ते किया गया था दयानन्द सरस्वतीके खर्च के तथा वेदमतकी रक्षा के लिए नहीं था फिर स्वामी जी क्योंकर उस रुपए के मालिक बन बैठे इसी का नाम सन्यासहै और इसी का नाम त्याग है, तत्पश्चात् एक पृष्ठ में जो स्वामी जी ने कथा अलापी है वह बिल्कुल झूठी है हम उसके उत्तरमें समय व्यर्थ व्यतीत करना उचित नहीं समझते झूठे से बातनहीं, अब आगेके लेखका उत्तर लिख सचझूठका निर्णय कराते हैं, मुरादाबाद जजी में जितनी मुन्शी इन्द्रमणि ने कोशिश की उससे मिस्टर हिल साहिब बैरिस्टर और बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ और बाबू रत्नचन्द और लाला माधोदास आदि वकील हाईकोर्ट भेदी हैं जिसको विश्वास न हो वह दरियाफ्त करले वरिक खुद लाला रामशरणदास लाला शादीराम सहित उपस्थित थे। किंतु स्वामी जी तो उलटे जजी मुरादाबाद में भी मुकद्दमे के बिगाड़ने पर उतारू थे कि आवश्यकता पर दो सौ रुपए नहीं दिये गुप्त खर्च करने का तर्क स्वामी जी की बुद्धि का अजीर्ण है, कि सदैव मागने लाने पर ही रहे हैं, राजकार्य्य की समझ उनको नहीं है, जिस सूरत में साधारण झगड़ों में गुप्त और प्रकट हजारहा रुपया खर्च होता है वो इस मुकद्दमें का क्या जिकर है, खैर स्वामीजी इस बात को तो मानते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणिने हाईकोर्ट में किसी प्रकार के खर्च से हाथ न हटाया, और स्वामीजी वहां भी विघ्नकारी हुये कि जब रुपये की अत्यन्त आवश्यकता हुई और लाला हरकृष्णदास साहब वकील हाईकोर्ट ने स्वामी जी को बारम्बार लगातार पत्र पठाये कि चन्दा के रुपये में से इतना रुपया शीघ्र भेजो, परन्तु स्वामी जी ऐसे चुप हुये कि किसी चिट्ठी का भी उत्तर नहीं दिया, और हाईकोर्ट से जो कुछ हुआ वह उनकी ही नियत का फल है, इसके अतिरिक्त यह किसकी नियतका फल है कि लाला कामताप्रसाद आदि स्वा० जी की तरफ से मुन्शी बख्तावरसिंह पर शाहजहांपुर की अदालत में नालशी हुये और अपना सा मुंह लेकर घर आए।

स्वामी जी सिद्ध करते हैं कि हमने ही गवर्नर जनरल के यहां से सौ रुपये दण्ड दूर कराया, आर्य भाई ख्याल करें कि स्वामी जी ने यह कितना बड़ा झूठ

बोला कि जिसकी नशेरात वे प्रतिदिन हाकिमों के सम्मुखभी यथार्थ रीतिसे सर्वथा झूठे सिद्ध हुए, क्योंकि स्वामी जी को इतना भी मालूम नहीं है कि सौ रुपये क्यों कर छूटे और किस हाकिम ने छोड़े। परन्तु यह शीघ्रता से लिख बैठे कि गवर्नर जनरल साहब बहादुर के यहा से हमने मुआफ कराये धन्य महाराज धन्य आपके सन्यास पर सत्य कहना आपके कौन कौन से इष्ट मित्र गवर्नर जनरल से मिले और मुन्शी इंद्रमणि की उन्होंने शिफारस की ? मुन्शी इंद्रमणि पर तो भांति भांतिके दोष लगाते ही थे अब गवर्नर जनरल साहिब बहादुर परभी दोष लगाते नहीं डरे, यदि गवर्नर जनरल साहिब को यह भेद मालूम हो और वे स्वामी जी के दोषा रोपण से ज्ञात होकर अपने अधिकारों को काम में लावें तब स्वामी जी को झूठ बोलने का स्वाद मालूम हो अब स्वामी जी बुद्धि के कानों से अज्ञान रूप रुई की बत्ती निकालकर श्रवण करलें कि यह सौरुपये जुर्माना लफटेण्ट गवर्नर इलाहा बाद की आज्ञा से मुआफ हुआ है, गवर्नर जनरल साहब बहादुरके यहाँ तो मुक दमें की मिसल भेजने तक की भी नौबत न आई, इस सूरतमें यदि स्वामी जी को कुछ दया हो तो बन को सिधारें, यदि स्वामी जी अब भी अपना धर्म सभालें तो जितना रुपया मुन्शी इंद्रमणि के मुकदमे के चदा का दोनों गुरु चेलों के आधीन है सर्वत्र मुंशी जी को देदेवें क्योंकि उन्होंने मुन्शीजी के नाम से रुपया जमा किया है, इस लिए उनको यह अधिकार नहीं है कि खुद मालिक बन बैठें, मुंशी इन्द्रमणि को अपने पास पहुचे रुपये के प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्होंने किसी दूसरे के नाम से रुपया ग्रहण नहीं किया किंतु अपने ही नाम से लिया और देने वालों ने अपनी खुशी से उनको दिया, हा यदि मुँशी जी किसी दूसरे के नाम से चन्दा एकत्रकरते तो अवश्य उनको कौड़ी२ का हिसाब देना उचित होता इस लिये स्वामी जी और लाला रामशरण दास को उचित है कि मुन्शी जी को हिसाब समझावें। और छ हजार का शेष द्रव्य सारा मुँशी जी को दे दें, और रसीद हस्ताक्षरी लेवें जबतक ऐसा नहीं करेंगे इस कलकसे मुक्त न होंगे क्या इसी ईमानदारी पर एक लक्ष रुपया उपदेशक मडली के बहाने से निकट बुलाया चाहते हैं, । फिर देखो यह व्यर्थ झूठ बोलते हैं किस दिन मेरठ में सभा स्थापित हुई थी और कौन २ उसके सभासद नियत हुए थे और किस समय उन्होंने यह

सम्मति दी थी कि शेष धन को स्वामी जी व्याजपर साहूकारको देवेंगे, और लेन देनकी कोठी खोलेंगे ! वाहरी अढ़ाई वर्षकी दिनचर्या रुपए डकारनेके लिये आपने सभा का ढकोसला बनाया क्या सन्यासी का यही धर्म है ? इसके अतिरिक्त मेरठ के लोग कौन हैं कि चदा के द्रव्यके विषयमें सम्मति करके गुरुजीकी गुप्त इच्छा पूरी करें ईमानदारी तो यह चाहती है कि छ: हजार की वाकी का रुपया मुंशी इन्द्रमणि के हवालेकरें और वे मुसलमानो के साथ धार्मिक वादानुवादमें लगावें क्योकि देने वालों ने रुपया इसी लिए दिया है, इस विषयमें चदा देने वालों के पत्र साक्षी और प्रमाण हैं और उनमे से नमूने के तौर पर कुछ ऊपर नकल किए गए यदि अब स्वामी जी की खातिर से चदा देने वाले भी अपनी पहिली लिखावट से प्रतिकूल कहने लगें तो ऐसा करना धर्म के भी प्रतिकूल होगा। स्वामी जी कहते हैं कि जब कभी आर्य्यों का अन्य मत वालों से झगडा हो तो इस चदा के द्रव्य से खर्च किया जाय यह कहना भी उचित नहीं है, क्योकि देने वालों ने रुपया केवल एक ही मुकद्दमें के लिए दिया है कि मुंशी इन्द्रमणि की मुसलमानों से सहायता की जाय, यह समझ कर नहीं दिया है कि इस रुपए से अन्य हिन्दुजन ही को सताया जाय, इसलिए ईमानदारी की यही बात थी कि उसी झगडेमें यह द्रव्य लगाते सो आपने प्रथम ही से एक कौड़ी खर्च करनी नहीं चाही दूसरे मत वालों के झगडे मे क्या लगाओगे, शायद दूसरे मत वाले तुम पुराणिक लोगों को समझते हो क्योंकि वैदिक आर्य्यों के प्रतिकूल केवल पौराणिक ही हो सकते हैं, इससे आपका गुप्त विचार यह पाया गया कि पौराणिक लोगों के खण्डन में वह रुपया खर्च करें परन्तु यह धर्म्म के प्रतिकूल है और जिस हडिया में खाना उसी में छिद्र करना इसी का नाम है, क्योंकि उस रुपए में दो तिहाई से अधिक पौराणिक लोगों का है वाहरी ! ईमानदारी जिन महाशयो ने मुन्शी इन्द्रमणिका नाम लेकर रुपया लिया उससे उन ही का खडन करोगे यह सर्वथा अधर्म है, किंतु उचित तो यही है कि जिस काम के लिये लोगों ने रुपया दिया है उसीमें लगाया जावे; बस गुरु और चेले को उचित है कि छ हजार का शेष धन मुन्शी इन्द्रमणि को प्रदान करे जिससे वे मुसलमानों के साथ वाद मे खर्च करें स्वामीजी के व्यर्थ लालच का यह फल हुआ कि जिन मुसलमानों ने हमारे देवताओं और ऋषियों के

विषय में मनमाने कुवचन भरे लेख पुस्तकादि लिखे हैं उन पर नालिश करनी रुक गई और "इन्द्रवज्री" के छपने में झगेला हुआ, इस लिए हम दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि इस बड़े उपकारी कार्य में स्वामीजी के लालचने ही विघ्नडाला यदि मुन्शी जी को किसी प्रकार का लालच होता तो स्वामी जी और लाला रामशरणदास से उसी समय छ हजार का दावा करते क्यों छ हजार में से छ सौ लेकर ही चुप बैठ जाते । परन्तु स्वामी जी का लालच यहां तक बढ़ा कि मुन्शी जी के नाम से अपने पास आये हुये द्रव्य को लौटा देने के बदले उलटा उनसे हिसाब मागने लगे, अब विद्वान् लोग समझलेवें कि धर्म के प्रतिकूल कार्य स्वामीजी ने किया या मुँशी जी ने ? परमात्मा का धन्यवादहै कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने जितने दोष मुन्शी इन्द्रमणि पर लगाये थे वे सब स्वामी जी को ही सिद्ध होते हैं, अब स्वामी जी के लेख का यह उत्तर सम्पूर्ण करके आगे संपादक 'देशहितैषी' के लेखका उत्तरलिखा जाता है, यद्यपि मिथ्यावादी का कताक झूठ बोलना ही प्रबल है, परन्तु कभी कभी उसके मुखसे भी बिना विचारे सत्य बात निकलही जाती है जिससे उसका असत्य वादी होना स्वतः सिद्ध हो जाता है, देखो उसने लिखा है कि जितना रुपया मुन्शी इन्द्रमणि के झगड़े के विषय में आपके पास आया । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस सर्वस्व द्रव्य का अधिकारी मुन्शी इन्द्रमणि है क्योंकि वह रुपया उनकी ही सहायता के लिये एकत्रित किया गया था, फिर किस मुंह से हिसाब मागा जाता है, स्वामी जी को उचित है कि खुद मुन्शी को हिसाब देवें, क्योंकि उन्होंने मुन्शी जी के नाम से रुपया जमा कियाहै, और यदि यह मान लिया जाय कि स्वामीजीने अपना बनावटी कल्पित हिसाब किसी समाचार पत्र में मुद्रितभी करा दिया तो उससे वह छुटकारा नहीं पा सकते क्योंकि आश्चर्य नहीं कि वह अखबार सम्पूर्ण चन्दा देने वालों की दृष्टि में भी न पड़ा हो, उसके लेख से वे भेदी न हुये, बहुधा पत्र ऐसे हैं कि जिनका बहुधा मनुष्य नाम तक नहीं जानते, बस जब कि चन्दा देने वालों को खबर तक न हो तो वे क्योंकर जान सकते हैं कि स्वामी जी के हिसाब में हमारा रुपया जमा है या नहीं । इसलिए स्वामी जी सत्यवक्ता हुआ चाहें तो मुन्शी इन्द्रमणि को हिसाब देवें कि उनके पास बहुधा चन्दा देने वालोंके पत्र मौजूदहैं, जिससे वह स्वामी जी के सच झूठ को जान सकते हैं, जब तक स्वामी जी यथार्थ हिसाब

अढाई सेर अगर तगर और दश मन काष्ट लेकर वेदानुकूल जैसे कि संस्कारविधि में लिखा है वेदी बना कर तदुक्त वेद मन्त्रों से होमकर के भस्म करे, इससे भिन्न कुछ भी वेद विरुद्ध क्रिया न करे और जो सभाजन उपस्थित न हों तो जो कोई समय पर उपस्थित हो वही पूर्वोक्त क्रिया करदे और जितना धन उसमें लगे उतना सभा से ले ले और सभा उसको दे दे ।

(६) अपनी विद्यमानता मे में और मेरेपश्चात् यहसभा चाहे जिस सभासद् को पृथक् करके उसका प्रतिनिधि किसी अन्य योग सामाजिक आर्य पुरुष को नियत कर सकती है परतु कोई सभासद् सभा से तब तक पृथक् न कियाजाय जब तक उसके कार्य में अन्यथा व्यवहार न पाया जाय ।

(७) मेरे सदृश यह सभा सदैव स्वीकारपत्रकी व्याख्या व उसके नियम और पतिज्ञाओ के पालन व किसी सभासद् के पृथक् करने और उसके स्थान में अन्य सभासद् के नियत करने व मेरे विपित्ति और आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो समस्त सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय पाया व पावे, और जो सम्मति में परस्पर विरोध हो तो बहु पक्षानुसार प्रबध करे, और सभापति की सम्मति को सदैव द्विगुण जाने ।

(८) किसी समय भी यह सभा तीन से अधिक सभासदोंको अपराधकी परीक्षा कर पृथक् न कर सके जब तक पहिले तीन के प्रतिनिधि नियत न करले ।

(९) यदि सभा में से कोई पुरुष मर जाय व पूर्वोक्त नियमो, और वेदोक्त नियमों और वेदोक्त धर्मो को त्याग कर विरुद्ध चलने लगे तो इस सभा के सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से पृथक् करके उसके स्थान मे किसी अन्य योग्य वेदोक्त आर्य पुरुष को नियत कर दे परतु जब तक नित्य कार्य के अनंतर नवीन कार्य का आरम्भ न हो ।

(१०) इस सभा को सर्वथा प्रबध करने और नवीन युक्ति निकालने का अधिकार है पर पूरा पूरा निश्चय और विश्वास न हो तो पत्र द्वारा समय नियत करके सपूर्ण आर्यसमाजों से सम्मति ले ले और बहु पक्षानुसार उचित प्रबंध करे ।

(११) प्रबध न्यूनाधिक करना व स्वीकार व अस्वीकार करना व किसी सभासद् को पृथक् व नियत करना व आय व्यय और सख्या की जांच परताल

सभासद् को पृथक् न नियत करना व आय व्यय और सचय की जांच परताल करना आदि लाभ हानि सब सभासदों को वार्षिक व षट् मासिक पत्र द्वारा सभापति छपवा कर विदित करे ।

(१२) इस स्वीकारपत्र संबन्धी कोई झगडा टंटा सामयिक राज्याधिकारियों की कचहरी में निवेदन न किया जाय यहसभा अपने आप न्याय व्यवस्था कर ले परन्तु जो अपनी सामर्थ्य से बाहर हो तो राज्यगृह में निवेदन करके अपना कार्य सिद्ध कर ले ।

(१३) यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्यजन को पारितोषिक अर्थात् पेन्शन देना चाहूँ और उसकी लिखित पढित कराके रजिष्ट्री करा दूं वो सभा को उचित है कि उसको माने और दे ।

(१४) किसी विशेष लाभ उन्नति परोपकार और सर्व हितकारी कार्य्य के वश मुझे और मेरे पीछे सभा को पूर्वोक्त नियमों के न्यूनाधिक करने का सर्वथा सदैव अधिकार है । (हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती के)

तत्पश्चात् अगले दिन महाराणा जी ने द्वादश शत कलदार रौप्य मुद्रा और एक सन्मान पत्र स्वामी जी को भेट किया और स्वामी जी के शिष्य रामानन्द को एक शत मुद्रा और एक दुशाला और फीरोजपुर के अनाथालय को ५००) और अनाथों को २००) दिया ।

श्री महाराणा जी उदयपुर के दिए हुये सन्मान पत्र की नक़ल ।

श्रीमदेकलिङ्गेश्वरोजयति ।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्यवर्य्य श्री ५ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती यति वर्येषु । इत महाराणा सज्जनसिंहस्य नतिनय समुल्लसतुतरतु । आपका अठे साढ़े मास का निवासस् चित्त अत्यन्त आनन्द में रह्यो । क्योंकि आपकी शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नति दायक है, और आपका संयोगस् के ही न्यायधर्मादि शारीरक कार्यों मे निस्सन्देह लाभ प्राप्त होयो कि म्हां का सभ्य जना सहित दृढाशा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश वा श्रेष्ठ पुरुषा का दृढ होवे है, जो स्वकीय आचरण भी प्रविष्ट्रता नहीं राखे सोयो मे यथार्थ मिल्यो अब म्हें आपका वियोगको संयोगतो नहीं चावा हां परन्तु आपरो

शरीर अनेक मनुष्या के उपकारक है जीसू अवरोध करणों अनुचित है तथापि पुनरागमन सू आपभी म्याका चित्त ने शीघ्र अनुमोदित करोगा इत्यलम् । सम्वत् १९३९ फाल्गुण कृ० ५ बुधवार ।

(हस्ताक्षर महाराणा सज्जन सिंहस्य)

सायंकाल के समय पीनस सवार हुआ १ मार्च सन् १८८३ ई० बृहस्पतिवार को स्वामी जी उदयपुर से शाहपुरा को चल पड़े (क्योंकि, शाहपुराधीश का बहुत दिनों से निमन्त्रण था) तीसरे दिन नीम्बाहेड़ा के स्टेशन पर पहुच कर रेल में सवार हो ३ मार्च शनिवार के दिन चित्तौड में पहुँच राजउदयपुर के नियत किये मकान में उतरे और तीन रात्रि यहां पूर्ण कर ७ मार्च को शाहपुरा मे पहुच और ज्येष्ठ कृष्णा ४ सम्वत् १९४० तक वहां विराजे इस अवसर पर स्वामीजी को एक नवीन वेदांती का निम्न लिखित पत्र मिला ।

ओं तत् ब्रह्म—श्रीमद्दयाऽऽनन्द स्वामी की सेवा में प्रार्थना श्रीमद्भारतीय प्रजा के अतीव हितकारी हैं, अतएव श्रीमान् को परमेश्वर चिरायु करे; श्रीमान १९९९ मतन कों खंडित करते हैं सो परस्पर पक्षपातीय होने से खंडनीय हैं, उक्त मतानुसार श्रीमत्स्थापित मत का भी खंडन होने दें । श्रीमानने यह निर्णय किया है कि मिथ्याभिमान् स्वार्थ साधन में तत्पर अन्याय का कारण पापमें प्रवृत्ति चोरी जारी अनृत भाषण पक्षपात किसी का नुक्सान इत्यादि निषिद्ध कर्मों को छोड़ना और इनसे विपरीत सद्धर्मानुष्ठान करणों इस प्रकार श्रीमत्के मुखारविन्दु से समस्त श्रवण किया है परन्तु शोक की वार्ता यह है कि दयानन्द दिग्विजयार्कीय द्वितीय खंड समाजिक प्रकरण प्रमाणाष्टक के सातवें अष्टकमें पृष्ठ १६९ पंक्ति २ वा ६ विषै जलसा चितौड़ मे (महाराणा श्रीउदयपुराधीश श्रीमत् दयानन्द की सेवा में दो बार उपस्थित होते थे यद्यपि लाठ साहब के आने से महाराणा साहब को अवकाश कम मिलता था) इतना ही लिखने से महाराणा साहब का दो वक्त पधारना सिद्ध होजाता परन्तु आप नृगराज के गोदान विषय में श्लोक फरमाते हैं कि—

"यावन्त्यः सिकताभूमे यावन्त्योदिवितारकाः ।
यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीअर्बुदस्सगा. ॥१॥ इति"

तात्पर्य्यछै झूठ बोलने वाले को तृप्ति नहीं होती यह आप का फरमाना यथार्थ है (तथापि उक्त नियम विषय मे कसर नहीं पड़ने दी) महाराणा साहबने इति शेष यह क्या आर्य पुरुषों का समाज है, नहीं झूठ दम्भादिक दोषनते रहित का नाम अर्य्य है जाको तो लोभी झूठे दाम्भिको का समाज कहना चाहिये। इस प्रकार १ जगह झूठ के लिखने से स्थाली पुलाक न्यायतें सर्वत्र झूठ की सम्भावना होवे है, अब विचार करना चाहिये कि श्रीमान् के प्रतिष्ठित आर्य्य गोपाल शास्त्री ने अनृत क्यों लिखा है। क्या श्रीमान् उनको अधर्म छुड़वाने का सदुपदेश नहीं देते वा स्वयमेव आप के आर्यलोग मथकर्त्ता तो अधर्म्मा चरण करें और अन्यों के ताई धर्म रौचिक वाक्य कहकर निजमन में लेना और श्रीमान् न्याय शील धर्मा-धर्म्म के निर्णय में कथन भी करते हैं। पक्षपात रहित न्यायाचरण धर्म। और पक्षपात सहित न्यायाचरण धर्म। अतएव हम को आशा है कि द० द्वि० स० सा० प्र० प्र० पृ० के सातवें अष्टक पृष्ठ १६९ पंक्ति ७ वा० ६ विषै पक्षपात रहित सत्यासत्य विचार करेंगे। इति। चैत्र वदि १३ गुरु. स० १९३८ आप का कृपा-भिलाषी साधु अमृतराम नवीन वेदाती। इदानीम निवासी शहर बून्दी ठिकाना शुक्लेश्वर महादेव, कृपा पत्र वेग से, चैत्र शुक्ला १७ तक देना।

इसके उत्तर मे स्वामीजीने गोपालराव को यह लिखा।

पंडित गोपाल राव हरिजी आनन्दित रहो।

आज एक साधु का पत्र मेरे पास आया वह आपके पास भेजता हूं, साधु का लेख सत्य है, परन्तु आपने चीतौडा सम्बन्धी इतिहास मे न जाने कहा से क्या सुनसुनाकर लिख दिया उस काल उस स्थान में मेरा उदयपुराधीश से केवल तीन ही वार समागम हुआ आपने प्रति दिन दोवार होता रहा लिखा है। आप जानते हैं कि मुझे ऐसे कामों के परिशोधन का अवकाश नहीं यद्यपि आप सत्य प्रिय और शुद्ध भाव भावित ही हैं और उसी हित चित से उपकारक काम कर रहे हैं परन्तु जेत्र आपको मेरा इतिहास ठीक ठीक विदित नहीं तो उसके लिखने मे कभी साहस मतकरो। क्योंकि थोड़ासा भी असत्य होजाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड जाता है ऐसा निश्चयरक्खो और इस पत्र का उत्तर शीघ्र भेजो। वैशाख शुक्ला० ७ सम्वत् १९४० स्थान शाहपुरा। [दयानन्द सरस्वती]

इधर स्वामी जी ने अमृतराम को लिख दिया कि यह भूल गोपालराव की है हमारी नहीं है और आज हमने उसको लिखभी दियाहै तुमको वह उत्तर देगा।

तारीख २८ अप्रैल सन् १८८३ ई० मिती वैशाख कृ० ७ सम्वत् १९४० को ऋग्वेदभाष्य अंक ४८। ४९ वैदिक यन्त्रालय इलाहाबाद से छप कर प्रकाशित हुआ।

महाराजा जोधपुर के मनुष्य बुलाने को आए तब तारीख २६ मई सन् १८८३ ई० को शाहपुरा से चल कर २७ मई को अजमेर नगर पधारे। और जो सम्मान पत्र महाराजा शाहपुरा ने स्वामी जी को भेट किया उसकी नकल निम्न लिखित है।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारणार्थ कारुणिक परम हंस परिब्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज के चरणारविंदों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की बारम्बार नमस्ते अस्तु। वैदिक धर्म उपदेशक मंडली में मेरी ओर से एक उपदेशक रहे जिसके व्यय के वास्ते एक मुद्रा नित्यप्रति अर्थात् मासिक ३०) रुपया यहा से निरन्तर ब्याज की विधि से प्राप्त होते रहेंगे। सो वैदिक धर्म की महिमा सुना कर पाखण्डादि खण्डन करते रहें। अपरंच यहां आपका विराजना सार्द्धद्वय मास पर्यंत हुआ तथापि आपके सत्य धर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई आशा थी कि आप ग्रीष्मात अत्रस्थित होते परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्त धर्म उपदेश ग्रहण की पुन सत्याचरण असत्य का त्याग आपके मुखारविंद से श्रवण करने की अभिलाषा देख के आपने वहां पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोडों मनुष्योंके उपकारार्थ प्रकट हुआ है, यह समझ के मेरी भी सम्मति यही हुई कि आपका पधारना ही उत्तम है, यही समझ के यहाँ विराजने की प्रार्थना नहीं की आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे। मिती ज्येष्ठ कृष्णा० ४ सम्वत् १९४०।

[हस्ताक्षर महाराजा नाहरसिंहस्य]

स्वामी जी अजमेर शहर में एक दिन ठहर कर सर्व आर्यसमाजियों से मिले फिर रेल मे सवार हो पाली गए और पाली से राजा साहब जोधपुराधीश की भेजी हुई सवारियों मे बैठ कर जोधपुर पधारे, भाई फैजउल्ला खा की कोठी

पर डेरा हुआ, राजा साहब ने ५ मुहर २५) रुपए नकद भेंट किए और सेवा करने को अनेक चाकर नियत कर दिए ।

इसी अवसर पर मुरादाबाद आर्यसमाज से एक विज्ञापन सर्व समाजों में भेजा गया जिसकी नकल यह है ।

॥ विज्ञापन ॥

महाशय ! नमस्ते—विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और आर्यसमाज के नियम विरुद्ध आचरण करने के कारण मुन्शी इन्द्रमणि जी प्रधान और लाला जगन्नाथदास जी पुस्तकाध्यक्ष अपने अपने पद और समासदी इस आर्यसमाज से तारीख २९ मई सन् १८८३ ई० को अलग किये गए और मुन्शी दुर्गाचरण जी प्रधान नियत हुए आगे को खत वगैरह मुन्शी खेमकरणदास मन्त्री के नाम, ठिकाना—मकान साहु श्यामसुन्दर जी रईस मंडी चास मुरादाबाद भेजे जावें । तारीख ३० मई सन् १८८३ ई० ।

[हस्ताक्षर खेमकरणदास मन्त्री आर्यसमाज मुरादाबाद *]

इन्हीं दिनों में एक विज्ञापन उर्दू अक्षरों में नारायणदास सुदर्शन यन्त्राध्यक्ष मुरादाबाद ने और एक लेख तारीख ३१ मई सन् १८८३ ई० के आर्यदर्पण शाहजहांपुर में लाला जगन्नाथदास मुरादाबाद निवासी ने मुद्रित कराया नकल दोनों की इस प्रकार है ।

इत्तिला—गुप्त न रहे कि मुन्शी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द सरस्वती के मध्य बहुधा विषयों में धर्म की बातों में प्रतिकूलता चली आती थी और सदैव वादानुवाद होता रहताथा और स्वामीजी एक दो विषयमें नित्य मुन्शीजी के वाक्य ग्रहण करते रहे हैं, जैसे प्रथम स्वामीजी जीव और प्रकृति व जगत्को आदि मानते थे और उसीके अनुकूल सत्यार्थप्रकाश आदिमें लिख भी चुके थे परन्तु जिस समय मुंशी इंद्रमणिने उनको समझाया तबसे उन्होंने जीव आदिका अनादि होना स्वीकार करके अपनी पहिली लिखावट का खंडन करना आरम्भ करदिया, इस प्रकार के अनेक विषयहैं जिनमें मुंशीजी और स्वामीजीकी एकता होती चली जातीथी परन्तु अब सामाजिकविषयोंमें दोनों महाशयों का विवाद होकर फूट पड़गई है, और आगे

* यह विज्ञापन सब समाजों में भेजा गया था ।

को यह आशाभी नहीं है कि उक्त विषयमें दोनों महाशयोंकी एकता हो, इस लिये ता० १५-५-१८८३ ई० से शुदर्शन यन्त्रालयसे एक मासिक पत्र नागरी और उर्दू दोनों भाषाओं में बीश २० छब्बीश २६ कागज पर धार्मिक विषयों के निर्णय मे प्रचलित होगा। और कलेवर २४ पृष्ठ से कम न होगा, चौथे या पांचवें पत्र से स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ उन विषयों में वाद स्थापन होगा जिन की मुन्शी जी और स्वामीजी मे प्रतिकूलता है, और स्वामीजी की सम्पूर्ण पुस्तकों को न्यायदृष्टि से देखकर यथार्थ आलोचना की जायगी, आर्य्यों को उचित है कि परमात्मा का धन्यवाद करें कि उन के लिये प्रश्नोत्तर करने का अवसर हाथ आया अब स्वामीजी को चाहियेकि इस पत्र की आलोचना पर हर्ष करें या उत्तर लिखें, और उत्तर लिखने में कपड़े की ओट शिकार खेलना छोड़दें। अपना लेख दूसरों के नाम से छपाना बहुत बुरा है, प्रकट में अपना नाम मुद्रित कराईये ताकि लोगों की दृष्टि में उस लेख का आदर हो, इस वादानुवाद से प्रयोजन तो इतना ही है कि सत्य की जड हरी हो और असत्यकी जड कटे ॥ इति ॥

(प्रकट कर्ता नारायणदाश सुदर्शनयन्त्रालयाध्यक्ष)

॥ आर्य्य दर्पण में जगन्नाथ दास का लेख ॥

जो कि आर्य्य प्रश्नोत्तरी में प्रश्न ९ के उत्तर मे लिखा है कि एक परब्रह्म पुरुषोतम सच्चिदानन्द ही की उपासना करनी चाहिये, इस पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने तर्क किया है कि पुरुषोतम शब्द वेद का नहीं है, इसलिये निवेदन यह है कि जब स्वामीजी ने पुरुषोतम शब्द वेद का न होने से मुझपर तर्क किया है तो लाजिम आया कि स्वामीजी अपने पुस्तकों में ऐसे शब्द भूलकर भी न लिखें जो वेदों से भिन्न हों, इसलिये उन से प्रश्न करता हू कि हे महाराज आपने जो "सत्यार्थप्रकाश" और "आर्य्याभिविनय" आदि अपनी पुस्तकों में परमेश्वर, परमात्मा अधमोद्धारक, दयालु, दयानिधि, पतितपावन आदि शब्द लिखे हैं वह वेद में कहां हैं, पञ्च महायज्ञविधि जो खास उपासना की पुस्तक है, उस में जो आपने इंद्रिय स्पर्श और मार्जन के मन्त्र लिखे हैं वह किस वेद में हैं मन से ईश्वर की परिक्रम करना वेद मे लिखा है या आप ही की आज्ञा है, बलिवैश्वदेव विधि में जो जो मन्त्र आपने लिखे हैं वह किस वेद के हैं, आर्योद्देश्यरत्नमाला में जो

आपने आठ प्रमाण लिखे हैं वह वेद ही से लिखे हैं या पुराण वालों से विद्याध्ययन की है, "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ३०२ व ३०३ में मांस भक्षण की आज्ञा दी है, और गोमेध यज्ञ में वृषभ और वन्ध्या गौ के हनन की आज्ञा लिखी है, इसी प्रकार संस्कार विधि में मांस खाना लिखा यह वेद में कहा है।

विदित होकि इस विषय में हमारा और स्वामीजी का बहुत बड़ा विरोध है, हमारा कथन यह है कि किसी यज्ञ में किसी पशु का मारना और मांस खाना वेद की आज्ञा प्रमाण और उचित नहीं है, यह कितनेक प्रश्न स्वामीजी और उन के अनुयाईयों की सेवा में पुनः पुनः भेजकर निवेदन करता हूं कि इनका यथार्थ उत्तर प्रदान करें नहीं तो अपनी भूल स्वीकार करें।

(हाकिम जगन्नाथ दास)

जोधपुर में नौकर कराने के लिये स्वामीजी ने एक पत्र भाई जवाहिरसिंह सेक्रेटरी आर्य्यसमाज लाहौर को लिखा जिस की नक़ल इस प्रकार है।

भाई जवाहिरसिंह जी आनन्दित रहो।

आप का पत्र पाया विशेष आनन्द हुआ, आप रियासत जोधपुर में अवश्य आओ मुझको निश्चय है आप के आने से यहाँ बड़ा आनन्द और उन्नति होगी इत्यादि० इत्यादि० [हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वति जोधपुर]

और भाई जवाहिरसिंह जोधपुर में आनकर एक चाकरी पर लगाये गये तब स्वामीजी ने उनको उपदेश रूप एक पत्र और लिखा जिस की नक़ल यह है।

प्रियवर भाई जवाहिरसिंह जी * आनन्दित रहो।

आप जोधपुर आये बड़ी खुशी हुई,।

निश्चय है कि आप अपने काम पर तत्पर रहेंगे और श्रीमान् महाराजाधिराज को अति आनन्दित करेंगे और अपने पुरुषार्थ स्वभाविक सद्गुणों और उत्तम कामों से अपनी कीर्ति को बढ़ावेंगे,, इत्यादि० ज्येष्ट कृष्णा १० सम्वत् १९३०

तारीख ३० जून सन् १८८३ ई० मिति आषाड कृष्णा १० को वैदिक यन्त्रालय इलाहाबाद से ऋग्वेद भाष्य अंक ५० ।५१ छपकर प्रकाशित हुआ। ‡

---

* यह वही जवाहिरसिंह हैं जो अब स्वामी दयानन्द के पूरे शत्रु होगये हैं।

‡ इससे अगला अंक स्वामीजी के मरे पीछे प्रकाशित हुआ था।

आषाढ शुक्ला० ८ सम्वत् १९४० के भारत मित्र पत्र में एक लेख स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रतिकूल छपा था जिस का उत्तर स्वामीजी ने इस प्रकार देश हितैषी मे छपाया, ।

श्रीयुत देशहितैषी सम्पादक समीपेषु । महाशय

भारत मित्र सम्वत् १९४० आषाढ सुदी० ८ गुरुवार के छपे हुए पत्र में किसी ने वेद पर आक्षेप पत्र छपवाया है उस लेख का अभिप्राय यही विदित होता है कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रांत नही है । परतु इस प्रश्न के करने वाले ने प्रश्न मात्र ही किया है, अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करने के लिये कोई विशेष हेतु नहीं लिखा जो किसी वेद वचन पर भ्रात पन दिखलाता तो उसका उत्तर उसी समय दिया जाता, जैसे कोई कहे कि यह एक हजार रुपयों की थैली सच्ची नहीं दूसरे ने उससे पूछा क्या मैं तुम्हारे कहने मात्र ही से थैली को झूठ मान सकता हूँ जबतक तुम झूठा रुपया इसमें से १ भी निकाल के सिद्ध नहीं कर देते तब तक थैली को झूठ नहीं मानूगा । वैसा ही मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहब और जिसने आपके पत्र में छपायाहै इन दोनो महाशयोका लेख है यहां उनको योग्य था और है कि किसी एक व अनेक मत्रों को अपने अभिप्राय के अर्थ सहित वेद अध्याय मन्त्र सख्या पूर्वक लिख कर पश्चात् कहते कि वेद ईश्वरकी वाणी और अभ्रात नहीं है तो प्रत्युत्तर के योग प्रश्न होता अब भी यदि उत्तर जानने की इच्छा हो तो इसी प्रकार करें नहीं तो कुछ भी नहीं है, किन्तु इसमें इतनी बात तो समाधान देने के किसी प्रकार योग्य है सो यह कि वेदों मे मत भेद क्यो है, अब देखिये यह भी इनकी गोल माल बात है क्योंकि वेदो मे किस ठिकाने और किन मन्त्रों में किस प्रकार के मत भेद हैं, हॉं । विद्याभेद से कथनका भेद होना तो उचित नहीं है, जो व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, वैद्यक, राजविद्या, गान, शिल्प और पृथ्वी से लेके परमेश्वर पर्यंत की अनेक विद्याओं की मूल विद्या वेदो में है इनके सकेत शब्दार्थ और सम्बन्ध भिन्न २ हैं जैसे व्याकरण विद्या से ज्योतिष विद्यादि के सकेत परिभाषा और पदार्थ विज्ञापन पृथक् २ होते हैं, वैसे इन सब विद्याओं के वाचक अर्थात् प्रकाश मन्त्र भी पृथक् २ अर्थ के प्रतिपादक हैं यदि इन्हीं को भेद कहते हैं तो प्रश्न कर्ताका कथन असगत है और जो दूसरे प्रकारके मतभेद मानते हैं तो उनका कथन

सर्वथा अशुद्ध है इसलिए प्रश्नकर्ताओं को उचित है कि पूर्वोक्त प्रकार से चारों वेदों में से कोई एक मंत्र भी भ्रांत प्रतीत होवे वह आपके पत्र मे मिस्टर ए ओ. ह्यूम साहब छपवावें उसका उत्तर भी आप ही के पत्र मे उचित समय में छपवा दिया जायगा और उनको वेद के निर्भ्रांत होने के जानने की पक्की जिज्ञासा हो तो मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को देख लेवें यदि उनके पास न हो तो वैदिक यन्त्रालय प्रयागसे मगाकर देखें और जो उनको आर्यभाषाका पूरा ज्ञान न हो तो किसी सत्यवक्ता दुभाषिये पुरुष से सुने इस पर जो उनको शंका रहजाय तो मुझसे समक्ष मिल के जितनी शंका हों उन सब का यथावत् समाधान कर लेवें क्योंकि पत्रो से शंका समाधान होने में विलम्ब होता है और अधिक अवकाश की भी अपेक्षा है, और मुझको वेदभाष्य के बनाने के काम से अवकाश न मिलने के कारण विशेष प्रश्नोत्तर करने का समय नहीं है और जो इन्होंने यह लिखा है कि स्वामीजी ईश्वर व ईश्वरकी प्रेरणा युक्त हों तो उनका भाष्य निर्भ्रम होसके० मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूँ परन्तु वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं इस अभिप्राय से कि यहाँ तक मनुष्यों की विद्या और बुद्धि पहुच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्यकर सकेंगे, इसलिये यावत् मेरी बुद्धि और विद्याहै तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करताहूँ, और वह अर्थ सब सज्जनोंके दृष्टिगोचर हुआ है, होता है और होगाभी, यदि कहीं भ्रांत हो तो उक्त साहब प्रकाशित करें, बड़े शोक की बात है कि आज पर्यंत एक भी दोष वेदभाष्य में से कोई भी नहीं निकाल सकता है फिरभी इसका भ्रम दूर नहीं हुआ, ऐसी निर्मूल शंका कोई भी किया करे इससे कुछ भी हानि नहीं हो सकती और सत्यार्थ होने ही से वेदों का निर्भ्रांतत्व यथावत् सिद्ध है, यदि इस मेरे बनाए भाष्यमें मिस्टर ए ओ ह्यूम साहब को भ्रम हो तो इसमें भ्रांतमत्व किसी मन्त्र के भाष्य द्वारा आपके पत्र में छपवा देवें मैं उत्तर भी आप ही के पत्र द्वारा दूंगा और जो थियोसोफिस्ट के अध्यक्ष ऐसी बातें करें इसमें क्या आश्चर्य्य है क्योंकि अनीश्वरवादी बौद्धमतावलम्बी होकर भूत प्रेत और चुटकलों के मानने वाले हैं, बड़े शोक की बात है कि सर्वथा विद्या सिद्ध परमात्मा को न मान कर भूत प्रेत मृतकों मे फस कर और भोले मनुष्यों को फसा अपने को सुधारने वाले मानना यह कितनी बड़ी अनु

चित बात है इनको नास्तिक मत जो कि ईश्वर को न मानना वही प्रिय लगता है परन्तु इसमें इतनी ही न्यूनता है कि भूत प्रेतों ने इनको घेर लिया सच है जो सत्य ईश्वर को छोड़ेंगे वे मिथ्या भ्रमजाल भूत प्रेतो और बन्ध्यापुत्र वत्कुतुहूँबी-लाल आदि क्यो न फसेंगे, बहुत से समाचारों में छपवाते हैं कि इतने सौ इतने हजार मनुष्यों को मिस्टर एच ए० कर्नल अलकाट साहिबने रोग रहित किया यदि यह बात होती मुझको क्यों नहीं दिखलाते और मनवाते और मेरे सामने कि जिस-को मैं कहू उसको भी निरोग करदें तो मैं थियोसाफिस्टों के अध्यक्ष को धन्यवाद दू, इसमे मुझको निश्चय है कि जैसे एक थियासाफिस्ट दभ के मारे, लाहौर में अगुली पटवा के अंग भग होगया कहीं ऐसी गति मेरे सामने इनकी न हो जावे, और करामात कुछ भी काम न आवेगी मैं प्रसिद्धी से कहता हूँ कि यदि इनमे कुछ भी अलौकिक शक्ति व योग विद्या हो तो मुझको दिखलावें। मैंने जहांतक इनकी लीला सिद्ध और योग्य विषय देखी है वह मानने के योग्य नहीं थी अब नई-विद्या कहीं से सीख आये ? मुझको तो यह विषय निकम्मा आडम्बर रूप दीखता है॥ अलमिति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु। मिती श्रावण बदी ४ सम्वत १९४० वि० स्थान जोधपुर।

(दयानन्द सरस्वती)

चार महीने तक स्वामी जी जोधपुर में विराजमान रहे, अचानक आश्विन कृष्णा एकादशी को स्वामी जी को श्लेष्मा (जुकाम) की व्याधि उत्पन्न हुई, उसके चौथे दिन शाहपुरा के निवासी रसोईदार से दुग्ध-पीकर सो गये, परन्तु पाचन न होकर रात्रि भर में तीन बार वमन हुआ, फिर प्रात समय कुछ दिन चढे (सदैव के नियम विरुद्ध) सूते उठे तो एक वमन और हुआ * फिर तो जल पी पी कर दो तीन वमन स्वत कर डाले और शीघ्र अग्नि कुंड में धूप डलवा कर कोठी में सुगन्ध फैलाई पश्चात् उदर शूल उत्पन्न हुआ तब डाक्टर सूरजमल बुलाये गये, उन्होंने वमन बन्द करने की औषधि देकर पूछा अब क्या हाल है; तब बोले उदर शूल हो रहा है प्यास बन्द की दवाई मिलनी चाहिये। तदनुसार दवा दी गई परन्तु पेट का दर्द अधिक होता चला गया तब लाचार ३० तारीख

* सदैव तो कुछ रात रहते ही सूते उठ जगली वायु लेने चले जाते थे।

सितम्बर को चार बजे राजा साहिब प्रतापसिंह जी के नौकरों ने बड़े डाक्टर अली मर्दाखाँ को बुलाया उन्होंने स्वामी जी के पेट पर पट्टी बाधी, प्रथम तारीख अक्टूबर को प्रात. समय डाक्टर साहिब ने पुन आनकर गिलास लगाये। २ अक्टूबर को स्वामी जी ने डाक्टर साहिब से जुलाब देने को कहा उसने ३ अक्टूबर को गोली खिलाई जिससे ९ बजे तक तो दस्त नहीं आये परन्तु १०बजे से दस्त आरम्भ होकर रात्रि दिन में ३० से अधिक दस्त होगये। ४ अक्टूबर को प्रात काल फिर डाक्टर लोग आये स्वामीजी ने कहा दस्त बहुत हुये जी घबराता है, इसरोज बिना जुलाब के ही अनेक दस्त हुये और सायकाल को एक दस्त ऐसा कठिन हुआ कि स्वामी जी को मूर्छा हो गई तत्पश्चात् तो दस्त के साथ ही मूर्छा होने लगी थी।

आश्विन शुक्ला ३ सम्वत् १९४० को वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से स्वामी जी कृत निघंट पुस्तक छपकर निकला *।

६ अक्टूबर को स्वामी जी ने डाक्टर से कहा अब दस्त बन्द होने चाहिए क्योंकि मूर्छा बराबर होती है, इस उपरान्त मुख मे छाले और सम्पूर्ण शरीर में फफोले पड़ गए हिचकी जमाई जारी हुई निकटवर्ती मनुष्यों को शंका हुई कि यह कैसाजुलाबहै, तारीख७-८-९-१०-११ अक्टूबर इसी प्रकार व्यतीतहुई, तब बारह अक्टूबर को अजमेर आर्यसमाज के एक सभासद् नें यह समाचार अजमेर में फैलाए तब तो अजमेर समाजने तारों द्वारा मेरठ फर्रुखाबाद लाहौर उदयपुरादिक स्थानों में कोलाहल मचा दिया और अनेक मनुष्यों ने स्वामी जी के निकट पहुच प्रार्थना की कि यहा रहना उचित नहीं आबू चलना चाहिये तब स्वामी जी १६ अक्टूबर को आबू चलने पर उद्यमी हुए, यद्यपि जोधपुर वालों ने चाहा कि ऐसे समय आपका जाना हमारी अपकीर्ति और निन्दा का कारण है परन्तु जब देखा कि इनका यहा ठहरना अब कठिन है तो राजा साहब ने २०००) रुपया और एक

* स्वामी जी कृत "स्वामी नारायण मत खंडन" "वेदान्ति ध्वांति निवारण" यह दो पुस्तक यथा योग्य स्थान पर लिखे नहीं गए, कारण यह है कि इन पर बनाये जाने का समय छपा नहीं है, परन्तु यह दोनों पुस्तक सम्वत् १९३२ की बनी हुई मालूम होती हैं।

दुशाला भेट किया अपनी पीनस में सवार कराकर विदा किया और कहा कि आबू में हमारी कोठी पर ही ठहरना तथा रोग शांत होने पर समाचार देना, डाक्टर सूर्य्यमल और बहुत से मनुष्य साथ कर दिये, मार्ग में स्वामीजी को हिचकी वमन दस्त बराबर जारी रहे और इसी दशा में यह २१ अक्टूबर को सायकाल आबू में आये यहाँ एक लक्ष्मणदास नामी डाक्टर मिले जिनकी दवा से दस्त वमन थमे और आशा हुई कि अब रोग हट जायगा परन्तु डाक्टर साहब को उनके अफसर ने ठहरने नहीं दिया, लाचार वे चार दिन की दवा बना कर दे गये २३ अक्टूबर को जो समाजी मनुष्य वहां उपस्थित थे उन्होंने स्वामीजी की इच्छानुसार आये हुये पत्र तार आदि का उत्तर लिख सब का संशय मिटाया २६ तारीख को समाजी लोग स्वामी जी को अजमेर में लाए और डाक्टर लक्ष्मणदास का इलाज कराने लगे तारीख २३ से लेकर तारीख २९ तक की दशा कुछ बुरी न थी परन्तु २९ तारीख को अर्द्ध रात्रि के समय रोग ऐसा प्रबल हुआ कि डाक्टर के भी छक्के छूट गये तब इधर उधर से अनेक डाक्टर बुलाये गये देश देशान्तर से तार द्वारा यत्न पूछे गये परन्तु कुछ गुणकारी नहीं हुये और ता० ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० मिती कार्तिक कृष्णा ३० सम्वत् १९४० को सूर्य्यास्त के समय स्वामी जी परलोक सिधारे ।

नभ A विधिमुख B निधि C इन्दु D सर E दीपमालदिनश्याम।
दयानन्द अजमेर में त्यागो तन अभिराम ॥ १ ॥

अगले दिन अजमेरके आर्यसमाजी मनुष्यों ने विमान में रख अजमेरनगर से दक्षिणकोण में एक पहाड़ी के नीचे मूलसर श्मसान में दो मन चन्दन १० मन आम्रकाष्ठ, ४ मन घृत, ५ सेर कपूर, अढाईसेर बालछड़, आधसेर केशर, २ तोला कस्तूरी आदि से दग्धकर चिता के निकट चौकी पहरे लगा दिये।

दूसरे दिन अजमेर समाज ने स्वामी जी का हिसाब वस्त्र पुस्तकादि पदार्थ और जो कुछ वेदभाष्य छपने के लिए तैयार था पड्या मोहनलाल विष्णुलाल को एक सूचीपत्र के अनुसार [जो स्वामी जी की पुस्तकों में मिला था] सभाल दिया और उपस्थित मनुष्यों ने इस फहरिस्तपर हस्ताक्षर कर दिये। उदयपुराधीश

A नभ० B विधिमुख ४ C निधि ६ D इन्दु १ E सर सम्वत् कार्तिक कृष्णा ३०

। जन पंड्या मोहनलाल विष्णुलाल को स्वामी जी के पास भेजा। यह कह दिया
था कि यदि महाराज का शरीर छूटजाय तो किसी प्रकार से वह चार पांच दिवस
रक्खाजाय कि हमउनका अंतिम दर्शन करलें परन्तु उपस्थित मनुष्योंने डाक्टरके चीड़
फाड़ का भय मान यह बात स्वीकार नहीं की और शव शीघ्रता पूर्वक दग्ध किया
गया ॥ इति दयानन्द चरित्र अलम् ॥

स्वामी जी की विद्यमानता मे निम्न लिखित ७९ आर्यसमाज स्थापित हो
चुकी थी । पूना (१) बम्बई (२) लाहौर (३) अमृतसर (४) फीरोजपुर
(५) रावलपिंडी (६) रुड़की (७) देहरादून (८) सहारनपुर (९) मन्था-
हटा (१०) नुकड़ (११) मेरठ (१२) मुजफ्फराबाद (१३) शाखा समाज
रुड़की (१४) कस्बा तीतरौन (१५) मुजफ्फरनगर (१६) मेरठ (१७) बुलन्द-
शहर (१८) चान्दूक जिला बुलन्दशहर (१९) नैनीताल (२०) बिजनौर (२१)
नजीबाबाद (२२) मुरादाबाद (२३) बरेली (२४) शाहजहांपुर (२५)
बदायूँ (२६) चन्दौसी (२७) पीलीभीत (२८) मथुरा (२९) आगरा (३०)
मैनपुरी (३१) एटा (३२) फर्रुखाबाद (३३) गोलेपुर जिला फर्रुखाबाद
(३४) फतेहगढ़ कैम्प (३५) कायमगंज (३६) कानपुर (३७) पुराना कान
पुर (३८) इलाहाबाद (३९) बनारस (४०) मिर्जापुर (४१) आजमगढ़
(४२) गाजीपुर (४३) लखनऊ (४४) हरदोई (४५) सीतापुर (४६) फैजा-
बाद (४७) दानापुर (४८) बांकीपुर (४९) बिनायकपुर (५०) डिब्रूगढ़
(५१) करनाल (५२) हिसार (५३) रोहतक (५४) लुधियाना (५५)
शिमला (५६) कालका (५७) गुरदासपुर (५८) सियालकोट (५९) जाल
न्धर (६०) होशियारपुर (६१) गुजरानवाला (६२) जेहलम (६३) शाह
पुरा (६४) गुजरात (६५) पेशावर (६६) कोहाट (६७) कसौली (६८)
किराची [६९] सक्खर [७०] शिकारपुर [७१] जयपुर [७२] पाटा
[७३] अजमेर [७४] थाना [७५] मालपुर [७६] रामगढ़ [७७]
छावनी मुरार [७८] मुल्तान [७९]।

महा महेन्द्रार्य कुल दिवाकर महाराणा जी
स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् मही महेन्द्रार्य कुल दिवाकर महाराणा जी
उदयपुर ने दिसम्बर सन् १८८३ ई०-मास पौष सम्वत् १९४० मे एक छपा हुआ

विज्ञापन इस अभिप्राय से सम्पूर्ण आर्यसमाजों मे पठाया कि अपने अपने प्रतिनिधि नियत होकर तारीख २७ दिसम्बर सन् १८८३ ई० तक अजमेर में आजावें कि स्वामी जी की आज्ञानुसार एक परोपकारिणी सभाका अधिवेशन किया जाय।

इस विज्ञापन के पहुचने पर महाराणा जी उदयपुर [१] ला० मूलराज जी एम० ए० [२] कवि शामलदास जी [३] पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल जी पड्या [४] मसूदा के महाराज [५] महाराज नाहरसिह जी के प्रतिनिधि आदि सम्पूर्ण सभासद् और अनेक प्रतिनिधिगण पधारे परन्तु ला० रामशरणदास रईस मेरठ नहीं आए क्योंकि इनका भी शरीर इसी वर्ष स्वामी जी से दो तीन मास पूर्व पहिले पूरा हो चुका था।

२८ दिसम्बर सन् १८८३ ई० को सभा का कार्य आरम्भ हुआ।

[१] मत्री ने सभा का कार्यारम्भ किया और इस सभाके स्थापित होने का यथार्थ कारण सब पर विदित कराया।

[२] श्रीयुत् स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्वीकारपत्र पढा गया और जिन सभासदों ने सम्मति स्वरूप अपने हस्ताक्षर उक्त स्वीकारपत्र पर आगे नहीं किये थे उन्होंने इस समय यह कह के प्रकट किया कि उक्त स्वामीजी ने जो धर्म कार्यका भार हम लोगों पर रक्खा है उसे हम स्वीकार करते हैं, पर जो सभासद् विद्यमान् नहीं हैं उनके पास स्वीकारपत्रकी प्रति प्रमाण करने को भेजी जायगी।

[३] कविराज शामलदासजी ने प्रस्ताव किया और राजराणा फतहसिंह जी ने अनुमोदन किया कि मेरठ निवासी लाला रामशरणदासके मरनेसे जो सभासद् पद खाली हुआ है उस पर जोधपुर के महाराज प्रतापसिह जी० सी० एस० आई० नियत किये जावें सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

[४] रावबहादुर पण्डित सुदरलालने प्रस्ताव किया और पण्डित मोहन लाल विष्णुलाल पड्याने अनुमोदन किया कि स्वर्गवासी ला०, रामशरणदासजी के स्थान पर मान्यवर रावबहादुर पंडित गोपालराव हरि देशमुख परोपकारिणी सभा के मत्री नियत किये जावें सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

[५] एक पत्र इस विषय पर पढा गया कि स्वर्गवासी स्वामीजी ऋग् और यजुर्वेद भाष्य का कौन सा भाग समाप्त और असमाप्त छोड गये हैं इससे

हुआ, कि सप्तम यजुर्वेद का भाष्य तो स्वामीजी पूर्ण कर गये हैं परन्तु एक भाग मात्र उसका अब तक मुद्रित हुआ है, और ऋग्वेदका सप्तम मण्डल तक भाष्य बना है, सब की सम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि पंडित भीमसेन तथा ज्वालादत्त प्रूफ के शोधने और संस्कृत भाष्य का हिन्दी में अनुवाद करनेके कार्य्य पर नियत किये जाय। और प्रति व्यक्ति को ४५ पैंतालीस मुद्रा मासिक वेतन मिले वैदिक यन्त्रालय जितना शीघ्र बनसके अजमेर में लाया जाय और वह इन सभासदों की सम्हाल में रहे। मसूदे के ठाकुर राव बहादुरसिंह जी। रावबहादुर पंडित सुन्दरलाल जी। कविराज श्यामलदास जी। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या और आर्य्यसमाज अजमेर के प्रधान।

[६] जो द्रव्य स्वामीजी छोड़ गये हैं उस की यादि पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याने पढ़ सुनाई इससे प्रकट हुआ कि ४२००) नक्द और ११०००) को शोध किये जाने के लायक लहना। रुपये ४०००) के मूल्य का यंत्रालय और विक्रयार्थ पुस्तकें ४८०००) की हैं।

[७] सब की सम्मति से स्वीकार हुआ कि पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या सब पुस्तकें कागज और हिसाब आदि को सम्हालें और शोध कर पीछे एक याद प्रस्तुत करे कि स्वामीजी का क्या लेना देना है। स्वामीजी के द्रव्य का जमा रखना तथा स्वीकार का लिखित कार्य्यों के निमित्त द्रव्य खरच करना निम्न लिखित सभासदों के आधीन है। राव जी श्री बहादुरसिंह जी मसूदा। राज राणा फतेसिंह जी देलवाड़ा। कविराज श्यामलदास जी उदयपुर पंडित मोहनलाल जी विष्णुलाल पंड्या उदयपुर। लाला साईं दास जी लाहौर। रावबहादुर गोपाल राव हरि देश बम्बई। राजा जय कृष्णदास सी० एस० आई० बिजनौर। बाबू दुर्गा प्रसाद जी फर्रुखाबाद। यह सभा विभाग श्रीमन्महाराजाधिराज मेवाड़ाधिपति तथा जोधपुर के महाराज प्रतापसिंह जी० सी० एस० आई० के आज्ञानुसार काम करेगी।

[८] राय बहादुर पंडित महादेव गोविन्द रान्डे ने प्रस्ताव किया और राव बहादुर पंडित सुन्दर लालजीने अनुमोदन किया कि सर्व आर्य्यसमाजों का परस्पर तथा परोपकारिणी सभा से भी व्यवहार बनाने के हेतु आर्य्यसमाजों के प्रतिनिधियों

की एक सभा निर्माण करनी चाहिये। जब तक यह सभा नहीं बनती तब तक आर्य्यसमाजों के जो २ प्रतिनिधि परोकारिणी सभा में सभासद् हैं वेही आर्य्य समाजों के प्रतिनिधि माने जायगे। जब प्रतिनिधि सभा, स्थापित होजायगी तब परोपकारिणी सभा मे जो २ सभासद् पद खाली होंगे वह इस प्रतिनिधि सभा के योग्य सभासदों से इस प्रकार पूर्ण किये जायगे कि परोपकारिणी सभा के सभासदों से आधे प्रतिनिधि सभा के लोग होंगे। सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

[९] पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्म्मा० बी० ए० [आक्सफोर्ड] ने प्रस्ताव किया और लाला साईंदासने अनुमोदन किया कि सभा के इस वृत्तान्त की एक एक प्रति सब आर्य्यसमाजों को भेजी जाने और उन से प्रार्थना की जायकि प्रतिनिधि सभा के लिये सभासद नियत करने से तथा और कोई नवीन कार्य्य हो उससे परोपकारिणी सभा को यथा शक्ति शीघ्र ज्ञात करावें। तारीख २८ दिसम्बर सन् १८-८३ ई० [हस्ताक्षर, मूलराज एम० ए० उपसभापति के]

तत्पश्चात् स्वामीजी कृत पुस्तक, सन्धि विषय नामक कारकीय, सामासिक तद्धित, पाचों एकत्रित होकर "अष्टाध्यायी मूल" छपकर ज्येष्ठ शुक्ला ६ सम्वत् १९-४१ को वैदिक यंत्रालय प्रयाग से निकली और सत्यार्थप्रकाशातरंगत स्वमतव्य प्रकाश, सन् १८८७ ई० में छपा, परन्तु स्वामीजी कृत गौतम अहिल्या की कथा" हमको अनेक यत्न करने पर भी हाथ नहीं लगी इसलिए उसकी आलोचना करनेमें वञ्चित हरकर स्वामीजी कृत केवल अन्य ३८ पुस्तकों पर निज बुद्धि अनुसार यथा योग सक्षेप रूप प्रथम भाग में लिखा गया दूसरे भाग में विस्तार सहित लिखा जायगा [ह० जीयालाल]

नामावली उन पुस्तक और समाचार पत्रों की जिन से इस "दयानन्द छल कपट दर्पण" के लिखने में सहायता मिली

[१]स्वामी दयानद सरस्वती कृत निम्न लिखित [१] आर्य्यसमाजों के नियम [२] सस्कार विधि [३] प्रथम वार का सत्यार्थप्रकाश [४] दूसरीवार का [५]तीसरी वार का [६] वेद भाष्य भूमिका [७] ऋग्वेद भाष्य [८]

यजुर्वेद भाष्य [९] मेला चान्दापुर [१०] आर्योद्देश्य रत्नमाला [११] गोक रुणानिधि [१२] स्वामीनारायण मतखंडन [१३] वेदविरुद्ध मतखंडन [१४] भ्रमोच्छेदन [१५] शास्त्रार्थ काशी [१६] आर्य्याभिविनय [१७] वेदान्ति ध्वान्ति निवारण [१८] पंच महा यज्ञ विधि [१९] भ्रान्ति निवारण [२०] सत्यासत्य विवेक (२१) व्यवहार भानु (२२) वाक्य प्रबोध (२३) वर्णोच्चा रण (२४) सन्धि विषय (२५) नामिक (२६) कारकीय (२७) सामासिक (२८) स्त्रैणताद्धित (२९) अव्ययार्थ (३०) आख्यातिक (३१) सौवर (३२) पारिभाषिक (३३) धातुपाठ (३४) गणपाठ (३५) उणादिकोष (३६) निघण्टु (३७) अष्टाध्यायी मूल (३८) स्वमन्तव्य प्रकाश (३९) वेदाङ्गप्रकाश (४०) अनुभ्रमोच्छेदन।

(२) स्वामी जी के शिष्य पण्डित गोपाल शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी कृत (४१) दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग (४२) तथा दूसरा भाग (४३) तथा तीसरा भाग।

(३) परम पूज्य जगत विख्यात कुलाम्नाय गुरु महाराज श्रीमान पंडित शिवचन्द्र जी देहलवीकृत (४४) भ्रमान्धकार मार्तण्ड (४५) प्रश्नमालिका (४६) मूर्तिपूजा मण्डन (४७) पोपलीलाखंडन (४८) धर्मदासकृत धर्मप्रबोधनी प्रथम भाग (४९) पूज्य महाराज श्रीकृत दूसरा भाग।

(४) राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० रईस बनारस कृत (५०) इतिहास तिमिर नाशक तृतीय भाग (५१) प्रथम निवेदन (५२) द्वितीय अंतिम निवेदन (५३) जैन बौद्ध की भिन्नता।

(५) श्रीमान् सम्वेगी साधु आत्माराम आनन्द विजय जी कृत (५४) जैनतत्वादर्श (५५) अज्ञानतिमिर भास्कर (५६) जैनविषयक प्रश्नोत्तर (५७) गप्पदीपिका समीर।

(६) लाला ठाकुरदास श्रावक भाभड़ा गुजरानवाला निवासी कृत (५८) दयानन्द मुख चपेटिका।

(७) श्री युत बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु रईस बनारस कृत (५९) दूषण मालिका (६०) चरितावली (६१) वाल्मीकीय रामायण का समय।

(८) पडित सत्यानन्द अग्नि होत्रि कृत (६२) दयानन्दी वेदोंमें जिना कारी की तालीम (६३) पडित दयानन्द और उनका नया पन्थ (६४) जा की असलियत (६५) हमारा अपील (६६) दयानन्दका संन्यास (६७) दया नन्दी कनयुगी मजहब (६८) रद्दतनासिख ।

(९) लाला जगन्नाथ भारती कृत (६९) पोपलीला (७०) धर्माध परीक्षा (७१) स्वामी जी का कुछ जीवन चरित्र ।

(१०) अन्यान्य और पुस्तकें (७२) दयानदपरीक्षा प्रथमभाग। (७३) दूसरा भाग (७४) स्वामी दयानदपराजय (७५) जगन्नाथका इल्तमास [७६] मन्नानह उमरी दयानन्द भाई जवाहरसिंहकृत (७७) ला० दलपतरायकृत (७८) मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी कृत (७९) तवारीख हिन्द (८०) रद्द बुतलान (८१) अम्रमाल आर्या (८२) दयानन्द लीला (८३) विधवा नाटक (८४) स्वामी जी की दिनचर्या (८५) असरार अवामथ (८६) मथी फोबिया (८७) सत्यमत आश्रय (८८) आर्यतत्वप्रकाश प्रथम व्याख्यान (८९) दूसरा (९०) तीसरा (९१) चौथा (९२) पाँचवा (९३) छठा (९४) अबोध निवारण (९५) मगनदेव पराजय (९६) मूर्तिप्रकाश (९७) महाभारत (९८) भगवद्गीता (९९) मद्रास हाईकोर्ट रिपोर्ट (१००) नियोग खंडन (१०१) निगम प्रकाश (१०२) आगमप्रकाश (१०३) मनुस्मृति (१०४) लोकरावण (१०५) सर्वदर्शन समह (१०६) मूर्तिभूषण (१०७) सत्यार्थप्रकाश समीक्षा (१०८) वेदद्वार प्रकाश (१०९) दयानन्द मत मूलोच्छेद (११०) अप्रतिम प्रतिमा (१११) अभेद्यास्त्र चन्द्रमाँ (११२) दयानन्द मत खडन (११३) दयानन्द मत मर्दन (११४) वेदार्थ प्रकाश (११५) अनापिका दयानन्द (११६) महा मोहविद्रावण (११७) दयानन्द पराभूत (११८) दयानन्द कटुकधार (११९) सद्धर्मदूषणोद्धार (१२०) सत्यार्थभास्कर (१२१) आर्यसमाजरहस्य (१२२) शकर दिग्विजय मूल (१२३) विवेकसार (१२४) रत्नसार (१२५) शास्त्रार्थ फीरोजाबाद (१२६) शास्त्रार्थ सहारनपुर (१२७) आर्यसमाज मेरठ का सूची पत्र (१२८) जालन्धर पुस्तकालय का सूचीपत्र (१२९) अजमेरका (१३०) लाहौर का (१३१) फर्रुखाबाद का (१३२) इलाहाबाद का, जिन समाचारपत्रों

से लेख लिया उनकी नामावली (१३३) मित्रविलास (१३४) उचितवक्ता (१३५) सार सुधानिधि (१३६) क्षत्रिय पत्रिका (१३७) धर्म्म जीवन (१३८) भारतेन्दु (१३९) आर्यावर्त (१४०) आर्यगजट (१४१) आर्यपत्रिका (१४२) आर्य समाचार (१४३) आर्य सिद्धान्त (१४४) आर्यदर्पण (१४५) आफताब पजाब (१४६) देशहितैषी (१४७) भारतमित्र (१४८) अखबार आम (१४९) भारतदरदशाप्रवर्तक (१५०) शमशेरबहादुर (१५१) ज्ञान प्रदायिनी ।

आर्यसमाजों की शीघ्रोन्नति का क्या कारण है ?

इस हमारे आर्य्यावर्त देशमे सरकारी मदरसोंके प्रचारसे पहिले यह मर्यादा थी कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, मुसलमान सब अपने अपने बालकों को जब विद्या पढने के लिये गुरु के पास भेजते थे तो वे बालक अपने अपने विद्यादाताओं के पास जाते ही प्रथम भिन्न जाति भेदानुसार, नमस्कार, दण्डवत, प्रणाम, सलाम बन्दगी का उच्चारण करते थे, तत्पश्चात् उन गुरुजी की आज्ञानुसार (जिनका नाम ऋषि, आचार्य्य, उपाध्याय, पंडित, मिश्र, व मौलवी प्रसिद्ध होता था) एक नियत स्थानपर बैठकर विद्याध्ययन करते थे, तब प्रथम ही आरम्भ के समय ब्राह्मण, क्षत्री, वा, वैश्य के पुत्र को श्री गणेशायनम । परमात्मायनम । ॐनम । शिवायनम इत्यादि, और जैनी के बालक को ॐनमः सिद्धेभ्य । गोवन्दायनम मुसलमान के बालकों को मौलवी लोग बिसमिल्लाह रहमानुलरहीम । उच्चारण कराया करते थे । और विद्या गुरु उस समय के बहुधा विचारे निर्धन पुरुष होते थे औ अपने सामान्य स्थानपरही विद्यार्थियों को पढाया करते थे, अब के मुदर्रिसों की तरह चटक मटक से रहने और स्वच्छ सुन्दर स्थान पर विद्या पढाने की उनकी सामर्थ नहीं थी, जैसा कपड़ा उन के घर पर हुआ वैसाही पहन कर टूट फूटे स्थानपर बैठे रहते थे, और जो बालक उन के पास पढने को आता उसको [चाहे कैसे ही धनाढ्यका पुत्र क्यों न हो] अपने से नीची बैठक पर बिठाते थे, हां जो बालक किसी निर्धन का होता उस के और धनाढ्य के बालक में अंतर नहीं करते थे, इसका यह प्रभाव होता था कि बालक को प्रथम दिन से ही अपने धर्म

कुलाम्नाय के ज्ञान का लाभ होकर यह भी मालूम हो जाता था कि विद्या धन होने से गुरु जी की निर्धनता भी किसी कार्य में विघ्नकारी नहीं, इससे सि हुआ कि विद्याधन भी एक परम धन है, और जब उनको नित नित अपने इष्टदे का नाम स्मरण करना पड़ता था तो उसका भी यही फल होता था कि शनैः शनैः उनको निज धर्म पर पूरा पूरा विश्वास उत्पन्न हो जाता था, परंतु जब से सरका अंग्रेजी ने मदर्से प्रचलित किये हैं, उनके मास्टर लोगों में जाति भेद का, तो कुछ विचार ही नहीं किंतु स्थान शाला भी अति रमणीक होता है, पुस्तक जो पढ़ा जाती है उनकी आदि में ॐ, वा, श्री गणेशायनमः वा परमात्मायनमः ॐनमः सिद्ध ग्य वा बिसमिल्लाह रहमानुर रहीम आदि कुछ भी नहीं होता, फिर विद्वान विचार करें ऐसे बालकों को कुलाम्नाय धर्म की क्योंकर खबर होसक्ती है, बस जो बालक इस प्रकार विद्या पढ़ते हैं वे साधारण परीक्षा में ही उत्तीर्ण होकर जब अंग्रेजों के चाल चलन को देखते हैं तो बहुधा उनका मस्तक सांसारिक ऊपरी सम्बन्धों में शुद्ध होकर पृथक् होने लगता है और प्राचीन कुलमर्यादा को वे घृणित दृष्टि से देखते हैं, धर्मोपदेश उनका न तो माता पिता की ओर से मिलता है और न सरकारी पाठशाला कहिये मदर्से में। और यदि घर में वे कभी कुछ सुनते भी हैं तो केवल इतना ही सुनते हैं कि चोटी रखना यज्ञोपवीत धारण करना हिंदू मात्र का परम धर्म है चौके में बैठकर रसोई खाना चाहिये, किसी मुसलमान या ईसाई का स्पर्श किया भोजन नहीं खाना चाहिए, उनके हाथ का पानी पीने से धर्म नष्ट हो जाता है इसके व्यतिरिक्त कभी भी उनके कान में कुछ नहीं पड़ता कि पूर्वोक्त रुकावटों का कारण भी कुछ है या नहीं, और विद्यापढ़ने के समय वह देखते हैं कि चारों ओर से स्वतंत्रता की ही भनक कानों में पड़ती है, और मनुष्य पूर्वोक्त, रुकावटों से छूट कर स्वतंत्र होते चले जारहे हैं, और यह स्वतंत्रता उन को सांसारिक विशेष लाभ उत्पन्न कर रही है, बस ऐसी स्वतंत्रता को देखकर मन विचार और भाविक स्वतन्त्रता का अभिलाषी होता है, इस समय तक इन में कोई आत्मिक आत्मा भी कोई ध्यान देने वा विचारने लायक वस्तु है, बस ऐसे समय उनको एक नये समाज की आवश्यकता होती है, न कि धर्म की। पुरानी मर्यादा वा सभा समाजों को वे घृणा दृष्टि से देखते हैं, परन्तु इतनी बुद्धि ऐश्वर्य धन या सामर्थ्य

नहीं होती कि यह प्रचलित सम्पूर्ण मर्यादाओं से निकल कर स्वतन्त्र हो जाय।
आर्य्यसमाज केवल ऐसे ही मनुष्यों के लिए बनाई गई है, और यदि उनके सभा-
सदों के गुप्त अभिप्राय को देखाजाय तो इन में बहुधा देशोपकार के प्रेमी दृष्टि
पड़ते हैं, व्यवहार के समय आर्य्यसमाज के सभासदगण जाति भेद के बुरा
बतलाने में इतना चलाते हैं कि सभा का स्थान भी गूंजने लगता है, विधवा विवाह
ब्राह्मणों की दक्षिणा, विवाहों में व्यर्थ व्यय इत्यादिक विषयों पर अपना इतना
बाहर बल दिखाते हैं कि श्रोताओं की भी छाती धड़कने लगती है, परन्तु जब तद-
नुसार वर्ताव करने का समय निकट आता है, तो एक वक्ता महाशय ही मन से
पीछे हटे दृष्टि आते हैं, सहस्रों बालविधवा आर्यसमाजियों के घरों में बैठी हैं,
नित्य प्रति नवीन बाल विवाह होते हैं सहस्रों रुपए विवाहों में व्यय किए जाते हैं,
परन्तु उस समय वक्ता महाशय निश्चिन्ती से हाथ चुप बैठे रहते हैं, इतनी सामर्थ
नहीं रखते कि निज वचनानुसार स्वयं ही कुछ कर दिखावें इस कर्तव्य ने आर्य
समाजने देश का आत्मिक निग्रह ही नहीं किया किंतु उसकी स्वतन्त्रता को भी रोक दिया
है, और महात्माओं की ईश्वरी शक्ति के मार्ग रोकने वाले बन गए हैं, यदि विचार दृष्टि से
देखा जाय तो आर्य्यसमाज के सभासद् सांसारिक प्रचलित मर्यादा * पर ही चल
रहे हैं, परन्तु उनकी इतनी सामर्थ्य नहीं कि अपने गुप्त भेद का प्रकट रूप से प्रचार
कर सकें, अधिक नहीं तो मेरा इस बात ही पर ध्यान जाता फैलावें। मैंने आर्य-
समाज के सभासदों को कहते सुना कि इस द्वारा कोई वस्तु नहीं है, जाति भेद,
कर्मानुसार है, अर्थात जो मनुष्य जैसा काम करता है उसी नाम से पुकारा जाता,
है। यह लोग ऊपरी आडम्बर बनाये रखते हैं और अपने आपको त्यागी समझते
हैं, किन्तु इनमें कोई कोई ऐसे हैं जो अभी होटल से भोजन गटककर बाहर आते
तो शपथ करने पर उद्यत और नट जाने पर तैयार रहते हैं। एक दूसरा कारण
यहभी मनुष्योंके आर्यसमाज में भरती होजाने का है कि हिंदू लोगोंका वेद। पर
बहुत बड़ा विश्वास है, और अधिक काम चला आता है, यद्यपि इस समय देखा
जावे तो सहस्र मनुष्यों में से कठिनता पूर्वक एक ऐसा निकलेगा जिसने वेदोंका
पढ़ना तो दूर रहा चारों पुस्तकों को आंखों से देखा भी हो, अपनी निगाहों को

* जिस को वे अपने व्याख्यानों में बुरा बताते हैं।

धोका देने के लिये और विवाहादि शुभ कार्यों मे उनके साथी बने रहने के लिये इतना कह देना ही बहुत समझते हैं, कि हमारे धर्म ग्रन्थ वेद हैं और उन पर ही हमारा विश्वास है, इतना कहने पर बिरादरी के लोग चुप हो जाते हैं, परन्तु जब उन लोगो से पूछा जाय कि भाई वेद क्या वस्तु है ? उसमें क्या लिखा है ? क्या तुमने उस पुस्तकको कभी देखा भी है ? तो इसके अतिरिक्त और कुछ उत्तर नहीं देते कि हमारे पुरुषा भी इनको ही माना करते थे हमने सुना है कि वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं और बहुधा मायाचारी यह कहने को भी उद्यमी होते हैं कि हमको इससे क्या प्रयोजन कि वेदों में क्या लिखा है, हमको तो सत्य प्रिय है, कहीं से मिले समाज में केवल देशोपकार सत्य शीलता के लिये मिले हैं। यदि आर्यसमाजी गण अपना काम देशोपकार करना सत्य शील फैलाना आत्मिक गुण की व्याख्या आदि यही मुख्य रखते तो किसी को उन पर तर्क करने का अवसर नहीं मिलता, परन्तु खेद है कि इस समाज की उन्नति से आत्मद्रव्यका कोष बिना रक्षा के लुटा जाता है, हमारे नवीन उत्साही युवा पुरुषो को [जिन पर हमारे देश के सुधार की आशा निर्भर है] सत्य सतोषादि शुभ गुणोंसे हटाकर सामर्थ्यवानों को असमर्थ बनाया जाता है, और वे लोग जाति भेद को बुरा समझ कर भी उससे छुटकारा पानेको असमर्थ होते हैं, बसऐसे मनुष्यों के लिये आर्यसमाज का होना उनके परम सौभाग्य का फल है, यदि यह आर्यसमाज न होती तो वे मनुष्य शीघ्रता पूर्वक उन लोगोंसे जा मिलते जिनके लिये पादरी लोग लाखों रुपये बरबाद करके भी सफलता प्राप्त नहीं करते। बस तात्पर्य इस लिखने का यही है कि आर्यसमाजों ने हमारे सहस्रो पढे लिखे सुद्द जनो को ईसाई होने से बचाया इस लिये हम उसके प्रचारक का धन्यवाद करते हैं, और जो माता पिता अपने बालकों को आत्मिक अभ्यास कुलाम्नाय धर्म से वञ्चित रख कर प्रथम दिवस से ही सरकारी मदरसों में यावनी भाषा पढावे हैं वे अपने सत्य सनातनधर्म का नाश कर अंत को उसका हानिकारक फल प्राप्त करते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने क्या क्या किया ?

॥ छप्पैछन्द ॥

वैदिकधर्म निवार पाप पाखण्ड बढ़ायो ।
निन्दे मूर्ति पुराण अर्थ पलटो मनभायो ॥
विधवाविवाह कराय पुरातन रीति नशाई ।
वर्णभेद निर्वार नमस्ते करी कराई ॥
तेली चमार कोरी सुई* लघु जातन आरज करो ।
धर्म्म कर्म्म यति पुण्य की मूल काढ़ि अब सचरो ॥

स्वामी जी निज रचित पुस्तकों में जो कुछ लिख गये उसका भावार्थ यही है कि शंकराचार्य से आदि ले के सर्व सम्प्रदायिक आचार्यों का धर्म मिथ्या है, कबीर, दादू, रामस्नेही, गुरु नानक, मुहम्मद, ईसा, मूसा इत्यादि पैगम्बर सब का मत मिथ्या है, सब के ग्रन्थ मिथ्या है, तीर्थयात्रा नहीं करना, गंगा, यमुना, पुष्कर गया, काशी, प्रयाग इत्यादि सब तीर्थ मिथ्या हैं, माता पिता आदि पूर्वजों का श्राद्ध अर्थात् पिण्डदान, तर्पण, पितृरेखा के निमित्त कुछ दान पुण्य, देवताकी पूजा तथा मूर्तिपूजन विवाहादिक में, शीतला देवी, कुल देवी, भैरव, गणपति आदिक देवता की पूजा, एकादशी आदि जितने व्रत उपवास है ये सर्व मिथ्या हैं, सूर्य, चन्द्र, ग्रहण में स्नान दान करना मिथ्या है, मुसलमान, अंग्रेज इत्यादिकों को हिन्दू करना अच्छा है, सब जाति वालों का एकत्र भोजन करना अच्छा है, आचार विचार चौका पवित्रता जातिभेद सब मिथ्या है, सब जातिकी लड़कीसे विवाह करो १ स्त्री को ११ पति करो, विधवा पुरुषोंपर रहने नहीं पावे, ११ खसम और ४४ सन्तान एक स्त्रीके वास्ते चाहिये, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिक सब जातिकी स्त्रियोंको ग्यारह खसम करना, पति परदेश जाने तब घरकी स्त्रीके वास्ते एक पुरुषको अपने घर रख जावे, वह पुरुष उस स्त्री से पुत्रादिक पैदा करता रहे, जब उस स्त्री का पति आ जावे तब उस दूसरे खसम को घर से निकाल कर देवे, अपनी स्त्री को और

---

* भंगी व चुहड़ा मेहतर ।

धोका देने के लिये और विवाहादि शुभ कार्यों मे उनके साथी बने रहने के लिये इतना कह देना ही बहुत समझते हैं, कि हमारे धर्म ग्रन्थ वेद हैं और उन पर ही हमारा विश्वास है, इतना कहने पर बिरादरी के लोग चुप हो जाते हैं, परन्तु जब उन लोगों से पूछा जाय कि भाई वेद क्या वस्तु है ? उसमे क्या लिखा है ? क्या तुमने उस पुस्तकको कभी देखा भी है ? तो इसके अतिरिक्त और कुछ उत्तर नहीं देते कि हमारे पुरुषा भी इनको ही माना करते थे हमने सुना है कि वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं और बहुधा मायाचारी यह कहने को भी उद्यमी होते हैं कि हमको इससे क्या प्रयोजन कि वेदों मे क्या लिखा है, हमको तो सत्य प्रिय है, कहीं से मिले समाज में केवल देशोपकार सत्य शीलता के लिये मिले हैं। यदि आर्यसमाजी गण अपना काम देशोपकार करना सत्य शील फैलाना आत्मिक गुण की व्याख्या आदि यही मुख्य रखते तो किसी को उन पर तर्क करने का अवसर नहीं मिलता, परन्तु खेद है कि इस समाज की उन्नति से आत्मद्रव्यका कोष बिना रक्षा के लुटा जाता है; हमारे नवीन उत्साही युवा पुरुषों को [जिन पर हमारे देश के सुधार की आशा निर्भर है] सत्य संतोषादि शुभ गुणोंसे हटाकर सामर्थ्यवानों को असमर्थ बनाया जाता है, और वे लोग जाति भेद को बुरा समझ कर भी उससे छुटकारा पानेको असमर्थ होते हैं, बसऐसे मनुष्यों के लिये आर्यसमाज का होना उनके परम सौभाग्य का फल है, यदि यह आर्यसमाज न होती तो ये मनुष्य शीघ्रता पूर्वक उन लोगोंसे जा मिलते जिनके लिये पादरी लोग लाखों रुपये बरबाद करके भी सफलता प्राप्त नहीं करते। बस तात्पर्य इस लिखने का यही है कि आर्यसमाजों ने हमारे सहस्रों पढे लिखे सुज्ञ जनों को ईसाई होने से बचाया इस लिये हम उसके प्रचारक का धन्यवाद करते हैं, और जो माता पिता अपने बालकों को आत्मिक अभ्यास कुलाम्नाय धर्म से वञ्चित रख कर प्रथम दिवस से ही सरकारी मदरसों में यावनी भाषा पढाते हैं वे अपने सत्य सनातनधर्म का नाश कर अंत को उसका हानिकारक फल प्राप्त करते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने क्या क्या किया ?

॥ छप्पैछन्द ॥

वैदिकधर्म निवार पाप पाखंड चलायो ।
निन्दे स्मृति पुराण अर्थ पलटो मनभायो ॥
विधवाविवाह कराय पुरातन रीति नशाई ।
वर्ण भेद निर्वार नमस्ते करी कराई ॥
तेली चमार कोरी चुहड़े* लघु जातन आरज करो ।
धर्म्म कर्म्म मति पुण्य की मूल काढि अघ संचरो ॥

स्वामी जी निज रचित पुस्तकों में जो कुछ लिख गये उसका भावार्थ यही है कि शंकराचार्य से आदि ले के सर्व सम्प्रदायिक आचार्यों का धर्म मिथ्या है, कबीर, दादू, रामस्नेही, गुरु नानक, मुहम्मद, ईसा, मूसा इत्यादि पैगम्बर सब का मत मिथ्या है, सब के ग्रन्थ मिथ्या हैं, तीर्थ यात्रा नहा करना, गंगा, यमुना, पुष्कर गया, काशी, प्रयाग इत्यादि सब तीर्थ मिथ्या हैं, माता पिता आदि पूर्वजोंका श्राद्ध अर्थात् पिंडदान, तर्पण, पितृदेवता के निमित्त कुछ दान पुण्य, देवताकी पूजा तथा मूर्तिपूजन विवाहादिक में, शीतला देवी, कुल देवी, भैरव, गणपति आदिक देवता की पूजा, एकादशी आदि जितने व्रत उपवास हैं ये सर्व मिथ्या हैं, सूर्य, चन्द्र, ग्रहण में स्नान दान करना मिथ्या है, मुसलमान, अंग्रेज इत्यादिकों को हिंदू करना अच्छा है, सब जाति वालों का एकत्र भोजन करना अच्छा है, आचार विचार चौका पवित्रता जातिभेद सब मिथ्या है, सब जातिकी लड़कीसे विवाह करो १ स्त्री को ११ पति करे, विधवा पृथ्वीपर रहने नहीं पावे, ११ खसम और ४८ सन्तान एक स्त्रीके वास्ते चाहिये, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिक सब जातिकी स्त्रियोंको ग्यारह खसम करना, पति परदेश जावे तब घरकी स्त्रीके वास्ते एक पुरुषको अपने घर रख जावे, वह पुरुष उस स्त्री में पुत्रादिक पैदा करता रहे, जब उस स्त्री का पति आ जावे तब उस दूसरे खसम को घर से बिदा कर देवे, अपनी स्त्री को और

---

* भंगी व चुहड़ा मेहतर ।

लड़के बच्चों को ले लो, मन जाति वाले वेद पढ़ते रहो. किन्तु महा शूद्र और स्त्री भी वेद पढ़े, स्नान, दान, जप, तीर्थ श्राद्ध कुछ मत करो, दिया हुआ दान उलटा मांग लो, पञ्चयज्ञ करो, सन्ध्या सेवन करो अग्नि में होम करो, सो भी स्वा० दयानन्द सरस्वती जैसे कहे वैसे करो, साधु ब्राह्मण गुरु को दान मत करो, सन्यासी को द्रव्य विशेष देते रहो, सन्यासी जी और मत का न होना चाहिये, आर्यसमाज ही के सन्यासी को धन देवे और को नहीं, गौदान, अन्नदान, भूमिदान, कन्यादान इत्यादि कुछ भी न करो, जो कुछ देना हो सो आर्यसमाज के वास्ते दो, पति आप ही अपने जीते जागते में अपनी स्त्री को दूसरे पुरुष के साथ मैथुन करानेकी आज्ञा देवे और पुत्रादिक पैदा करावे, स्त्री को घर में रक्खे अपने सामने दूसरे पुरुष से अपनी स्त्री को मैथुन कराने से सन्तान पैदा करने में वेद का प्रमाण भी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिख दिया है, परन्तु यह मिथ्या और मनोक्त है, विष्णु, शिव आदि देवताओं की पूजा नहीं करना, पुराण भगवद्गीता भागवत इत्यादि सब ग्रन्थ मिथ्या हैं, स्वामी जी के मतलब का ग्रन्थ हो उसमें भी उलटा मिथ्या अर्थ करा हो, वह सत्य है, जिस ग्रन्थ में स्वामी जी का मतलब बिगड़ता हो वह ग्रन्थ स्वामी जी नहीं मानते हैं, और जिस ग्रन्थ को स्वामी जी मानते हैं उसी ग्रन्थ में कहीं मूर्तिपूजा तीर्थ श्राद्ध इत्यादि विधि निकल आवे तो कहते हैं इस ग्रन्थमें इतना भाग क्षेपक है इसको हम नहीं मानते, और सत्यार्थप्रकाश में प्रथम तो स्वामी जी लिखते हैं कि वेद में ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, सम्पूर्ण वेद में ब्रह्म का निरूपण है, इस वास्ते इन्द्र, वरुण, अग्नि, शिव इत्यादि पदोंका अर्थ ब्रह्मपरत्व लिखा है, इन्द्र वरुणादिक शब्द ब्रह्म केही नाम हैं, किसी देवता के नाम नहीं ऐसा लिखते लिखते फिर तो वेद में से अनेक तरह से ब्रह्म का निरूपण लिख दिया, यहाँ तक लिखा कि वेद में तार, रेल, जहाज, तोप, बन्दूक इत्यादि सब लिखे हैं, यह स्वामी जी के मत की बातें जितनी हमने लिखी हैं, यदि स्वामी जी कुछ काल और जीते रहते तो वेदमन्त्रों से हुण्डी मनीआर्डर वेल्यूपेबिल पुतली घर बर्फ की कल केरोसिन तैल इत्यादिक भी सिद्ध कर देते, और यही नहीं कि उक्त स्वामीजी ने केवल ब्राह्मणों ही को बुरा बतलाया, किन्तु सत्यार्थप्रकाश द्वादश समुल्लास में जैनी लोगों को भी मनमानी गाली प्रदान की हैं, जैसे जैनियोंका मत बहुत पुराना

नहीं है, जैसा वे मानते हैं क्योंकि महाभारत और वाल्मीकीय रामायण में उनका कुछ वर्णन नहीं है, मूर्तिपूजा जैनी लोगों ने अपनी मूर्खता से चलाई है, उनके ग्रन्थों में पुनरुक्त दोष अधिक हैं, इसी लिये वे उनको छिपाये रखते हैं, उनके साधु महा भ्रष्ट मलीन होते हैं, स्नान तक नहीं करते वस्त्र साफ नहीं कराते, दीपक तक नहीं जलाते, दूसरे धर्म का कोई विद्वान आवे उसका आदर सत्कार नहीं करते, इनके अनेक माया जाल हैं, इत्यादिक बहुत कुछ लिख कर यह सिद्ध किया कि जैनबौद्ध एक है, परन्तु यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा झूठ है, जो महाशय पक्षपात छोड़ कर पुस्तक "दयानन्द छल कपट दर्पण" को देखेगा वह इस वास्तव को भले प्रकार जान लेगा ॥ अलम् ॥

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती पर हमारा विचार ॥

निर्दोषेनैव संसारे ईश्वरेणान्तरापुमान् ।

(१) स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन थे ? किस नगर कुल गोत्र में उनका जन्म हुआ ? इस विषय में जो कुछ हमने लिखा वह दूसरों के आधार से है, जो जो प्रमाण मिले उनसे यही सिद्ध होता है कि अवश्य स्वामी जी ब्राह्मण नहीं थे किन्तु कापड़ी ही थे क्योंकि निम्न लिखित दृढ़ प्रमाणों से पुन पुन यही सिद्ध होता है । देखो ।

[क] स्वामी जी को अपने स्वरूप परम हंस परिव्राजकाचार्य कहलाना अधिक प्रिय था परन्तु हम कहते हैं कि निम्न लिखित कारणों से यह परम हंस नहीं थे ।

(१) परम हंस को धन रखना व छूना तक उचित नहीं वे रखते थे ।

(२) परम हंस का मधुकरी भिक्षा ग्रहण करनी उचित है, स्वामी जी रसोईदार से भोजन बनवा कर खाते थे ।

(३) परम हंस सवारी पर नहीं चढ़ते स्वामी जी चढ़ते थे ।

(४) परम हंस केवल कौपीन धारण करते और नंगे पांव रहते हैं स्वामी

जी रशमी कलाबतूनी आदि चागा कोट शाल दुशाले रखत और जूता भी पहिना करते थे ।

(५) स्वामी जी के शिष्यों में पूर्वोक्त गुण वाला कोईभी परम हंस नहीं था इस लिये स्वामी जी किसी परम हंस के गुरु भी नहीं थे जो परिव्राजकाचार्य समझे जाते ।

[ख] अपने सजातियों के चाल चलन और विरुद्धाचरण की तो सब कोई बुराई कर सकता है, परन्तु यह कहीं भी देखने व सुनने में नहीं आया कि ब्राह्मण कुल का जन्मा प्राणी ब्राह्मणों को ही बुरा कहे, स्वामी जी ब्राह्मणों को पोप पाखंडी भट्टाचार्य आदि नामों से उच्चारण करते थे बस इससे यही सिद्ध होता है कि वे महाराज स्वत जाति के ब्राह्मण नहीं थे ।

[ग] अपने पुत्रों को स्त्री के सदृश बना कर नचाना और उसमें धर्म मानना यह महा मूर्ख व स्वार्थी पुरुषों का काम है, और कपटी लोग मन्दिरों में लड़के नचाने तथा रास मण्डल करने में बहुत बड़ा पुण्य समझते हैं, स्वामीजी ने निज पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" में जहां भारत के सम्पूर्ण मत मतान्तरों को यद विरुद्ध और बुरा बतलाया है वहां इस विषय को जान बूझकर छोड़ दिया हां नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ३५२ पंक्ति २२ पर रामलीला और रास मंडल देखने में पुजारी लोगों को बुरा अवश्य कह दिया हम पूछते हैं ? क्या रामलीला में राम लक्ष्मण जानकी जी भी रास मंडल के राधाकृष्ण के सदृश नाचते हैं ? जो रासमंडल और रामलीला को एकसा समझा ? स्वामीजी अपराध क्षमा हो हमको तो इससे यही सिद्ध होता है कि आपने अपनी बाल लीला याद करके यहां रासमंडल की यथार्थ बुराई नहीं की ।

(घ) प्रमाण के होते हुए तदनुसार स्वीकार करना प्रचलित व्यवहार है इस लिये जब तक पूर्वोक्त लेखों के प्रतिकूल कोई प्रबल प्रमाण न हो तो वह स्वी कृत नहीं होसक्ता किसी विषय के प्रमाण सहित विद्यमान होते हुये उसके प्रतिकूल कहना उस समय तक व्यर्थ समझा जाता है जब तक कोई प्रबल और दृढ़ प्रमाण न दिया जाय । इस लिये पूर्वोक्त अनेक प्रमाणों से यही सिद्ध है कि स्वामीजी ब्राह्मण नहीं थे ।

(२) बहुधा मनुष्यों का यह भी विश्वास है कि स्वामी जी को ईसाइयों की तरफ से सहायता मिलती थी और वे गुप्त पने देश को ईसाई करने पर तत्पर थे । सो यह सर्वथा भूल है स्वामीजी का तो मुख्य उद्देश्य आर्य्य लोगों की उन्नति करने का ही था जो खेद है कि पूरा करने से पहिले ही मर गये, यद्यपि अनेक मनुष्य ऐसा भी समझ रहे हैं कि स्वामीजी को डाक्टर की औषधि ने मारडाला इसके सत्यासत्य को तो परमात्मा जाने पर इतना हम अवश्य कहेंगे कि स्वामी जी ने पूर्ण विद्वान् होकर निज धर्म्म विरोधी के हाथ से दवाई ग्रहण करने में बहुत बड़ी भूल की थी । और देखो न्याय में कहा है । ॥ श्लोक ॥

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै
र्विज्ञानविक्रमयशोभिरभज्यमानम् ॥
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते ॥१॥

(अर्थ) ज्ञान पराक्रम और यश में कलङ्क न लगते, जगत् में प्रख्यात् होकर जो क्षण भर भी मनुष्य जीते हैं उसका नामजीना है, नहीं तो कौव्वा (कागला) बहुत दिनों तक जीता है, और अपना पेट भी भरता है । तथा । ॥ श्लोक ॥

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनोवचा ।
येनेह सर्वभूतानामुपकारः प्रजायते ॥ १ ॥

(अर्थ) वही जन्म है कि जिससे जीवों का उपकार हो वही कर्म है जिससे सब जीवों का उपकार हो वही आयु है जिससे सब जीवों का उपकार हो वही मन है जिससे सब जीवों का उपकार हो वही वाणी है जिससे सब जीवों का उपकार हो । इससे यह सिद्ध होता है कि उपकारी पुरुषों का ससार में थोड़ासा रहना भी बहुत है ।

(३) स्वामीजी की पुस्तक रचना और अन्यान्य लेख देखने से यह सिद्ध होता है कि जन्म काल से लेकर मरण समय तक स्वामीजी का किसी धर्म्म पर भी विश्वास नहीं था, किन्तु वेदों का नाम लेकर भी वे उनके पूरे २ विश्वासी नहीं थे । यह सत्य है, परन्तु जिस अभिप्राय से स्वामी जी ने अपने आप को किसी एक

धर्मका दासनहीं बनाया उसका तात्पर्य इतना ही था कि यदि वे किसी एक धर्मके विश्वासी होकर पक्षपाती हो जाते तो फिरस्वामीजी सर्वप्रिय न होते ।

(४) अग्रसर वा सुधारक सदैव प्राचीन भावुक सभ्यों में निंद्य और परिभव पात्र होते हैं, परन्तु प्रशंसा उसकी होती है जो अपने उद्देश्य से नहीं हटता यह बात स्वामीजी में ब त अच्छी थी ।

(५) स्वामीजी के दो उद्देश्य मुख्य थे ऐसा उनकी ग्रन्थ रचना और वक्तृताओं के देखने सुनने से सिद्ध है, (प्रथम तो) यही था कि प्रति दिन जो सामयिक राज विद्या वा स्वातंत्र्याधिक्य में धर्म परतंत्र लोग विधर्मी सहज होते थे और अपने (आर्य्यों के) मूल का उच्छेद करते थे उसको रोकना और उसी का सेचन उन्हीं से कराना ।

हमारे जानते यह उद्देश्य स्वामीजी का उत्तम था और इसमें वे बहुत अंश से कृतकृत्य हुये ।

(दूसरा) उद्देश्य सर्व साधारण सुखकारी जो स्वातंत्र्य वह दिन दिन स्व-शिक्षाहीन होने से हम लोगों का पूरा २ जाता रहा उसको, अपने मूल प्रतिपाद्य सर्व सम्मति युक्ति से ऐक्य द्वारा पुन' स्वाधीन वा शिक्षित कराना ।

यह भी उत्तम उद्देश्य था परन्तु इसकी सिद्धि जैसी होनी चाहिये थी न हुई और एक नया पथ प्राचीन द्वार के बदले खड़ा हुआ यह दोष स्वामी दयानन्द सरस्वती का नहीं किंतु उनकी अल्पायु का है ।

(६) स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अंग्रेजी शिक्षित लोगों को जो विद्वत्व पाते ही बहुधा क्रिश्चियन वा नास्तिक होकर बह जाते थे * उन्हें रोका । धन्य है उस पुरुष को जिसने अपना सर्वस्व सांसारिक स्वार्थ छोड़ कर अनेक विधि लोगों की निन्दा का निशाना बन अतत इस सत्कार्य्य में अपना देह तक समर्पण किया ।

(७) कुछ अधिक लोगों ने एक महारमणीय स्थान देख (जहा के पक्षीगण अत्यन्त भोले हैं) कुछ मिष्ट जल और चारा डाल चारो तरफ जाल फैला दिया

* इसका तात्पर्य ऊपर आर्य्यसमाजों की शीघ्रोन्नति का क्या कारण है इस लेख में आगया है, ।

तब बिचारे भूखे प्यासे भोले भाले पक्षी गण निर्भय हो वहां चुगने को आये और झुण्ड के झुण्ड निज बास बसेरे का तथा और सर्व प्रकार का ध्यान भूल आनन्द पूर्वक किलोल करने लगे, तब अधिक लोगों ने अवसर को उत्तम जान जाल खेंच उनके पकड़न का बिचार कियाही था कि किसी नवीन मनुष्य ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँच कर पक्षियों के झुण्ड में एक पत्थर फेंक मारा जिससे कितने ही तो उसी समय प्राण रहित हो गये, और कितने ही घायल हो कुछ काल पीछे अच्छे हुये, परन्तु पत्थर फेंकने वाले को अत्यन्त ही बुरा समझे, किंतु जब कुछ समय पीछे अधिक लोगों का जाल फैलाना उन पर प्रकट हुआ तो मुक्त कंठ से पत्थर फेंकने वाले को धन्यवाद देने लगे।

इस लिखने का सारांश यह है कि वह रमणीय स्थान तो यह भारत वर्ष है, इसमें पादरी ईसाई लोगों ने सम्पूर्ण प्रजा को एक रंग में रंगन और अपने शुद्ध सनातन धर्म्म से च्युत करने के लिये (मिशनस्कूलों का प्रचार रूपी) जाल फैलाया था और वह समय निकट आगया था कि सबको ईसाई बनावें, बस स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना उपदेश रूपी पत्थर फेंक सब को उस जाल से बचादिया, यह इस का बहुत बड़ा उपकार भारत वासियों पर हुआ है, और यद्यपि कोई २ मूर्ख पत्थर तले दबकर मरा अथवा घायल हुआ वह केवल वही पुरुष है जो दयानन्द के गूढ़ आशय को न समझ अपने सत्य सनातनधर्म्म का त्यागी या द्वेषी होगया, परन्तु जो लोग स्वामीजी के मुख से अपने धर्म्म की निन्दा रूपी पत्थर का शब्द सुन सचेत होगये उनको स्वामीजी का शुद्ध अन्तःकरण से धन्यवाद करना उचित है, और इसी आशय को मुख्य रख हम अच्छी तरह कह सकते हैं कि यद्यपि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती को कोई ऋषि मुनि देवता वा अवतार नहीं मानते, जैसा कि उनके अनुयायी कहते हैं, तथापि उनके शान्त होने का खेद चाहे हम निन्दक ही क्यों न समझे जांय, हमें उन अनुयायियों से अधिक है, क्यों कि स्वामीजी के आशय को जैसा हम जानते हैं उनके अनुयायियों ने नहीं जाना, अब हम सर्व आर्य्यसमाजी भाईयों से सविनय प्रार्थना करते हैं कि मित्रवर जो मनुष्य अपने में दोष और दूसरे में गुण देखता है वही सर्व प्रिय होता है

यदि हम से इस समीक्षा में कोई अनुचित शब्द लिखा गया हो तो सज्जन क्षमा करेंगे ।



इति ज्योतिषरत्न पंडित जीयालाल जी रचित दयानन्द छल कपट दर्पण प्रथम भाग का उत्तरार्द्ध सम्पूर्णम् ।





तब बिचारे भूरे स्याम भोल भाले पक्षी गण निर्भय हो वहां चुगने को आये और झुण्ड के झुण्ड निज धाम बसेरे का तथा और सर्व प्रकार का ध्यान भूल आनन्द पूर्वक किलोल करने लगे, तब अधिक लोगों ने अवसर को उत्तम जान जाल खेंच उनके पकड़ने का विचार कियाही था कि किसी नवीन मनुष्य ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँच कर पक्षिया के झुण्ड में एक पत्थर फेंक मारा जिससे कितने ही तो उसी समय प्राण रहित हो गये, और कितने ही घायल हो कुछ काल पीछे अच्छे हुये, परन्तु पत्थर फेंकने वाले को अत्यन्त ही बुरा समझे, किंतु जब कुछ समय पीछे अधिक लोगों का जाल फैलाना उन पर प्रकट हुआ तो मुक्त कंठ से पत्थर फेंकने वाले को धन्यवाद देने लगे।

इस लिखने का सारांश यह है कि वह रमणीय स्थान तो यह भारत वर्ष है, इसमें पादरी ईसाई लोगों ने सम्पूर्ण प्रजा को एक रंग में रंगने और अपने शुद्ध सनातन धर्म्म से च्युत करने के लिये (मिशनस्कूलों का प्रचार रूपी) जाल फैलाया था और वह समय निकट आगया था कि सबको ईसाई बनावें, बस स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना उपदेश रूपी पत्थर फेंक सब को उस जाल से बचादिया, यह उस का बहुत बड़ा उपकार भारत वासियों पर हुआ है, और यद्यपि कोई २ मूर्ख पत्थर तले दबकर मरा अथवा घायल हुआ वह केवल वही पुरुष है जो दयानन्द के गूढ आशय को न समझ अपने सत्य सनातनधर्म्म का त्यागी वा द्वेषी होगया, परन्तु जो लोग स्वामीजी के मुख से अपने धर्म्म की निन्दा रूपी पत्थर का शब्द सुन सचेत होगये उनको स्वामीजी का शुद्ध अन्तःकरण से धन्यवाद करना उचित है, और इसी आशय को मुख्य रख हम अच्छी तरह कह सकते हैं कि यद्यपि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती को कोई ऋषि मुनि देवता वा अवतार नहीं मानते, जैसा कि उनके अनुयायी कहते हैं, तथापि उनके शान्त होने का खेद चाहे हम निन्दक ही क्यों न समझे जाय, हमें उन अनुयायियों से अधिक है, क्यों कि स्वामीजी के आशय को जैसा हम जानते हैं उनके अनुयायियों ने नहीं जाना, अब हम सर्व आर्य्यसमाजी भाईयों से सविनय प्रार्थना करते हैं कि मित्रवर जो मनुष्य अपने में दोष और दूसरे में गुण देखता है वही सर्व प्रिय होता है

श्रीहरि

सूचीपत्र ।

सनातनधर्म के गूढ़ अभिप्रायों को जानने और आर्यसमाजियों को भगा देने के लिये हमने अपने पुस्तकालय का उद्घाटन किया है। इस पुस्तकालय में जो २ पुस्तकें तैयार हैं उनके नाम दाम नीचे लिखे जाते हैं किन्तु डाकव्यय पृथक् होगा।

५) धर्म प्रकाश ६ समुल्लास
४) सनातन धर्म विजय महाकाव्य
३॥) पुराणधर्म पूर्वार्द्ध
२) व्याख्यान दिवाकर ,,
२) विधवा विवाह निर्णय
२) दयानन्द छल कपट दर्पण
२) असली सत्यार्थप्रकाश सन् १८७५
हिन्दु मासिक पत्र वार्षिक मूल्य १॥)
१) अवतार
१) मूर्तिपूजा
॥) धर्म
।≈) श्राद्ध निर्णय
।≠) वर्णव्यवस्था
।) दयानन्द मत विद्रावण
≠) सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर
-)। शुद्धि निर्णय
-) हिन्दु शब्द मीमांसा
-) नमस्ते मीमांसा
≋) देवसभा में वेदों की अपील
-)॥ बनावटी वेद
-)॥ वेद पर आपत्ति
-)॥ तीर्थ
-) रमामहर्षि सम्वाद
-) लीडर गुप्त गर्जन
-)। संस्कार विधि समीक्षा
-) हनुमान निर्णय
-) लीडरों की नादिर शाही
-) अनोखा विजय
)॥। स्वामी शिष्य संग्राम
)॥। स्वामी पर कलङ्क
)॥। स्वामी गुरु कि चेला गुरु
)॥। लोहालक्कड़ देवता
)॥। मांस विचार
)॥। वेदों का कलङ्क
)॥। दयानन्द की आप्तता
)॥। द्विजत्व में दियासलाई
)॥। दयानन्द लीला
)॥। जालीवेद मन्त्र
)॥ निराकार की घुड़दौड़
)॥ दयानन्द की सभ्यता
)॥ वेद पर वज्रपात
)॥ वैदिक धर्म पर कुल्हाड़ा
)॥। दयानन्द की विद्वत्ता
)॥ दयानन्द का कच्चा चिट्ठा
)॥ दयानन्द हृदय
)॥ दयानन्द मत दर्पण
)॥ दयानन्द की बुद्धि
)॥ धर्म संताप
)॥ दयानन्द मत सूची
)॥ नित्य हवन विधि
)॥ कातीय तर्पण विधि

पुस्तकें मिलने का पता—

कामताप्रसाद दीक्षित मैनेजर 'हिन्दु'

मु० पो० भमरौधा जि० कानपुर